CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला २४८

महाकविभासविरचितम्

अविमारकम्

['गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्]

संपादको व्याख्याकारश्च

डॉ० गङ्गासागररायः

एम० ए०, पी-एच० डी०

चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

२४८

महाकविभासविरचितम्

अविमारकम्

['गङ्गा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्]

संपादको व्याख्याकारश्च

डॉ० गङ्गासागररायः

एम० ए०, पी-एच० डी०

सर्वभारतीयकाशिराजन्यासस्थः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चोखम्भा, पो० बा० नं० ११३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

© Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi
Phone : 65889
First Edition : 1989

Also can be had of
CHAUKHAMBHA VISVABHARATI
Post Box No. 1084
Chowk (Opposite Chitra Cinema)
VARANASI-221 001
Phone : 54766

Printers :
SRIGOKUL MUDRANALAYA
Gopal Mandir Lane,
Varanasi-221001

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वक्तव्य

संस्कृत वाङ्मय के देदीप्यमानकृती नाटककार महाकवि भास के 'अविमारकम्' का यह संस्करण अध्येताओं के सामने रखते हुये हमें संतोष का अनुभव हो रहा है। श्री गणपति शास्त्री द्वारा भास के नाटकों का प्रथम प्रकाशन होने के बाद इन नाटकों का सतत संपादन, व्याख्यान और प्रकाशन होता चला आ रहा है। प्रस्तुत संस्करण उसी में एक कड़ी है। इसके व्याख्यान में यदि कुछ गुण हैं तो वह प्राचीन अध्येताओं के परिश्रम की परिणति हैं और जो कुछ त्रुटि हैं वह मेरे मान्द्य और प्रमाद का परिपाक है। इस संस्करण को उपयोगी बनाने का हरसंभव प्रयास किया गया है और प्रारम्भ में लघुविस्तारी भूमिका में भास एवं उनके नाटक-चक्र का संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक विवरण दिया गया है। अन्त में परिशिष्टों का समावेश कर अध्ययन की सुविधाओं को अग्रसर करने का प्रयास किया गया है। भास का शृङ्गार प्रधान यह प्रकरण सहृदयों को रसानुभूति से आप्लावित करेगा ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ की व्याख्या में हमें स्व० पं० बदरीनारायणमिश्र और पं. हीरामणि मिश्र से सहयोग मिला है और प्रूफ संशोधन में पं० हीरामणि मिश्र तथा पं० कृपासिन्धुशर्मा ने अपेक्षित सहायता की है। इन विद्वानों का मैं आभारी हूँ। पुस्तक प्रकाशन में चौखम्बा संस्कृत-संस्थान के स्वामी श्री मोहनदासजी गुप्त और उनके उदीय-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मान चिरंजीवि श्री राजन ने उत्साह और धैर्य दिखाया है। मेरे आलस्यवश इस लघुकाय नाटक के प्रकाशन में प्रायः दो वर्ष का समय लग गया। फिर भी इन लोगों ने धैर्यपूर्वक इसको पूर्ण किया। अस्तु, संस्कृत-जगत् उनका आभारी है। मैं उन अपने सभी मित्रों, हितैषियों और मान्यों का आभारी हूँ जिनका अहैतुक स्नेह मुझे सुलभ रहता है।

काशी
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, २०४५ वि०

गङ्गासागर राय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिका

भास : परिचय

संस्कृत-वाङ्मय के इतिहास में नाटककार भास का महत्त्व सुतरां सर्वातिशायी है और संस्कृत के महनीय कवियों ने भास की महत्ता को प्रशस्त शब्दों में स्वीकार किया है। न केवल प्राचीनता अपितु लोकप्रियता की दृष्टि से भी भास के नाटक अपनी विशिष्टता से संस्कृत-साहित्य को जाज्वल्यमान बनाये हुए हैं। संस्कृत-काव्य के उस प्रारम्भिक युग में जबकि नाटक की विधा अपनी अवस्थिति को पुष्ट आधार पर अवस्थित न कर पायी थीं। भास ने इतने प्रौढ़, सरस और सरल नाटकों का निर्माण कर उन्हें पञ्चम वेद के रूप में प्रतिष्ठापित किया। आसेतु हिमाचल और पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक भास की मसृण कीर्तिकौमुदी काल की बाधा को बाधित करते हुए विगत प्रायः दो सहस्र वर्षों से निरन्तर सहृदयों का हृदयावर्जन करती आ रही है।

भास के नाटकों की प्रसिद्धि इतनी व्यापक थी और संस्कृत के सभी अध्येता इससे इतने अभिभूत थे कि उनका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते थे। उनकी महत्ता का परिचय कुछ महत्त्वशाली लेखकों के अधोनिर्दिष्ट उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

(१) संस्कृतसाहित्य के सर्वोत्कृष्ट महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में सूत्रधार से प्रश्न कराया है कि भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि भूतकाल के यशस्वी कवियों की कृतियों के रहते वर्तमानकाल के कालिदास की कृति में इतना आदर क्यों ?—

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।—प्रस्तावना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(२) प्रख्यात गद्यकार बाणभट्ट ने हर्षचरित में बताया है कि भास के नाटक: सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं, विस्तृत भूमिका वाले होते हैं तथा पताका से युक्त होते हैं। इसलिए वे देवकुल (देवालय) जैसे होते हैं—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥—हर्षचरित

यहां यह ध्यातव्य है कि सामान्यतया संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ नान्दी से होता है पर भास के नाटक सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं—यह सूचना मात्र होती है कि नान्दी समाप्त हो चुकी है। भास की यह विशिष्टता बाणभट्ट के समीक्षक हृदय को आकृष्ट किये बिना नहीं रही।

(३) प्राकृत के महाकवि वाक्पतिराज ने अपने महाकाव्य 'गउडबहो' में भास को 'ज्वलनमित्र' कहा है जिसका अर्थ अग्नि का मित्र है। विद्वानों की धारणा है कि स्वप्नवासवदत्ता में स्वप्नवासवदत्ता के जलकर मर जाने की मिथ्या वार्ता प्रसारित कर नाट्य-वस्तु-विकास को जो उपयुक्त एवं हृदयग्राही अवसर प्रदान किया गया उसीसे अभिभूत होकर वाक्पतिराज ने भास को ज्वलनमित्र कहा है—

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुचारे।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दे ॥—गउडवहो ८००

(४) जयदेव ने भास को कविता का हास्य बताया है। भास के नाटकों में हास्य की योजना बड़ी ही कुशलता से की गई है। हास्य के उद्धत और सुकुमार दोनों प्रकारों की योजना भास ने बड़ी ही विशिष्टता के साथ विनिबद्ध की है। उद्धत हास्य के लिए प्रतिज्ञायौगन्धरायण के विदूषक की श्लिष्ट भाषा तथा सुकुमार हास्य के लिए अन्य नाटकों में प्राप्त औदरिक विदूषकों के वचन उदाहरण में द्रष्टव्य हैं। जयदेव का अनर्घराघव में प्राप्त वह पद्य इस प्रकार है—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय ॥—अनर्घराघव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(५) दण्डी ने अवन्तिसुन्दरी में बताया है कि भास के रूपकों में मुख और प्रतिमुख सन्धियाँ स्पष्टतः भासित होती है तथा भास ने अनेक वृत्तियों का आश्रय लेकर विविध भाव दशाओं का सफल प्रदर्शन किया है।

(६) राजशेखर ने आख्यान के रूप में उपन्यस्त किया है कि विदग्धों ने भास की वासवदत्ता को अग्नि में प्रक्षिप्त कर दिया पर अग्नि भी वासवदत्ता को दग्ध न कर सका---

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥—काव्यमीमांसा

(७) नाट्यदर्पणकर्ता रामचन्द्रगुणचन्द्र ने भास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख करते हुए कहा है—

यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः।
—नाट्यदर्पण

इससे यह स्पष्टतः अवभासित होता है कि रामचन्द्रगुणचन्द्र के समय (१२वीं सदी) में भास के नाटक और विशेषतः स्वप्नवासवदत्ता प्रसिद्धि की चरम स्थिति में थे।

(८) इसी सदी के अन्य आचार्य शारदातनय ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रकरण में भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।

(९) आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर अपनी टीका में 'क्वचित् क्रीडा यथा वासवदत्तायाम्' कहकर भास की स्वप्नवासवदत्ता का निर्देश किया है।

(१०) भोज ने शृङ्गारप्रकाश में---वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गतः—कहकर स्वप्नवासवदत्ता से अपना पूर्व परिचय बताया है।

(११) अमरकोशटीकासर्वस्व में टीकाकार सर्वानन्द ने उदयन एवं वासवदत्ता के विवाह का उल्लेख किया है। यह भास के नाटक का ही निर्देश हो सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१२) जयानक ने पृथ्वीराजविजय में कहा है कि व्यास तथा भास के श्रेष्ठत्व के विवाद में दोनों की सर्वोत्तम कृतियाँ अग्नि को समर्पित कर दी गयी। भासकृत विष्णुधर्म अग्नि में नहीं जल सका। इस व्याख्या की यथार्थता के विषय में व्यास को महर्षि व्यास मानने पर सन्देह होना स्वाभाविक है। क्योंकि एक तो कालक्रम की दृष्टि से महान् अन्तर, दूसरे व्यास उपजीव्य हैं और तीसरे भासकृत विष्णुधर्म की अप्राप्ति है।

राजशेखर का यह उल्लेख कि स्वप्नवासवदत्ता को अग्नि भी न जला सका, भी इसके विरोध में पड़ता है। अतः यही स्वीकार करना ज्यादा संगत हैं कि राजशेखर के समय में यह जनश्रुति पर्याप्त प्रचलित थी और भास की स्वप्नवासवदत्ता अत्यन्त लोकप्रिय कृति थी और उसकी महत्ता लोक में प्रतिष्ठापित हो चुकी थी। इन उल्लेखों से यह भी स्पष्ट है कि कालिदास के समय या उससे पूर्व से भास की प्रसिद्धि अत्यन्त व्यापक रूप से हो गयी थी और संस्कृत के कवि तथा नाटककार उनका अत्यन्त आदर के साथ उल्लेख करते थे।

भास के नाटकों का प्रकाशन—संस्कृत के कवियों द्वारा इस प्रकार से सम्मानित और उद्धृत भास के नाटक कालचक्र से एकदम दुष्प्राप्य हो गये। उनका उल्लेख केवल कविवचनों और सूक्तियों तक ही सीमित हो गया था। यहाँ यह प्रश्न सहज ही उठता है कि जब भास के नाटक इतने प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय थे तो सहसा प्रचार से क्यों दूर हो गये। इस प्रश्न का उचित समाधान तो नहीं हो सका है पर विद्वानों ने कुछ तर्क दिये हैं जिनका सारांश यह है कि उत्तर भारत में मुसलमानों के प्रसार एवं शासन से वैदिक धर्म के प्रतिपादक तथा लोकप्रिय भास के नाटकों का उत्तरी भारत से उच्छेद हो गया। क्योंकि इन नाटकों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' का उपदेश है अतः यवन ऐसे राजसिंह का शासन कब सहन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त विदेशियों से बार-बार आक्रान्त होने से उत्तर भारत के लोग नैराश्यमग्न होकर धर्म तथा दर्शन की ओर उन्मुख हो गये। फलतः उत्तरी भारत से भास के देवनागरी लेखों का अभाव हो गया।[1]

---

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य ए, एस० पी० अय्यरकृत भास पृ० १३–१५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महामहोपाध्याय टी० गणपति शास्त्री ने १९१२ ई० में भास के तेरह नाटकों का प्रकाशन किया। ये १३ नाटक इस प्रकार हैं—(१) दूतवाक्य (२) कर्णभार (३) दूतघटोत्कच (४) मध्यमव्यायोग (५) पञ्चरात्र (६) ऊरुभङ्ग (७) अभिषेक (८) बालचरित (९) अविमारक (१०) प्रतिमानाटक (११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण (१२) स्वप्नवासवदत्तम् (१३) चारुदत्त—ये तेरह नाटक तो सर्वथा भासकृत माने जाते हैं।

इनके अतिरिक्त भास की चौदहवीं कृति 'यज्ञफल' नाम से प्रकाश में आयी है। इसे १९४१ ई० में राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने प्रकाशित किया और इसे भास कृत बताया। यह नाटक देवनागरी लिपि के दो हस्तलेखों पर आधृत था। किन्तु इसके प्रकाशन के एक वर्ष बाद ही जयपुर के पण्डित गोपालदत्त ने इसे अपनी रचना बतायी। बाद में विद्वानों ने इसकी व्यापक खोजबीन की और पण्डित गोपाल दत्त शास्त्री के दावे को असत्य स्वीकार किया। डा० दाण्डेकर ने इस विषय पर विवेचन कर दर्शाया कि गोपाल दत्त का कथन तो मिथ्या है ही इस नाटक का प्रणयन संवत् १९७० से पूर्व हो चुका था और किसी कवि ने भास के अनुकरण पर इसका प्रणयन किया। यह नाटक ७ अंकों में विभक्त है और रामजन्म से लेकर सीता-विवाह तक की कथा इसमें निबद्ध है। इस विषय का विस्तृत विवेचन डा० पुसालकर के ग्रन्थ भास : ए स्टडी में निबद्ध है।

भास-नाटक-चक्र के सभी नाटक भासकृत हैं अथवा नहीं यह भी प्रश्न विवेचित हुआ है। प्रायः अधिकांश विद्वानों की सम्मति है कि ये सभी नाटक एक ही नाटककार द्वारा प्रणीत हैं। इसके विषय में तर्कों का सारांश इस प्रकार है।

(१) चारुदत्त को छोड़कर सभी नाटक 'नान्द्यन्ते' से प्रारम्भ होते हैं।

(२) अङ्कों के मध्य में छोटे-छोटे प्रवेशकों तथा विष्कम्भकों का प्रयोग हुआ है।

(३) प्रस्तावना के स्थान पर सर्वत्र 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(४) सभी नाटकों के भरतवाक्यों (चारुदत्त तथा दूतघटोत्कच में भरत-वाक्य नहीं है) में महीं को सागर पर्यन्तां तथा हिमवद् विन्ध्यकुण्डलां कहकर राजसिंह से उसके शासन की कामना की गई है।

(५) सामान्यतः भरत-प्रतिपादित नाट्य सिद्धान्तों का यहाँ उल्लंघन दृष्टिगोचर होता है क्योंकि मृत्यु, युद्ध तथा दूर से पुकारने की प्रक्रिया इन नाटकों में रंगमञ्च पर प्रदर्शित की गई है।

(६) कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थों से भिन्न रूप में हुआ है जिन में 'आर्यपुत्र' का प्रयोग ऐसा ही है।

(७) सभी नाटकों में आकाश भाषित का प्रयोग हुआ है। कञ्चुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटकों में पुनरावृत्ति हुई है।

(८) 'प्रतिज्ञा' और 'दूतवाक्य' में कञ्चुकी का नाम वादरायण है और स्वप्न, प्रतिज्ञा, अभिषेक और प्रतिमा में प्रतिहारी का नाम विजया है।

(९) कर्णभार को छोड़कर प्रायः सभी नाटकों में प्रस्तावना के स्थान पर स्थापना का प्रयोग हुआ है।

(१०) नाट्यनिर्देशों का अभाव या त्रुटिपूर्ण होना सामान्यतः सभी नाटकों में प्राप्त होता है।

(११) नाटककार के नाम का उल्लेख किसी भी नाटक में नहीं है और नाटक का नामोल्लेख केवल नाटक के अन्त में ही प्राप्त होता है।

(१२) नाटक में प्रयुक्त विविध छन्दों में साम्य है।

(१३) कई नाटकों में नवागन्तुक के द्वारा प्रभावशाली पद्धति में अप्रत्याशित उत्तर की उपलब्धि होती है।

अभिषेक नाटक में जब रावण-सीता से कहता है कि 'इन्द्रजित् ने राम लक्ष्मण का वध कर डाला अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा ?" उसी समय राक्षस आकर कहता है कि 'लक्ष्मणेन…'

इसी प्रकार स्वप्नवासवदत्ता में जब महासेन और अङ्गारवती परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कौन राजपुत्र वासवदत्ता के लिए उपयुक्त वर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होगा तभी कञ्चुकी सहसा आकर कहता है वत्सराज। इसके अतिरिक्त इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की आवृत्ति है, वाक्यों की भी आवृत्ति हुई है। कई नाटकों के आद्य श्लोकों में मुद्रालङ्कार का प्रयोग हुआ है। एक ही पात्र द्वारा या अन्य पात्रों द्वारा वाक्यांशों की पुनरावृत्ति हुई है, पाणिनीय नियमों का स्खलन हुआ है, भाषा तथा शैली में व्यापक साम्य है और समान सामाजिक स्थिति की प्रतीति होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नाटक एक ही नाटककार की लेखनी से प्रसूत हैं।[1]

भास का समय—भास-नाटक चक्र के प्रणेता, संस्कृत साहित्य के मान्य एवं प्रशस्त रचनाकार महाकवि भास के समय के विषय में नाना प्रकार के विचार और मत-मतान्तर उपलब्ध होते हैं। कोई विद्वान् तो इन्हें ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी का रचनाकार मानता है और कोई ईसा की दशम शताब्दी में इन्हें लाकर रख देता है और कोई-कोई विद्वान् तो इस भास नाटक-चक्र को कालिदास तथा बाणभट्ट आदि द्वारा निर्दिष्ट एवं प्रशंसित भास की रचना ही नहीं मानते अपितु इसे वे किसी केरलीय रचनाकार द्वारा भास के नाम से रचित मानते हैं। अतः इन कालक्रमों के मूल में यह प्रश्न प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहता है कि ये नाटक मूल भास रचित हैं या नहीं। कुछ लोग समग्र रूप से इन्हें भासकृत मानते हैं और कुछ लोग पूर्ण रूप से इन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं। कुछ विद्वान् मध्यमार्ग के अनुयायी हैं और कहते हैं कुछ नाटक तो मूल भास कृत हैं और कुछ उसकी अनुकृति पर रचे गये हैं। इन सब बातों पर विचार करने पर यही निश्चित होता है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं और उनका समय कालिदास के समय पर निर्भर करता है। कुछ भी हो भास निश्चित रूप से चौथी सदी ईसा से पूर्ववर्ती हैं।

---

१. नाटकों की समानता के लिए द्रष्टव्य डा० ए० डी० पुसालकर का ग्रन्थ-भास ए स्टडी तथा ए० एस० पी० अय्यर का ग्रन्थ-भास।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथासार

अविमारक नाटक छः अङ्कों में विभक्त है और नाटक के प्रकरण भेद के अन्तर्गत आता है। इसका नायक विष्णुसेन है, जो अवि नामक असुर को मारने से अविमारक नाम से प्रसिद्ध हुआ। विष्णुसेन सौवीरराज का पुत्र है और उसकी माता का नाम सुदर्शना है। चण्डभार्गव नामक एक अत्यन्त क्रोधी ऋषि के शाप से एक वर्ष तक सौवीरराज सपरिवार चाण्डालत्व को प्राप्त हो गये थे और यह शापकाल उन्होंने अज्ञात रूप से व्यतीत किया।

प्रथम अङ्क में नान्दी के अन्त में मङ्गलाचरण के अनन्तर सपरिवार राजा प्रविष्ट होकर केतुमति दासी से महारानी को बुलवाते हैं। महारानी आनेपर अत्यन्त प्रसन्न दिखाई पडती हैं। राजा उनसे उनकी प्रसन्नता का कारण पूछते हैं तो रानी कहती है कि महाराज ने बताया है कि कुरङ्गी के वरण के लिये दूत आया है अतः मैं शीघ्र ही जामाता का दर्शन करूँगी। कुन्तिभोज जामातृ-वरण में पर्याप्त सोच-विचार कर निर्णय लेने का औचित्य-प्रतिपादन करते हैं। उसी समय गम्भीर ध्वनि सुनायी पड़ती है और कौञ्जायन नामक मन्त्री आकर सूचना देता है कि—वह महाराजकुमारी के साथ उद्यान में गया था और उद्यान-विहार के अनन्तर लौटते समय एक मदमत्त गजराज मार्ग में उत्पात करने लगा। उस समय सब ओर हाहाकार होने लगा, कुछ लोग मर गये तदनन्तर वह हाथी सहसा महाराजकुमारी की सवारी पर टूट पड़ा। उसी समय एक अनुपम सौन्दर्यशाली, वीर एवं विनम्र युवक ने आकर उसे परास्त कर महाराजकुमारी कुरङ्गी को उस विपत्ति से मुक्त कर दिया। थोड़ी देर बाद भूतिक नामक मंत्री ने उस कथा को सुनाकर महाराजकुमारी के युवक द्वारा त्राण की कथा की पुष्टि की। इसे सुनकर राजा कुन्तिभोज उस युवक के पराक्रम और परदुःखकातरता से अत्यन्त प्रभावित होते हैं और उस युवक के कुल-शीलादि का पता लगाने का आदेश देते है क्योंकि कौञ्जायन नामक मंत्री ने सूचना दी थी कि वह अपने को अन्त्यज कहता है। भूतिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का मत है कि रूप सद्गुणादि के आधार पर वह सत्कुलोत्पन्न है। वह अपने को छिपा रहा है अतः अन्त्यज बताता है। राजा मन्त्रियों से पूछते हैं कि काशिराज के दूत को क्या उत्तर दिया जाय। भूतिक और कौञ्जायन का मत है कि सौवीरराज ने अपने पुत्र के निमित्त पहले दूत भेजा था। उस समय कन्या छोटी है यह कहकर टाल दिया गया था। अब काशिराज का दूत आया है अतः सोच-विचार कर निर्णय करना चाहिये। राजा कहते हैं कि सौवीरराज का पुनः कुछ पता नहीं लगा। सौवीरराज महारानी के भाई हैं अतः उन्हें प्राथमिकता देनी चाहिये ऐसा कौञ्जायन का विचार है। भूतिक बताता है कि सौवीरराज सारा राज्यकार्य मन्त्रियों में न्यस्त कर लापता हैं। काशिराज के दूत का इस समय प्रत्याख्यान न किया जाय ऐसा निश्चय होता है।

द्वितीय अङ्क में विदूषक आकर कुरङ्गी पर आसक्त अविमारक की मनोदशा का वर्णन करता है। इसी बीच चेटी और विदूषक में कुछ विनोद-पूर्ण बातें होती हैं और चेटी चली जाती है। तब अविमारक आकर कुरङ्गी पर अपनी आसक्ति का वर्णन करता है। वह कुरङ्गी के रूप-यौवन पर इतना अधिक आसक्त है कि उसे भूख-प्यास नहीं लगती है अनिद्रा की स्थिति हो गयी है, शरीर पीतवर्ण का हो गया है। कुरङ्गी की भी वैसी ही दशा है। यह दशा दोनों की हस्तिसंभ्रम के दिन से ही है। धात्री और नलिनिका मिलकर कुरङ्गी एवं अविमारक के मिलने की योजना बनाते हैं और 'नलिनिका' अविमारक को इसका निमंत्रण दे आती हैं। अविमारक इस निमन्त्रण से अत्यन्त प्रसन्न होता है और पराक्रम का आश्रय लेकर कन्या के अन्तःपुर में प्रवेश का निश्चय करता है।

तृतीय अङ्क में नलिनिका अविमारक के अन्तःपुर में प्रवेश की व्यवस्था कर देती है। अविमारक रक्षि-पुरुषों के कड़े पहरे के होने पर भी अकेले कन्यान्तःपुर में प्रवेश कर जाता है। कुरङ्गी उसे पाकर अत्यन्त आश्चर्या-न्वित एवं प्रसन्न होती हैं। दोनों सानन्द कालयापन करने लगते हैं।

चतुर्थ अङ्क में ज्ञात होता है कि वर्ष पर्यन्त कन्यान्तःपुर में अविमारक के निवास के बाद यह वृत्तान्त कुन्तिभोज को ज्ञात हो जाता है। कुरङ्गी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लज्जा और भय से संत्रस्त हो जाती है। उसका स्नेह उसी प्रकार का उद्दाम है। अविमारक पकड़े जाने के भय से निकल भागता है। किन्तु प्रियतमा के वियोग के कष्ट को सहन करने में वह असमर्थ है। वह इतना दु:खी और विषण्ण है कि आत्महत्या का निश्चय करता है। सर्वप्रथम वह जलमें डूबकर मरना चाहता है पर जल में डूबकर मरने को धर्म विरुद्ध मानकर वह दावानल में प्रविष्ट होकर मृत्यु का वरण करना चाहता है। वह अग्नि में प्रवेश कर जाता है पर अग्नि शीतल होकर मलय चन्दन के लेप की भाँति उसे प्रतीत होता है। अन्त में वह मरुत् प्रपात (पर्वत से कूदकर आत्महत्या) करना चाहता है। इस उद्देश्य से वह पर्वत पर चढ़ जाता है परन्तु उसी समय एक सपत्नीक विद्याधर वहाँ आ जाता है। उसकी रूप संपत्ति से प्रभावित विद्याधर उसकी विरह-वेदना का ज्ञान प्राप्त करता है। विद्याधर उसके कष्ट से द्रवित हो जाता है और उसे एक दिव्य अङ्गुलीयक (अंगूठी) प्रदान करता है जो दाहिने हाथ में धारण करने पर अदृश्य बना देती है और वाम हस्त में धारण करने पर पुनः दृश्य कर देती है। उस अङ्गुलीयक को प्राप्त कर वह पुनः अपनी प्रियतमा कुरङ्गी से मिलने को तैयार हो जाता है। वह कुन्तिभोज की नगरी में लौट आता है और वहीं उसकी विदूषक से भेंट हो जाती है और वह सारा वृत्तान्त विदूषक को बताता है।

पञ्चम अङ्क में ज्ञात होता है कि अविमारक के वियोग में कुरङ्गी की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी है। वह सभी शृङ्गारों का परित्याग कर बैठी है। वह सखियों की दृष्टि बचाकर आत्महत्या भी करना चाहती है उसी बीच विदूषक के साथ वह अङ्गुलीयक की सहायता से वहाँ पहुँच जाता है। दोनों मिलकर परम प्रसन्न होते हैं। परिचारिकायें विदूषक को वहाँ से हटा ले जाती हैं। दोनों का समय पुनः आनन्द से बीतने लगता है।

षष्ठ अङ्क में सौवीरराज का सपुत्र पता न चलने पर कुन्तिभोज काशि-राज के पुत्र जयवर्मा से कुरङ्गी के विवाह का निश्चय करते हैं। एतदर्थ उन्होंने जयवर्मा को उसकी माता सुदर्शना के साथ अपने यहां बुला लिया है। विवाह की सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। सौवीरराज भी प्रकट होकर आ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाते हैं। कुन्तिभोज और सौवीरराज मिलकर परम प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। पुत्र-वियोग के कारण सौवीरराज अत्यन्त दुःखी हैं। जब कुन्ति-भोज उनके दुःख का कारण पूछते हैं तो पुत्र का पता न चलने का वृत्तान्त बताते हैं। सौवीरराज चण्डभार्गव के शाप के कारण पत्नी और पुत्र के साथ अज्ञातवास कर रहे थे तभी से अविरूपधारी असुर का संहारक पुत्र गायब है। सौवीरराज के पुत्र की वीरता को सुनकर कुन्तिभोज को विश्वास हो जाता है कि हस्तिसंभ्रम के दिन कुरङ्गी की रक्षा करने वाला अविमारक ही था। कुरङ्गी का विवाह जयवर्मा से संपन्न होने ही वाला था कि उसी समय देवर्षि नारद वहाँ उपस्थित हो गये। देवर्षि नारद ने बताया कि अविमारक यहीं पर कुन्तिभोज के अन्तःपुर में कुरङ्गी के साथ है। दोनों का विवाह भी गान्धर्व पद्धति से हो गया। उन्होंने सुदर्शना से यह भी रहस्य बता दिया कि अविमारक तुम्हारा ही पुत्र है जो अग्निदेव से उत्पन्न है और तुम्हीं ने उसे अपनी भगिनी सुचेतना को जन्मकाल में ही दे दिया था क्योंकि उसका पुत्र प्रसवकाल में ही मृत हो गया था। सुचेतना सौवीरराज की पत्नी है। यह वृतान्त जानकर सुदर्शना संतुष्ट हो जाती है क्योंकि वह अपने पुत्र जयवर्मा को कुरङ्गी के साथ विवाह के लिये लेकर आयी है। कुरङ्गी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ जयवर्मा का विवाह संपन्न हो जाता है। इस प्रकार सौवीरराज, काशिराज और कुन्तिभोज सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

चरित्राङ्कन

अविमारक—यह इस नाटक का नायक है। यह सौवीरराज का पुत्र है। वस्तुतः यह अग्निदेव द्वारा सुदर्शना में उत्पन्न हुआ था पर सुदर्शना ने इसे अपनी छोटी बहन सुचेतना, जो सौवीरराज की पत्नी है, को उत्पन्न होते ही दे दिया था और इस प्रकार यह सौवीरराज के पुत्र के रूप में प्रख्यात हुआ। इसका वास्तविक नाम विष्णुसेन था पर अविरूपधारी असुर को मारने के कारण यह अविमारक नाम से लोक-प्रसिद्ध हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारक सुरूप, आकर्षक, अनहंकारी, नम्र, सुकुमार, आत्मविश्वासी, अपूर्व साहसी एवं बल-पराक्रम से संपन्न है। उसका सौम्यरूप देवतुल्य, ब्राह्मणतुल्य सुसंस्कृत वाणी तथा क्षत्रिय के समान बल एवं तेज हैं—

दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च। (१।७)

उसके रूप को देखकर विद्याधर भी प्रभावित हो जाता है और कहता है कि यह मन्त्रभ्रष्ट विद्याधर ही है क्योंकि ऐसा रूप अन्यत्र कहाँ हो सकता है। वीरता भी उसमें पराकोटि की है। बाल्यकाल में ही दुर्दान्त असुर अवि का अकेले वध कर दिया था। कुन्तिभोज की नगरी में हस्ति-संभ्रम के अवसर पर अकेले ही उस मत्तगज को पकड़कर कुरङ्गी की सवारी से पृथक् कर उसे हस्तिशाला में डाल दिया। इस घटना में उसके बल-पराक्रम के साथ ही उसकी परदुःखकातरता भी स्पष्टतः द्योतित होती है। जब कुन्तिभोज के अन्तःपुर में जाने का अवसर उपस्थित होता है तो वह एकाकी अपने पराक्रम का आश्रय लेकर रक्षिपुरुषों से घिरे अन्तःपुर में प्रवेश कर जाता है। शौर्य-पराक्रम के साथ ही साथ उसका प्रेम भी एकनिष्ठ है। कुरङ्गी में आसक्त होने पर वह शरीर की चिन्ता छोड़ देता है। कुरङ्गी से पृथक् होने पर वह प्राणत्याग करने में नहीं हिचकता। संक्षेप में अविमारक अनुपम रूप-सौन्दर्य, बल-पराक्रम, तेज से संपन्न पुरुष है। वह परदुःखकातर और प्रेमी व्यक्ति है। नायक के सभी गुणों से वह संपन्न है।

कुरङ्गी—वैरन्त्य नगर के स्वामी राजा कुन्तिभोज की कन्या इस नाटक की नायिका है। वह अनुपम सौन्दर्यशालिनी है। उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अविमारक कहता है—

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः
मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम्।
भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः
कथं नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत्॥ २।६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उर-प्रदेश स्तन के भार से अलस हैं और जघनभार से शरीर खिन्न है। मुख नेत्रों को आकर्षक है, विम्ब तुल्य अधर स्वभावतः लाल है। यदि भय में भी शरीर नेत्रों को ऐसा लुभावना लग रहता है तो सुरतान्तर में कैसा हाव-भाव युक्त होगा।

हस्तिसंभ्रण के समय ही अविमारक उस मोहक आकृति पर आकृष्ट हो गया और उसका यह आकर्षण अनुदिन वृद्धिगत ही होता रहा।

कुरङ्गी ने प्रेम के वश होकर अपने हृदय को सर्वात्मना अविमारक को समर्पित कर दिया था। यह नैसर्गिक प्रेम प्रथम दृष्टि में ही हो गया और उसमें कभी न्यूनता नहीं आयी। कुरङ्गी में स्त्री-सुलभ लज्जा, भयादि गुणों की भी अवस्थिति तत्तद् स्थलों पर द्रष्टव्य है। प्रथमतः तो भ्रम से अविमारक का आलिङ्गन करने पर चरित्रपतन की आशंका से घबड़ाती है पर बाद में यह स्थिति जाती रहती है। दयादाक्षिण्यादि गुण भी उसमें पर्याप्त मात्रा में वर्तमान हैं। उसकी परिचारिकायें उसकी मनोनुकूल परिस्थितियों को जुटाने में प्राण-पण से संलग्न हैं जिससे उसके दान-दाक्षिण्यादि गुणों की प्रतीति होती है।

विदूषक—इसका नाम संतुष्ट है। वह हास्योत्पादक और पेटू है। अविमारक उसके स्वभाव का वर्णन करता है—

> **गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः**
> **शोके गुरुः साहसिकः परेषु।**
> **महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापैर्**
> **द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम् ॥४।२१**

यह गोष्ठियों में तो हास्योत्पादक है, युद्ध में वीर है, दुःख-शोक में गुरुतुल्य है, शत्रुओं में साहसी है। उसकी विभिन्न उक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि वह निरक्षर भट्टाचार्य और भोजनभट्ट है। पर वस्तुतः इसके ये रूप हास्योत्पादन के लिए ही प्रतीत होते हैं यथार्थ में वह नायक का परम हित-संपादक, मनोविनोदकारक और दुःख-सुख में सतत सहचर है।

धात्री तथा नलिनिका—ये कुरङ्गी की परिचारिकायें हैं और सतत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उसके सुख और मनोविनोद का उपाय करती रहती हैं। ये दोनों वाक्पटु और उचित समय पर उचित कार्य करने में सिद्धहस्त हैं। अविमारक और कुरङ्गी को मिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य ये संपन्न कराती है। दूसरी बार अविमारक और कुरङ्गी को मिलाकर ये विदूषक को वहाँ से हटा ले जाती हैं। इनमें उनकी चतुरता और बुद्धिकौटिल्य स्पष्ट है। वे दोनों कुरङ्गी के सुख में सुखी और उसके दुःख में दुःखी रहती है।

भूतिक और कौञ्जायन—ये वैरन्त्य नगर के स्वामी कुन्तिभोज के अमात्य है। ये अपने दायित्व के प्रति सदैव सचेष्ट हैं। कौञ्जायन ने अमात्यों के दायित्व का इस पद्य में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥१।५

अर्थात् यदि कार्य सिद्ध होता है तो लोग इसे राजा की सामर्थ्य समझते हैं और असफलता में मन्त्रियों का दोष मानते हैं। ऐसी विकट परिस्थितियों में मंत्री कार्य करते हैं।

समीक्षा

अविमारक एक प्रकरण है जिसकी विषयवस्तु कविकल्पना-प्रसूत है। इसमें सौवीरराज के पुत्र अविमारक और वैरन्त्य नगराधीश्वर कुन्तिभोज की कन्या कुरङ्गी का प्रणय वर्णित है। यह प्रणय हस्तिसंभ्रम के दिन से पूर्व राग के रूप में उद्भूत होता है और तभी से प्रगाढ़ आसक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। छिपे-छिपे मिलने का यह प्रेम कथानक अन्त में दोनो के परिणय में परिवर्तित हो जाता है। घटना-क्रम का संयोजन इस कौशल और सिद्धहस्तता से किया गया है कि अन्ततः सारी विपरीत परिस्थितियां अनुकूल वन बैठती है और दोनों का विवाह संपन्न होता है। कल्पनाप्रसूत इस कथा की रचना, विभिन्न घात-प्रतिघात और विषम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिस्थितियों का सर्जना और सभी की सुखद परिणति भास की महती सफलता है। कुरङ्गी का विवाह काशिराज के पुत्र से होने जा ही रहा था कि सहसा देवर्षि नारद प्रकट हो गये। उन्होंने कुछ रहस्य की बातें बतायी। काशिराज की स्त्री का परितोष कर दिया और कुरङ्गी का विवाह अविमारक से हो गया। कथानक का यह आकस्मिक रूप बड़ा ही हृदयहारी हैं—

भास अपने कथनोपकथनों के लिए प्रसिद्ध हैं। वे लघु-वाक्यों एवं सरल शब्दों के माध्यम से वे दर्शक और पाठक का हृदयावर्जन करते हैं। इनके कथनोपकथनों में इतनी स्वाभाविकता होती है कि अभिनय काल में वे सद्यः दर्शक के चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। अविमारक में भी भास का यह गुण बड़ी विस्पष्टता से परिलक्षित होता है। यह कथनोकथनों का वैशिष्टय सभी संवादों में वर्तमान है।

भास की भाषा सरल है और भास कठिन शब्दों के संग्रह के पक्षपाती नहीं है। फलतः उनके नाटक रङ्गमञ्च पर सरलता से अभिनीत होते हैं। अविमारक की भाषा उनकी इस विशेषता से परिपूर्ण हैं। सरल शब्दों के माध्यम से नाटककार अपनी बात को सद्यः एवं सीधे दर्शक तक पहुँचा देता है।

नाटक का मुख्य रस शृङ्गार है। नाटक के आदि से अन्त तक शृङ्गार की सत्ता ओत-प्रोत है। बीच-बीच से प्रकरणवशात् अन्य रसों का भी विनियोजन नाटककार ने किया है। किन्तु वे सभी रस अङ्ग या सहायक ही हैं, प्रधान या अङ्गी तो शृङ्गार ही हैं।

अविमारक में काव्य-कौशल का नाटककार ने सम्यक् उपयोग किया है। मनुष्य की नाना सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवृत्तियों, विविध कालोपयोगी सूक्तियों, प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण आदि सभी काव्यगत विशेषतायें इस नाटक में उपलब्ध है। बहुत ऊपर से देखने पर पृथ्वी की विशालतम वस्तुयें भी कितनी लघु दिखाई पड़ती हैं इसका दिग्दर्शन विद्याधर के इस कथन से होता है :

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमाः
वृक्षाः शैवलसंनिभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्।
सीमान्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च विन्दूपमाः
दृष्टं वक्रमिवाभिभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥४।११

पहाड़ हस्तिशावक के समान, समुद्र क्रीडावापी के समान और वृक्ष शैवाल-सदृश लग रहे हैं। पृथ्वीतल का निम्नभाग अदृश्य हो रहा है। नदियाँ सीमान्त की भाँति प्रतीत हो रही हैं। बड़े-बड़े प्रासाद विन्दु-सदृश लग रहे हैं। यह संपूर्ण जगत् संक्षिप्त रूप में लग रहा है और दृश्य टेढ़े प्रतीत हो रहे हैं।

रात्रि के घोर अन्धकार का वर्णन कवि कितनी भाव-प्रवणता से कर रहा है—

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीयः इवायमन्धकारः ॥३।४

मार्ग-रूपी नदियाँ मानो अन्धकार (रूपीजल) को वहा रही है। प्रासादों की पंक्ति कूल (किनारे) जैसे प्रतीत हो रहे हैं। घोर अन्धकार में चारों दिशायें डूब गयी हैं। यह अन्धकार मानो नाव से पार किया जायेगा।

कवि का घोर तामिस्र का यह वर्णन नितरां हृदयावर्जक है।

अर्धरात्रि का यह दूसरा वर्णन भी कितना विस्पष्ट एवं प्रभावोत्पादक है।

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजना ध्यानं प्रविष्टा इव।
प्रग्रस्ता इव संचितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगाः
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस समय सारी प्रजा गर्भस्थ शिशु की भाँति मोह में पड़ी है (मुग्ध है)। प्रासादों में सभी सुख से सोये हैं अतः नीरवता है। मानो प्रासाद ध्यानमग्न हों। एकत्रित अन्धकार से ढँके वृक्ष स्पर्श से ज्ञात होते हैं। जगत् प्रच्छन्नरूप वाला हो गया है मानो अन्तर्धान हो रहा है।

संध्याकाल का वर्णन नाटककार ने निम्नोद्धृत पद्यों में बड़ा ही मार्मिक किया है। इन पद्यों को देखते ही कवि की सूक्ष्मेक्षिका का स्पष्ट अवभास होता है।

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यस्यार्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥२।१२

सन्ध्याकाल हो गया है। पूर्व दिशा अन्धकार से व्याप्त हो गई है और पश्चिम दिशा में संध्याकालीन अरुणिमा (ललाई) व्याप्त है। इस प्रकार अन्तरिक्ष दो भागो में विभक्त हो गया है और भगवान् शङ्कर के अर्ध-नारीश्वर रूप की शोभा को प्राप्त कर रहा है।

आकाश में पूर्व दिशा में तो अन्धकार व्याप्त हो रहा है और पश्चिम में सन्ध्याकाल की अरुणिमा से कुछ प्रकाश है। प्रतीत होता है कि अन्तरिक्ष भगवान् शङ्कर का अर्धनारीश्वर रूप है। कैसी सटीक उपमा है। भगवान् शङ्कर व्योमकेश और जीमूतकेतु तो हैं ही। यह कवि की कल्पना प्रकृति के सूक्ष्मेक्षण का प्रसाद है।

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥२।१३

मनुष्य लोक का सूर्यरूप तिलक हट गया है और ताराओं की माला फैल गयी है। धूप नष्ट हो गयी है, मृदु मनोहर शीतल वायु प्रवाहित हो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रही है। कामुक जन (अपने-अपने संकेत-स्थानों में) छिप गये हैं। शूर (रक्षि-) पुरुष विचरण कर रहे हैं। मानो यह मनुष्य लोक दूसरे वेष को धारण कर रहा है।

यह नाटक कवि की सूक्तियों से भी भरा पड़ा है जो कवि के जीवन, जगत्, शास्त्र और व्यवहार ज्ञान का पूर्ण परिचायक है। संक्षेप में अविमारक भास की एक उत्तम नाट्य कृति है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भासप्रशस्तयः

(१)

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ बाणभट्टः हर्षचरित १।१५

(२)

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ राजशेखरः

(३)

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥ दण्डी, अवन्तिसुन्दरी

(४)

भासो हासो कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

(५)

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।—कालिदास, विक्रमोर्वशीयम् ।

(६)

भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धने च बन्धे हरिचन्द्रे च आनन्दे ॥ गउडवहो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पात्रपरिचयः

(अ) पुरुषपात्राणि—

१. राजा कुन्तिभोजः—कुरङ्ग्याः पिता
२. कौञ्जायनः—कुन्तिभोजस्यामात्यः
३. भूतिकः—कुन्तिभोजस्यामात्यः
४. भटः—कुन्तिभोजस्य जयसेननामा प्रतिहारी
५. अविमारकः—सौवीरराजस्य पुत्रः विष्णुसेननामा
६. विदूषकः—अविमारकस्य संतुष्टनामा सखा
७. सौवीरराजः—अविमारकस्य पिता
८. नारदः—देवर्षिः
९. विद्याधरः—अविमारकाय अंगुलीयकप्रदानकर्ता
१०. जयवर्मा—काशिराजस्य तनयः

(ब) स्त्री-पात्राणि—

१. देवी—कुन्तिभोजस्य महिषी, कुरङ्ग्या माता
२. कुरङ्गी—कुन्तिभोजस्य कन्या, अविमारकस्य प्रेयसी
३. सुदर्शना—अविमारकस्य जननी, काशिराजपत्नी
४. प्रतीहारी—कुन्तिभोजस्य द्वाररक्षिका
५. चेटी—चन्द्रिकानाम्नी कुरङ्ग्याः सेविका
६. धात्री—कुरङ्ग्याः पोषणकर्त्री जयदा नाम्नी
७. नलिनिका
८. मागधिका
९. विलासिनी
} कुरङ्ग्याः सेविकाः सहचारिण्यश्च
१०. वसुमित्रा
११. हरिणिका
} देव्याश्चेट्यौ
१२. सौदामिनी—विद्याधरस्य प्रेयसी
१३. सुचेतना—सौवीराजस्य पत्नी
१४. सुमित्रा—जयवर्मणः पत्नी कुरङ्ग्याः भगिनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाकविभासप्रणीतम्

अविमारकम्

'गङ्गा' संस्कृतहिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उत्क्षिप्तां सानुकम्पं सलिलनिधिजलादेकदंष्ट्राग्ररूढा-
माक्रान्तामाजिमध्ये निहतदितिसुतामेकपादावधूताम् ।

व्यापृण्वानो विश्वतो विश्वरूपः, कश्चिद् देवः सच्चिदानन्दरूपः ।
एतत्कृत्ये वृत्तये चेतसो मे निष्प्रत्यूहं जायतां हृन्निविष्टः ॥

अन्वयः—सलिलनिधिजलात् सानुकम्पम् उत्क्षिप्ताम्, एकदंष्ट्राग्ररूढाम्, आक्रान्ताम् आजिमध्ये निहतदितिसुताम्, एकपादावधूताम्, प्रीतिपूर्वम् सम्भुक्ताम्, स्वभुजवशगताम् एकचक्राभिगुप्तान् उच्छ्रितैकातपत्राम् वसुधाम् श्रीमान् नारायणः ते प्रदिशतु ।

व्याख्याः—उत्क्षिप्तामिति—सलिलनिधिजलात् = वारिधिपयसः, सानुकम्पम् = सकृपम । उत्क्षिप्ताम् = उत्थापिताम् एकदंष्ट्राग्रलग्नाम् = केवलं एकदशनसंसक्ताम् (वाराहावतारे), आक्रान्ताम् = विक्रम्याधीनीकृताम् , आजिमध्ये = संग्रामे, निहतदितिसुताम् = विनाशितदैत्याम् (नृसिंहावतारे),

---

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—भगवान् ने जिस पृथिवी को समुद्र के जल से अपने वराहावतार में एक दाँत पर उठाया, (नृसिंहावतार में हिरण्यकश्यपु) दैत्य को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्भुक्तां प्रीतिपूर्वं स्वभुजवशगतामेकचक्राभिगुप्तां
श्रीमान् नारायणस्ते प्रदिशतु वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम् ॥१॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

नटी—अय्य ! इअम्हि । [आर्य ! इयमस्मि ।]

सूत्रधारः—आर्ये ! तव वदनजनितकौतूहलेन स्मितेन निवेदित इवान्तर्गतो भावः । ननु किञ्चिद् वक्तुकामासि ।

एकपादावधूताम् = एकपदन्यासकम्पिताम्, (वामनावतारे), प्रीतिपूर्वम् = सानुरागम् , सम्भुक्ताम् = सम्पालिताम् । (रामावतारे) । स्वभुजवश-गताम् = आत्मबाहुबलवशगां एकचक्राभिगुप्ताम्=एकलसहस्रारचक्ररक्षिताम् । उच्छ्रितैकातपत्राम् = उन्नतैकच्छत्राम् , (अनन्यशासनामिति भावः), वसु-धाम् = भूमिम् , श्रीमान् नारायणः = सर्वावतारबीजम् श्रीविष्णुः, ते = तुभ्यम्, प्रदिशतु = ददातु । (स्रग्धरावृत्तम्) म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियति-युता स्रग्धरा कीर्तितेयम्, इति तल्लक्षणात् ।

वदनजनितकौतूहलेन = तव मुखं कुतुकभावसमुल्लसितं कुर्वता ।

युद्ध में मारकर उसकी अधीनता से मुक्त किया, वामनावतार में एक पैर से नाप लिया और रामावतार में प्रेमपूर्वक पालन किया तथा अपने भुजबल से उसे अधीन कर एक सुदर्शन चक्र से रक्षित किया ऐसी अनन्यशासना (एकच्छत्रा) पृथ्वी भगवान् नारायण आपको दें । यह स्रग्धरा छन्द में है ॥१॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) आर्य्ये ! इधर तो आना ।

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य्य ! यह हूँ ।

सूत्रधार—हे प्रिये ! तुम्हारे मुख में कौतूहल के भाव को पैदा करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नटी—को एत्थ विम्हओ अय्यो भावण्णो त्ति। [कोऽत्र विस्मय आर्यो भावज्ञ इति।]

सूत्रधारः—तेन हि स्वैरमभिधीयताम्।

नटी—इच्छेमि अय्येण सह उय्याणं गन्तुं। अत्थि मे तहिं इत्थिआकरणीअं णिअमकय्यं। [इच्छाम्यार्येण सहोद्यानं गन्तुम्। अस्ति मे तत्र स्त्रीकरणीयं नियमकार्यम्।]

(नेपथ्ये)

भूतिक! त्वमप्युद्यानं गच्छ कुरङ्गीरक्षणार्थम्। मदभावस्थो ह्यञ्जनगिरिः।

सूत्रधारः—आर्ये! ननु भवत्या श्रुतम्-उद्यानं गता राजपुत्रीति। तस्मात् सम्प्रति सर्वतः परिगुप्तानि भवन्त्युद्यानानि। प्रतिनिवृत्तायां राजसुतायां स्वैरं गमिष्यावः।

स्मितेन = मन्दहास्येन। अन्तर्गतः = चित्तवर्त्ती। भावः = अभिप्रायः। निवेदित इव = वचनं विनाऽपि सूचित इव। किञ्चिद् वक्तुकामा असि = किञ्चिद् विवक्षसि।

वाले इस मुसकान ने ही तुम्हारे मनोगत भाव को सूचित कर दिया है कि तुम कुछ कहना चाहती हो।

नटी—आर्य्य! आप भाव को जानने वाले हैं इसमें क्या आश्चर्य है?

सूत्रधार—तो स्वच्छन्द कहो।

नटी—मैं आपके साथ बगीचे में जाना चाहती हूँ। वहाँ हमको स्त्रियोचित कुछ नियम कार्य करना है।

(नेपथ्य में)

हे भूतिक! तुम भी बाग में कुरङ्गी की रक्षा के लिये जाओ। क्योंकि आजकल अञ्जन गिरि (नामक हाथी) मादक भाव में है।

सूत्रधार—आर्य्ये! सुना तुमने। राजकुमारी उद्यान में गई हैं। अतः इस समय उद्यान में कड़ा पहरा होगा। राजकुमारी के वहाँ से लौट जाने पर हम लोग वहाँ स्वच्छन्द चलेंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नटी–जं अय्यो आणवेदि । [यदार्य आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ)

स्थापना ।

(ततः प्रविशति राजा सपरिवारः)

राजा—

इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसन्नाः
प्रज्ञापिता भयरसं समदा नरेन्द्राः ।
एवंविधस्य च न मेऽस्ति मनःप्रहर्षः
कन्या पितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् ॥ २ ॥

अन्वयः—मखाः इष्टाः, द्विजवराः च मयि प्रसन्नाः समदाः नरेन्द्राः (मया) भयरसम् प्रज्ञापिताः एवं विधस्य च मे मनः प्रहर्षः न अस्ति हि कन्या पितुः सततम् बहु चिन्तनीयम् ।

इष्टा इति—मखाः = यज्ञाः । इष्टाः = विहिताः । द्विजवराः = ब्राह्मणवर्य्याः । च = अपि मयि प्रसन्नाः = सविनयं यथेष्टदक्षिणादानादिना नितरां प्रसन्नाः । समदाः = अहंमन्याः नरेन्द्राः = प्रतिपक्षिणो राजानः भयरसम् = भीतिभावम् , प्रज्ञापिताः = विशेषेण वोधिताः एवंविधस्य = कृतधर्मकार्य्यस्य पार्ष्णिप्रतिपक्षरहितस्यापि । मे = मम कुन्तिभोजस्य,

---

नटी—आपकी जो आज्ञा ।

(ऐसा कह कर दोनों चले जाते हैं)

(स्थापना)

(तदनन्तर सपरिपार राजा का प्रवेश)

राजा—मैंने यज्ञ किया, उचित दक्षिणा द्वारा सत्कार से, एवं विनय से ब्राह्मणगण भी मेरे ऊपर प्रसन्न हैं । अपने प्रतिपक्षी अभिमानी राजाओं को भी भयभीत बना दिया (बलगर्वित) इस प्रकार श्रेय (पारलौकिक सत्कर्म) प्रेय (ऐहिकसुख) सुखों से सम्पन्न होता हुआ भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है क्योंकि अविवाहित कन्या के पिता का सुख कहाँ ? उसे तो निरन्तर बहुत चिन्ता रहती है ॥ २ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

केतुमति ! गच्छ देवीमानय ।

प्रतिहारी—जं भट्टा आणत्तेदि । [यद् भर्ताज्ञापयति ।] (निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति सपरिवारा देवी)

देवी—जेदु महाराओ । [जयतु महाराजः ।]

राजा—देवि ! नित्यप्रसन्नमपि ते मुखमद्यातिप्रसन्नमिव । किङ्कृतोऽयं प्रहर्षः ।

देवी—णं महाराएण कहिदं—कुरङ्गीणिमित्तं दुदो आअदत्ति । ता अइरेण जामादुअं पेक्खामि त्ति । [ननु महाराजेन कथितं—कुरङ्गीनिमित्तं दूत आगत इति । तदचिरेण जामातरं प्रेक्ष इति ।]

राजा—तादृशमप्यस्ति । न तु तावत् क्रियते निश्चयः । एह्युपविश ।

मनःप्रहर्षः = चित्ताह्लाद; न अस्ति = न वर्तते । हि = यतः, कन्यापितुः = अनूढकन्याजनकस्य सततम् = निरन्तरम् । बहु = अनेकविधम्, चिन्तनीयम् = चिन्ताविषयः विचारणीयमिति यावत् । उक्तञ्च—

पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः ।
दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा न वेति कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम् ॥

भावः—श्रेयस्त्री कृतधर्माः प्रेयस्वी परिपन्थिरहितोऽपि ।
कन्याविवाहचिन्ता-सक्ततया नास्मि प्रीतात्मा ॥

केतुमति ! आओ और महारानी को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा (जाती है) ।

(उसके बाद परिवार सहित देवी का प्रवेश) .

देवी—जय हो महाराज की ।

राजा—देवि ! सदा प्रसन्न रहने वाले भी तेरे मुख में आज अधिक प्रसन्नता दिखाई दे रही है । किस कारण से यह प्रसन्नता है ?

देवी—महाराज ने ही तो कहा है कि कुरङ्गी के लिये दूत आया है । इसलिये शीघ्र ही दामाद को देखूंगी ।

राजा—ऐसी बात तो है । परन्तु अभी निश्चय नहीं है । आओ बैठो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवी—जं महाराओ आणवेदि । [यद् महाराज आज्ञापयति ।]

(उपविशति ।)

राजा—देवि ! विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति । कुतः,

जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥ ३ ॥

अन्वयः—जामातृसम्पत्तिम् अचिन्तयित्वा, पित्रा स्वमनोऽभिलाषात् दत्ता तु नारी क्षुब्धजला नदी कूलद्वयम् इव मदेन कुलद्वयम् हन्ति ।

व्याख्या—जामातृसम्पत्तिम् जामातुः सम्पत्तिस्तां जामातृसम्पत्तिं = कन्याग्रहीतुः वयोधनबलादिसम्पन्नताम् , अचिन्तयित्वा = अविचार्य्य, पित्रा = जनकेन, स्वमनोऽनुकूलम् = स्वचित्तानुरोधेन, दत्ता = वितीर्णा तु नारी = महिला (कन्या) क्षुब्धजला = वार्षिकजलोपगतमहावेगा नदी = सरित्, कूलद्वयम् = उभयतटम् , इव = यथा, मदेन = तारुण्यजनितावेशेन, कुलद्वयम् = पितृकुलं श्वशुरकुलञ्च, हन्ति = नाशयति । उक्तञ्च—

कुलञ्च, शीलञ्च सनाथतां च, विद्यां च वित्तञ्च वपुर्वयश्च ।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

उपजातिवृत्तम् । उपमालंकारः—

भावः—स्वसम्पदो न्यूनधनादिकाय, कन्या प्रदत्ता स्वधिया मदेन ।
कुलद्वयं हन्ति नदी यथैव कूलद्वयं बद्धरया स्वकीयम् ॥

देवी—जो महाराज का आदेश । (बैठती है ।)

राजा—देवि ! विवाह बहुत विचार कर करना होता है । क्योंकि—

जामाता की योग्यता सम्पत्ति का विना विचार किये यदि स्वेच्छा से किसी को कन्या दे दी जाय, तो वह अपने तारुण्य के मद से पिता तथा श्वसुर दोनों के कुल को उसी तरह नष्ट कर देती है जैसे वर्षा के जल से वेगवती नदी अपने दोनों तटों को नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अये शब्द इव । बहुभिः कारणैर्भवितव्यम् । अयं हि,

वहुत्वाद् दूरसंस्थोऽपि समीप इव वर्तते ।
सत्सु हेतुसहस्रेषु कुरङ्गयां शङ्कते मतिः ॥ ४ ॥

देवी—हं उय्याणं गआ मे दुहिआ । [हम् उद्यानं गता मे दुहिता ।]

राजा—कोऽत्र ।

(प्रविश्य)

भटः—जयतु महाराजः । एष आर्यकौञ्जायनो निवेदयितुमागतः ।

अये इति—शब्द इव श्रूयते इति शेषः । अस्य शब्दस्य बहूनि कारणानि सम्भवन्ति । अयं हि = शब्दोहि—

अन्वयः—दूरस्थः अपि बहुत्वात् समीपे इव वर्तते, हेतुसहस्रेषु सत्सु मतिः कुरङ्गयाम् शङ्कते ।

व्याख्या—दूरस्थः = दूरदेशवर्त्ती अपि, वहुत्वात् = आधिक्यात्, समीपं= निकटे इव, वर्तते = अस्ति, हेतुसहस्रेषु = अनेककारणेषु, सत्सु = सम्भावितेषु मतिः = मम बुद्धिः, कुरङ्गयां = स्वतनयां प्रति शङ्कते = शङ्काकुला भवति । 'स्नेहः पापमाशङ्कते' इति कारणात् ॥ ४ ॥

हम् इति—शङ्काद्योतकमिदम्, मदीया दुहितोद्यानं गता तत्र काचि-दापत् सम्भाव्यते ।

सनिर्वेदम् = सकष्टम् । अमात्यत्वम् कष्टम् = मन्त्रिभावः कष्टदायकः ।

अरे शब्द सुनाई दे रहा है, इसमें बहुत कारण हो सकते हैं । यह शब्द—

यह शब्द अधिक होने के कारण दूर होने पर भी समीप में होने वाला जैसा ज्ञात होता है । इस शब्द में अनेक कारणों की सम्भावना होने पर भी मेरी बुद्धि कुरङ्गी के प्रति शङ्का युक्त हो रही है, क्योंकि अधिक स्नेह अनवसर में शङ्का का कारण हो जाता है ॥ ४ ॥

देवी—हाँ, मेरी पुत्री बगीचे में गई है ।

राजा—कोई है ?

(प्रवेश करके)

भट—जय हो महाराज की । आर्य्य कौञ्जायन कुछ निवेदन करने आये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

भटः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(ततः प्रविशति कौञ्जायनः ।)

कौञ्जायनः—(सनिर्वेदम्) भोः ! कष्टममात्यत्वं नाम । कुतः,

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः ॥ ५ ॥

अन्वयः—कार्य्याणाम् प्रसिद्धौ जनः पार्थिवबलम् प्रवदति, विपत्तौ सचिवमतिदोषम् विस्पष्टम् जनयति, नृपतिभिः श्रुतिसुखम् उदारम् च अमात्या इत्युक्ताः मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः सुसूक्ष्मम् दण्डयन्ते ।

व्याख्या—कार्य्याणाम् = कर्तव्यार्थानाम्, प्रसिद्धौ = सम्पन्नतायां जातायाम्, जनः = लोकः, पार्थिवबलम् = नृपतिमाहात्म्यम् , प्रवदति = ख्यापयति । विपत्तौ = विधेयार्थस्यासाफल्ये, सचिवमतिदोषम् = मन्त्रिबुद्धिविपर्य्ययजन्यदोषम् विस्पष्टम् = जनयति=समुत्पादयति, नृपतिभिः = राजभिः, श्रुतिसुखम् = श्रवणाह्लादजनकम् , उदारम् = महत्वशालि, च अमात्या इति = इमे मन्त्रिण इति, उक्ताः = सादरमभिहिताः, मतिबलविदग्धाः = मिथ्याप्राज्ञम्मन्याः, कुपुरुषाः = कुमन्त्रिणः, सुसूक्ष्मम् = निभृतम्, दण्डयन्ते = दण्डिता भवन्ति । शिखरिणीवृत्तम् ॥ ५ ॥

राजा—शीघ्र भेज दो ।

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(कौञ्जायन का प्रवेश)

कौञ्जायन—(खेद के साथ) मन्त्री होना कष्टदायक होता है । क्योंकि—

कार्य सिद्ध होने पर लोग राजा के बल की प्रशंसा करते हैं और असिद्धि होने पर मन्त्री के बुद्धि को दोष देते हैं राजा लोग 'अमात्य' इस सुन्दर शब्द से सम्बोधित कर मानो उन पण्डितमानी कुपुरुष मन्त्रियों को सूक्ष्म रूप से दण्ड देते हैं ॥ ५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी । किं ब्रवीषि——उपस्थान-गृह इति । अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः । (परिक्रम्य ससम्भ्रम्) प्रसीदतु स्वामी ।

राजा—अलमलं सम्भ्रमेण । स्वैरमुपविश्य कथ्यतां वृत्तान्तः ।

कौञ्जायनः—शृणोतु स्वामी । ननु स्वामिनाहमुक्तः—स्वामिदारिकया सह गच्छोद्यानम् इति ।

राजा—एवमुक्तम् । पुनः किम् ।

कौञ्जायन—ततो गत्वोद्यानं यथासुखमाक्रीडच निवर्तमानायां राजसुतायां दासीदासहसितकथितश्रवणबृंहितमदस्रवन्मदजलार्द्रदुर्दि-

---

भावः—कार्य्यसिद्धौ जना भूपतिं संस्तुवन्ति
ह्यर्थनाशे त्वमात्यं प्रणिन्दन्त्यधन्यम् ।
मन्त्रिवर्य्या इमे ये पदं मान्यताया-
स्ते प्रदण्ड्यन्त एते कुबुद्धया विदग्धाः ॥

उपस्थानगृहे = यत्र स्थितं राजानं सर्वसाधारणाः निःशङ्कं प्रविश्य संस्तुवन्ति अतः अशङ्कनीया इयं भूमिः अशङ्कप्रवेशार्हा तत्र स्थितस्य राज्ञो दर्शनस्यानुमतत्वात् ।

अलमलं संभ्रमेण = सम्भ्रमो न कार्य्यः । स्वैरम् = स्वच्छन्दम् ।

स्वामिनाहमुक्तः = भवताहमाज्ञप्तः । स्वामिदारिकया = राजकुमार्य्या ।

दासीदासेति-दासीनां = राजकिङ्करीणां, दासानां = राजभृत्यानां च,

---

जयसेन—महाराज कहाँ हैं ? क्या कहा ? उपस्थान गृह में हैं । वहाँ जाने में तो कोई अनुमति की आवश्यकता नहीं है । (चलकर घबड़ाहट के साथ) महाराज प्रसन्न हों ।

राजा—घबड़ाओ नहीं, यथेष्ट बैठकर समाचार कहो ।

कौञ्जायन—महाराज सुनें । श्रीमान् ने आज्ञा दी थी कि तुम राज-कुमारी के साथ उद्यान में जाओ ।

राजा—हाँ, ऐसा कहा था । फिर क्या हुआ ?

कौञ्जायन—तदनन्तरं उद्यान में जाकर इच्छानुसार वहाँ क्रीडा कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाननो निहतपतितसादिपुरुषः क्षितिरजोवगुण्ठिताव्यक्तभीममूर्तिमानिव पवनो दृष्टादृष्टलघुप्रचारः स्वामिसचिवानां वक्तव्यं जनयितुकाम इवैकपुरुषविशेषं प्रकाशयितुमिच्छन्निव मदान्धस्तं देशमभ्युपगतो हस्ती ।

राजा—तिष्ठतु विस्तरः । ननु कुशलिनी कुरङ्गी ।

कौञ्जायनः—कथमकुशलिनी भवति विद्यमानेषु स्वामिभाग्येषु ।

राजा—दिष्टया । यथेष्टमिदानीं ब्रूहि,

कौञ्जायनः—ततः प्रद्रुतेषु प्राकृतजनेषु हाहाकारमात्रप्रतीकारासु

हसितकथितयोः श्रवणेन बृंहितो यो मदस्तेन स्रवता मदजलेन आर्द्रं = सिक्तं, दुर्दिनं=सघनं आननं यस्य सः = दासीदासहसितकथितश्रवणबृंहितमदस्रवन्मदजलार्द्रदुर्दिनाननः =परिचारकपरिचारिकाहास्यवचनश्रवणजन्यपरिवर्धितदानवारिक्लिन्नमुखः, •निहतपतितसादिपुरुषः = निहतः मारितः पतितश्च्यावितः सादिपुरुषो येन सः=निहतपतिताधोरणः, क्षितिरजोऽवगुण्ठिताव्यक्तभीममूर्तिः= भूधूलिसंच्छन्नास्पष्टभयानकाकारः, मूर्तिमान् = देहधारी, पवनः = वायुरिव, दृष्टादृष्टलघुप्रचारः = लक्ष्यालक्ष्यशीघ्रगमनः स्वामिसचिवानाम् = भवन्मन्त्रिणाम्, वक्तव्यम् = वचनीयताम् , जनयितुकाम इव = जनयिष्यन्निव, पुरुषविशेषम् = अपूर्वपरिचितम् ।

तत इति—प्राकृतजनेषु = साधारण लोकेषु, प्रद्रुतेषु = पलायितेषु,

---

जब राजकुमारी घर की ओर लौट रही थीं उसी समय दासी-दास के हँसने और बोलने के शब्द से चिढ़ा हुआ, मदमत्त, पृथ्वी की धूलि से सने रहने के कारण महाभयङ्कर मूर्त्तिमान वायु के आकार वाला कोई हाथी अपने पीलवान् को मारकर पृथ्वी पर गिराते हुये समस्त राजकीय पुरुषों की असावधानी प्रकट करता हुआ वहाँ उपस्थित हो गया, उसकी शीघ्रतापूर्वक गमन क्रियाकला को किसी ने देखा, किसी ने नहीं भी देखा ।

राजा—विस्तार रहने दो । कुरङ्गी सकुशल है न ?

कौञ्जायन—आपके प्रबल भाग्य के रहते उसका अकुशल क्यों होगा ?

राजा—धन्य भाग्य ! अब यथेच्छ कहो ।

कौञ्जायन—इसके अनन्तर जब साधारण लोग भाग गये, मात्र स्त्रियाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्त्रीषु समाश्रितनिहतेषु सुपुरुषेषु उद्यानगतानां सर्वोपकरणानां परीक्षणाय मुहूर्तव्याक्षिप्ते मयि च नीतिगुप्ते सहसैव स्वामिदारिकाया यानमेव प्राप्तः स हस्ती।

देवी--हं इदो वरं किण्णु खु भविस्सदि। [हम् इतः परं किन्नु खलु भविष्यति।]

राजा--अथ केन सनाथीकृता कुरङ्गी।

कौञ्जायनः--अथ कश्चिद् दर्शनी--(इत्यर्धोक्ते तिष्ठति)

राजा--यथेष्टमिदानीं ब्रूहि। निष्परिहारा व्यापदः।

कौञ्जायनः--अथ कश्चिद् दर्शनीयोऽप्यविस्मितस्तरुणोऽप्यनहङ्कारः

स्त्रीषु, हाहाकारमात्रप्रतीकारासु = हाहाकारमात्रः प्रतीकारो यासां तास्तथाभूतासु = केवलं हाहाकारकुर्वाणासु, समाश्रितनिहतेषु सुपुरुषेषु = स्वसमीपवर्त्तिषु जनेषु निहितेषु, उद्यानगतानाम्=उद्यानवर्तिनाम् सर्वोपकरणानाम् = सर्वविधसामग्रीणाम्, परीक्षणाय = अनुसन्धानाय, मुहूर्तव्याक्षिप्ते = किञ्चित्कालमन्यमनस्के मयि नीतिगुक्ते = युक्त्या रक्षिते सहसा एव हस्ती स्वामिदारिकायाः = स्वामितनयायाः यानम् = कुरङ्गीयानम् प्राप्तः।

अथेत्यादि—दर्शनीयः सुन्दरः, अविस्मितः = विस्मयरहितः, तरुणः = युवकः अनहङ्कारः = अहङ्काररहितः, शूरः = वीरः, दाक्षिण्यवान् =

उसके किसी भी प्रकार का प्रतिकार करने में असमर्थ हो हाहाकार कर रही थीं, उस समम उद्यानगत वस्तुओं के देख-रेख में मुहूर्त्तमात्र का समय लग जाने से मैं सुरक्षित बच गया, तो देखा कि वह हाथी राजकुमारी के वाहन के पास पहुँच गया?

देवी—इसके बाद क्या हुआ?

राजा—किसने कुरङ्गी की रक्षा की—

कौञ्जायन—कोई खूबसूरत (आधा कहकर रुक जाता है।)

राजा—इस समय स्वच्छन्द होकर कहो। आने वाली आपत्तियां निष्परिहार्य होती हैं वे तो आकर ही रहती हैं।

कौञ्जायन—इसके बाद कोई सुन्दर होते हुए भी गर्व रहित, तरुण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शूरोऽपि दाक्षिण्यवान् सुकुमारोऽपि बलवान् स्वामिदारिकायां हस्तिनाभिभूयमानायां तत्कालदुर्लभमभयं प्रदाय निर्विशङ्कः समासादितवांस्तं द्विपवरम् ।

राजा—अनृणः स कारुण्यस्य । ततस्ततः ।

कौञ्जायनः—ततस्तेन सललितसरभसकरतलताडनप्ररुष्टः सहसैव स्वामिदारिकां विहाय तमेव हन्तुकामः प्रतिनिवृत्तः स व्यालः ।

देवी-- कुसलो होदु । [कुशलं भवतु ।]

अनुकूलः, सुकुमारः = कोमलाङ्गः, बलवान् = बलिष्ठः, स्वामिदारिकायाम् = राजकुमार्य्याम्, हस्तिनाभिभूयमानायाम् = गजेन परिभूयमानायाम्, तत्कालदुर्लभम् = तस्मिन् समये दुष्प्रापम् , अभयम् प्रदाय = मा भैरिति वचनमुक्त्वा, निर्विशङ्कः = निर्भयः, समासादितवान् = सम्प्राप्तः ।

अनृणः स कारुण्यस्य = करुणभावानुकूलं स व्यधात् ।

ततः = तदनन्तरम्, तेन = युवकेन, सललितसरभसं = सविलासं निर्भयं च, करतलेन यत्ताडनं तेन प्ररुष्टः = सलील-निरायास-भुजप्रताडनकुपितः, प्रतिनिवृत्तः = परावृत्तः । व्यालः = रुष्टो हस्ती । अभ्यागतेन = तस्मिन् समये आयातेन । महान् प्रमादः आरक्षिपुरुषाणामसावधानता । तस्य पुरुषस्य = कुरङ्गीं रक्षितवतः पुरुषस्य प्रवृत्तिम् = समाचारम्, अन्वयम् = वंशम् ।

होकर भी अहङ्कार रहित, शूर होते हुए भी अनुद्धत, सुकुमार होते हुए भी बलवान् युवा पुरुष हाथी से डरी हुई उस राजकुमारी को उस समय के लिये सर्वथा दुर्लभ 'मत डरो, मत डरो' इस प्रकार का अभय दान देता हुआ निर्भय हो हाथी के पास जा पहुँचा ।

राजा—उस पुरुष ने दयालुता का ऋण चुका दिया । उसके बाद क्या हुआ ।

कौञ्जायन—उस पुरुष से लीला पूर्वक अनायास हाथों से मारने के कारण कुपित हुआ वह रुष्ट हाथी राजकुमारी को छोड़कर उस पुरुष को ही मारने के लिये दौड़ा ।

देवी—भला हो उसका ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—ततस्ततः।

कौञ्जायनः—अथ तदनन्तरमभ्यागतेन भूतिकेन मया च पुनर्यानमारोप्य द्रुतमानीय कन्यान्तःपुरमेव प्रवेशिता स्वामिदारिका।

राजा—अहो महानयं प्रमादः। अथ भूतिकः किमर्थं नाभ्यागतः।

कौञ्जायनः—उक्तोऽहं भूतिकेन—गत्वेमं वृत्तान्तं स्वामिने कथय। अहं पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञात्वा शीघ्रमागमिष्यामीति।

राजा—तेन हि सर्वं परीक्ष्यागमिष्यति भूतिकः। कौञ्जायन! कतरकुलसमुद्भूतः परव्यसनसहायः।

कौञ्जायनः—स्वामिन् इह विसंवादयत्यात्मानमन्त्यजोऽहमिति।

देवी—महाराअ! अकुलीणो कहं एव्वं साणुक्कोसो भवे। [महाराज! अकुलीनः कथमेवं सानुक्रोशो भवेत्।]

सर्वं परीक्ष्य = कुलादिकं सर्वं ज्ञात्वा। कतरकुलसमुद्भूतः = कस्मिन् कुले समुत्पन्नः, परव्यसनसहायः—अन्यदीयापत्तिसाहाय्यकर्ता।

आत्मानं विसंवादयति = रूप-विक्रमशीलादिसदृशवंशमनख्याय अन्त्यजोऽहमित्युक्त्वा सत्रं निह्नुते।-सानुक्रोशः = दयावान्।

राजा—इसके बाद।

कौञ्जायन—इसके बाद तत्काल आये हुए भूतिक ने और मैंने राजकुमारी को सवारी पर विदा कर एवं शीघ्रता से ले जाकर कन्याओं के निवास हेतु बने महल में उसे पहुँचा दिया।

राजा—ओह! यह रक्षकों में बहुत बड़ी असावधानी की। अच्छा, भूतिक क्यों नहीं आया।

कौञ्जायन—भूतिक ने हमसे कहा कि तुम जाकर यह समाचार महाराज से कह दो। मैं उस युवक का समाचार और वंश का पता लगा कर आ रहा हूँ।

राजा—तब तो भूतिक सारी बातों का पता लगा कर आयेगा। कौञ्जायन! दूसरे की आपत्ति में सहायक वह पुरुष किस कुल का है?

कौञ्जायन—इस विषय में उसकी बातें भ्रमोत्पादक हैं, वह कहता है मैं अन्त्यज हूँ।

देवी—महाराज नीचकुल का व्यक्ति इस प्रकार दयालु कैसे हो सकता है?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा — किन्नु खलु भवेदेतत् ।

(ततः प्रविशति भूतिकः)

भूतिकः—(सविस्मयम्) अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः । अस्य तावत् पुरुषस्य निर्व्याजेन विक्रमेण मन्दीभूता इव मनस्विनां विक्रमबुद्धयः । एकस्तु मे संशयः, किमर्थमात्मानमन्वयं चाच्छादयति । अथवा कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् । इह हि,

छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः ।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

पृथिव्याः, प्रच्छन्नरत्नता = प्रच्छन्नानि रत्नानि यस्यां सा तस्या भावः प्रच्छन्नरत्नता = गुप्तरत्नत्वम् । निर्व्याजेन = स्वाभाविकेन मनस्विनाम् = वीराणाम्, विक्रमबुद्धयः = विक्रान्ता वयमिति मतयः, मन्दीभूताः = न्यूनत्वमासादिताः । आत्मानमन्वयश्चाच्छादयति = नामवंशादिकं गोपयति । कः शक्तः सूर्य्यं हस्तेनाच्छादयितुम् अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः । यथा हस्तेन सूर्य्यस्याच्छादनं दुष्करं तथा वीराणां नामकुलादीनामाच्छादनं दुष्करम् ।

अन्वयः—कथञ्चित् स्वैः कारणैः गुरुजनैः च नियम्यमानाः सत्पुरुषा भुवि छन्ना भवन्ति, भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामाः पूर्वनियमम् विस्मृत्य विवृता भवन्ति ॥ ६ ॥

राजा—ऐसा कैसे हो सकता है ? यह (उसकी वातें अवश्य सन्देह जनक हैं ।)

(इसके वाद भूतिक का प्रवेश)

भूतिक—अहा ! पृथ्वी में रत्न छिपे हैं । इस व्यक्ति के निष्कारण पराक्रम से मनस्वियों की पराक्रम बुद्धियाँ निष्प्रभ हो गयी है । एक ही मेरा सन्देह है कि क्यों अपने को छिपा रहा है ? अथवा सूर्य को कौन हाथ से छिपा सकता है ? यहाँ—

सज्जन पुरुष कारण विशेष एवं गुरुजनों के नियन्त्रण से छिपे रहने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जयसेन ! कस्मिन् प्रदेशे वर्तते स्वामी । किं ब्रवीषि-उपस्थानगृह इति । अतस्त्वशङ्कनीयेयं भूमिः । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये अयं महाराजो देव्या सहास्ते । (उपगम्य) जयतु महाराजः ।

राजा—देवि ! त्वमभ्यन्तरं प्रविश्याश्वासय कुरङ्गीम् । अहमप्यनुपदमागमिष्यामि ।

देवी—जं महाराओ आणवेदि । [यन्महाराज आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्ता)

व्याख्या—छन्ना इति = कथञ्चित् = केनापि कारणेन, स्वैः = अनिर्वचनीयैः कारणैः = हेतुभिः, गुरुजनैश्च = मान्यपुरुषैः (पित्रादिभिः) नियम्यमानाः = शापादिना, नियम्यमाना = नियन्त्रिताः, सत्पुरुषाः = सज्जनाः, भुवि = भूतले, छन्नाः = पिहिताः, भवन्ति, भूयः = पुनः, परव्यसनम् = अन्यजनापदम्, एत्य = प्राप्य, विमोक्तुकामाः = तदुद्दिधीर्षया नियमम् = प्राक्तनसंयमम् विस्मृत्य = कारुणिकतया = गुप्तिभावमवहेल्य, विवृताः = प्रकाशिताः, भवन्ति = जायन्ते । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ६ ॥

भावः—शापादिना पिहितसर्वनिजप्रभावा
लोके कथञ्चिदपि सत्पुरुषा भवन्ति ।
आपन्नमेत्य तु नियन्तुमशक्नुवन्तः
तं रक्षितुं द्रुततरं प्रकटीभवन्ति ॥

पर भी दूसरों की आपत्ति को देखकर अपने को संभालने में असमर्थ हो उसकी रक्षा के लिये अपने नियम को त्यागकर (भूलकर) शीघ्र प्रकट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

जयसेन ! महाराज कहाँ है ? क्या कहा, उपस्थान गृह में हैं, तब तो वहाँ बेरोक प्रवेश किया जा सकता है, तो चलूँ (प्रवेश कर) ओह ! यहाँ तो महाराज रानी के साथ बैठे हैं । (पास जाकर) जय हो महाराज की ।

राजा—देवि ! तुम भी भीतर जाकर कुरङ्गी को आश्वासित करो मैं भी पीछे-पीछे आ रहा हूँ ।

देवी—जो महाराज की आज्ञा ।

(चली गई)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—को वृत्तान्तस्तस्य परार्थमनवेक्षितशरीरस्य ।

भूतिकः—श्रृणोतु स्वामी । स मुहूर्तमनादरमत्वरितं सललितं प्रियवयस्येनेव तेन हस्तिना प्रक्रीड्य निवर्तनानुवर्तनगतिविशेषैर्विमोह्य लज्जित इव तेन कर्मणा महाजनप्रशंसामसहमानः समवनतशिरस्कः स्वैरं स्वसेत्रावासं गतः ।

राजा—भोः ! प्रीतोऽस्मि । अयं हि मे द्वितीयो लाभः ।

भूतिकः—अथ तदनन्तरमुपलभ्य हस्तिनीभिस्तं गजवरं सङ्ग्रा-

व्याख्या—को वृत्तान्तः = समाचारः, परार्थम् = अन्यं रक्षितुम्, अनवेक्षितशरीरस्य = अनवलोकितस्वदेहव्यापदः पुरुषविशेषस्य ।

श्रृणोतीत्यादि—स मुहूर्तम् = क्षणम्, अनादरम् = सावहेलम् अत्वरितम् = अशीघ्रम् = असम्भ्रम् । सललितम् = सविलासम्, प्रियवस्येनैव = प्रियमित्रेणेव, निवर्तनानुवर्तनगतिविशेषैः = अपसरणाभिसरणरूपगतिविशेषैः, विमोह्य = मोहमापाद्य, लज्जित इव ह्रीण इव महाजनप्रशंसाम् = सत्पुरुषसंस्तुतिम्, असहमानः = अनभिलषन् , अवनतशिरष्कः = नतमस्तकः, स्वैरम् = स्वच्छन्दम् स्वावासम् = निजनिवासम् ।

द्वितीयो लाभः, कन्यायाः कुशलता, तद् रक्षकस्यापि दुष्टगजात् संरक्षणाम् ।

अथ—तत्पश्चात्, तदनन्तरमुपलभ्य = तमवसरं लब्ध्वा-करिणीभिः हस्ति-

---

राजा—दूसरे की रक्षा के लिये अपने शरीर की परवाह न करने वाले उस पुरुष का क्या समाचार है ?

भूतिक—महाराज सुनिये, वह कुछ समय तक अवहेलना एवं विना घबराहट के अपने मित्र के समान उस हाथी के साथ खेलकर आमने-सामने रूप पैंतरे से उसको मोहित कर उस कार्य से मानो लज्जित हो ऐसा लोगों की प्रशंसा को न सहता हुआ स्वच्छन्द रूप से अपने निवास स्थान में चला गया ।

राजा—मैं प्रसन्न हुआ, मेरे लिये यह दूसरा लाभ हुआ ।

भूतिक—इसके बाद उस मतवाले हाथी को हथिनियों की सहायता से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ह्येमां गजशालां प्रवेश्याहं तस्य पुरुषस्य प्रवृत्तिमन्वयं च ज्ञातुमन्यापदेशेन गतवानस्मि ।

राजा—अथ किं कृतो निश्चयः । श्रुतमस्माभिरन्त्यज इति ।

भूतिकः—शान्तं शान्तं पापम् । नायं तादृशः । केनापि कारणेनात्मानमन्वयं चाच्छादयति ।

राजा—अथ किं भवता परीक्षितम् ?

भूतिकः—किमत्र परीक्षितव्यम् ।

नीभिः, तं गजवरम्, सम्प्राप्य = समेत्य, = तद्भिया तद्रोषमपनुद्य, तस्य = कुरङ्गीसंरक्षकस्य पुरुषस्य, प्रवृत्तिम् = समाचारम्, अन्वयम् = वंशञ्च, ज्ञातुम् = अन्यापदेशेन = अन्यव्याजेन गतवानस्मि ।

किं कृतो निश्चयः = तस्य वंशादिविनिश्चयः प्राप्तः किम् । मया तु श्रुतमन्त्यजः = चाण्डालः सः ।

शान्तं पापम् = एतादृशं न वाच्यम्, नायं तादृशः=तथाविधः, केनापि = अज्ञातेन कारणेन, आत्मानमन्वयञ्च, स्वरूपं वंशञ्च आच्छादयति = गोपायति ।

भवता किं परीक्षितम् = किं निर्णीतम् ।

किमत्र परीक्षितव्यम् = अत्र संशयो नास्ति येन परीक्षणस्यावश्यकता भवेत् ।

अन्वयः—तस्य दैवम् रूपम् ब्रह्मजम् वाक्यम् क्षात्रम् तेजः सौकुमार्यं बलम् च एवम् तस्य अन्त्यजत्वम् यदि सत्यम् स्यात् (तद्) अस्माकम् शास्त्रमार्गेषु खेदः व्यर्थः स्यात् ।

पकड़वाकर मैंने गजशाला में भेज दिया । तदनन्तर मैं किसी अन्य बहाने से उसके कार्य (समाचार) एवं वंश का पता लगाने के लिये उसके यहाँ गया ।

राजा—तो क्या निश्चय किया ? मैंने तो सुना है कि वह अन्त्यज है ।

भूतिक—महाराज ऐसा न कहें । यह वैसा नहीं है । किसी कारण विशेष से अपने को और अपने वंश को छिपाता है ।

राजा—आखिर आपने क्या निश्चय किया ?

भूतिक—इसमें क्या जानना है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं
क्षात्रं तेजः सौकुमार्यं बलं च।
यद्येवं स्यात् सत्यमस्यान्त्यजत्वं
व्यर्थोऽस्माकं शास्त्रमार्गेषु खेदः ॥ ७ ॥

राजा—किमस्त्यस्य कलत्रम् ?

भूतिकः—सर्वमस्ति । कलत्रं त्वयमभिनिविष्टः ।

राजा—यद्यपि स्त्रीदर्शनं परिहृतं, किमर्थं तस्य पिता न परीक्षितः ?

भूतिकः—दृष्टस्तत्रभवान् सत्पुत्रसम्पन्नः । स हि,

दैवं रूपमित्यादि—तस्य = यूनः, दैवम् = देवसदृशम्, रूपम् = आकारः ब्रह्मजम् = ब्रह्म = वेदस्तदध्ययनोचितम् वाक्यम् = वचनम्, क्षात्रम् = क्षत्रियोचितम्, तेजः = शरीरकान्तिः शूरत्वमित्यर्थः, बलञ्च, एवम् = अस्यां स्थितौ, यदि = चेत् तस्य अन्त्यजत्वम् = चाण्डालत्वम् सत्यम् = तथ्यम्, स्यात् = भवेत्, तर्हि अस्माकम् शास्त्रमार्गेषु = शास्त्राध्ययनेषु, खेदः = परिश्रमः, व्यर्थः = निरर्थकः स्यात्-भवेत्-तद्रूपादिकमभिलक्ष्य तत्कुलादिनिश्चयाभावे पाण्डित्यम् व्यर्थः स्यात् । शालिनी छन्दः ।

भावः—दैवं रूपं वाणीं सुकुमारत्वं बलं तेजः ।
दृष्ट्वाप्यस्यान्त्यजता-वित्तौ मद्विज्ञता व्यर्था ॥

पद्यम्—दृष्टस्तत्र भवान् = अवलोकितः संमाननीयः स हि सत्पुत्रसम्पन्नः = तादृशगुणवत्पुत्रोपेतः ।

देवतुल्य उसका रूप, वेदों के अध्ययन से सुसंस्कृत वाणी, क्षत्रिय के समान बल, तेज और सुकुमारता यह सब होते हुए भी यदि वह वस्तुतः चाण्डाल हो तो मेरा शास्त्राध्ययन व्यर्थ ही है ॥ ७ ॥

राजा—क्या उसे स्त्री है ?

भूतिक—सब है, क्योंकि वह स्त्री का बहुत आदर करता है ।

राजा—यद्यपि पर-स्त्री दर्शन वर्जित है। उसके पिता की परीक्षा क्यों नहीं की ?

भूतिक—इस प्रकार के पुत्र से उसके पिता आदर के योग्य जान पड़ते है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसो
ज्याघातप्रचितकिणोल्वणप्रकोष्ठः ।
प्रच्छन्नोऽप्यनुकृतिलक्ष्यराजभावो
मेघान्तर्गतरविवत् प्रभानुमेयः ॥ ८ ॥

अन्वयः—व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रितायतांसः, ज्याघातप्रचितकिणोल्वणप्रकोष्ठः प्रच्छन्नः अपि अनुकृतिलक्ष्यराजभावः मेघान्तर्गतरविवत् प्रभानुमेयः ।

व्याख्या—व्यायामेति-व्यायामेन = परिश्रमेण, स्थिरः = दार्ढ्यं नीतः, विपुलः = विस्तारमाप्तः, उच्छ्रितः = तुङ्गः, आयतः = आयामवान, अंसः = स्कन्धप्रदेशो यस्य तादृशः । ज्यायाः मौर्व्याः आघातेन = सन्ताडनेन प्रचितैः= समुत्पन्नैः किणैः = शुष्कव्रणैः, उल्वणः=भीष्मः प्रकोष्ठः=कफोणेरधः भुजभागः यस्य सः तथाभूतः, प्रच्छन्नः = गुप्तः अपि अनुकृत्या = राजोचितव्यवहारेण लक्ष्यः=अनुमेयः राजभावः=नृपत्वम् यस्य स तथाभूतः । मेघान्तर्गतः=जलदाच्छन्नो यो रविः = सूर्य्यस्तद्वत्=तादृशः प्रभानुमेयः=प्रभया दीप्त्या अनुमेयः = अनुमितिज्ञानविषयः । नामकुलादिकं प्रच्छादयन्नपि आकारप्रभादर्शनेन राजायमिति ज्ञायते । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ ८ ॥

भावः—ज्याघातनिष्ठुरप्रकोष्ठवता भुजेन
स्कन्धेन चायतदृढेन पिता तदीयः ।
गुप्तोऽपि स व्यवहृतेन प्रभाव्यराज-
भावो घनावृतियुतः सवितेव भाति ॥ ७ ॥

अलमेतावता प्रसङ्गेन = तत्कुलादिज्ञीप्सया कृतेनैतावन्मात्रप्रयासो न पर्य्याप्तः पुनरप्येषा परीक्षा कर्तव्या = यथार्थस्तत्परिचयप्रयासः पुनरपि करणीयः काशीराजदूतं प्रति किं कर्तव्यम् = कः सन्देशस्तस्मै प्रदेयः । दूतशतानि = शतशब्दो बहुत्ववाचको बहवो दूता आगताः ।

व्यायाम करने के कारण उनके कन्धे पुष्ट, विशाल एवं उन्नत हैं, उनके हाथ में प्रत्यञ्चा के आघात से उत्पन्न कठिन घट्ठे हैं। यद्यपि वे छिपकर रहते हैं तथापि राजत्वभाव उनके आकार-प्रकार से इस तरह लक्षित हो रहा है जैसे मेघों से घिरे सूर्य्य लक्षित होते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—अलमेतावता प्रसङ्गेन। पुनरप्येषा परीक्षा क्रियताम्।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी।

राजा—अथेदानीं काशिराजदूतं प्रति किं कर्तव्यम्।

भूतिकः—स्वामिन्! दूतशतान्यागतान्यागमिष्यन्ति च।

न तत्र कर्तव्यमिहास्ति लोके
कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम्।

अन्वयः—इह लोके तत्र कर्तव्यम् न अस्ति कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम् हि सर्वे नरेन्द्राः मल्लाः पताकाम् इव नरेन्द्रकन्याम् तर्कयन्ति।

व्याख्या—न तत्रेति—इह लोके तत्र = दूतागमनविषये कर्तव्यम् = करणीयम् नास्ति = न विद्यते (तस्य चिन्ता न करणीया) हि यतः कन्यापितृत्वम् = कन्यापितृभावः, बहुवन्दनीयम् = अत्यन्तं प्रशंसनीयम्, (तस्यां सत्यां राजानस्तदाकृष्टाः तमीड्यदृष्टया पश्यन्ति) हि = यतः सर्वे नरेन्द्राः = राजानः, मल्लाः = मल्लक्रीडानिपुणाः, योद्धारः, पताकामिव = विजयध्वजमिव नरेन्द्रकन्याम् नृपसुताम् पश्यन्ति। मल्ला यथा विजयमभिलषन्ति, तथा राजानः राजकन्यां लिप्सन्ते। उपजातिवृत्तम्।

भावः—

कन्यासत्वेऽभ्यर्थिनोऽनेकसङ्ख्या, किं वाच्यास्ते नात्र कार्य्या हि चिन्ता।
राज्ञः पुत्री सर्वभूपैर्ह्युपेया मल्लैः यद्वद् वैजयन्ती जयस्य॥ ९॥

दाक्षिण्यम् = उदारता, गुणबाहुल्यम् = गुणाधिक्यम्, तदात्वम् = समयोचितां परिस्थितिम्, आयतिम् = भविष्यच्च, अवेक्ष्य = परीक्ष्य त्वरतां = शीघ्रतां दीर्घसूत्रतां = विलम्बञ्च परित्यज्य देशकालाविरोधेन = देशकालानु-

---

राजा—इस प्रसङ्ग को यही समाप्त करो।
फिर भी इसकी परीक्षा करो।

भूतिक—जो महाराज की आज्ञा।

राजा—काशीराज का दूत आया है। उनको क्या सन्देश दिया जाय।

भूतिक—महाराज अनेको दूत आये तथा और भी आयेंगे।
इस प्रसङ्ग में कुछ करना नहीं है, कन्या का पिता होना बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वे नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्यां
मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ॥ ९ ॥

राजा—कोऽभिप्रायः ।

भूतिकः—सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्तव्यम् । गुणबाहुल्यं तदात्वमायति चावेक्ष्य त्वरतां दीर्घसूत्रतां च परित्यज्य देशकालाविरोधेन साधयितव्यं कार्यमित्यर्थः ।

राजा—युक्तमभिहितं भूतिकेन। कौञ्जायन ! किमर्थं तूष्णींभूतः ।

कौञ्जायनः—स्वामिन् ! बहुष्वपि क्षत्रियेषु पूर्वसम्बन्धविशेषौ

सारेण, साधयितव्यम् = करणीयम् । किमर्थं तूष्णीं भूतः = कथं न स्वविचारं प्रकटयसि ।

पूर्वसंबन्धविशेषौ = पुरातनसम्बधिनौ, भगिनीपतित्वे तुल्यौ = द्वावप्यावुत्तौ, आत्मसम्बन्धयोग्यौ=स्वसम्बन्धार्हौ, पुत्रस्य कारणात्=स्वपुत्रविवाहार्थम्, अतिबाला=अत्यल्पवयस्काः, अपदेशमुक्त्वा=छलेनोक्त्वा, बलाबलचिन्तायाम्=कर्तव्याकर्तव्यनिर्णये, स्वामी प्रमाणम् = भवानन्तिमो निर्णायकः । अपोह्य = त्यक्त्वा, द्वयोः = सौवीरराज-काशीराजयोः । भृत्यदूषणीयाः = भृत्यैः अनुचरैः दूषणीयाः = निन्दनीयाः । स्वामिनो हि स्वाम्यममात्यानाम्=मन्त्रिभी राजाऽनुसर्तव्यः । इदानीं न प्रत्याख्यातव्यम् = स्वनिर्णयो वाच्य इत्यर्थः । अस्म-

---

प्रशंसनीय है सभी राजे राजकन्या को उसी प्रकार चाहते हैं जैसे वीर विजय-पताका को चाहते हैं ॥ ९ ॥

राजा—इसका क्या अभिप्राय है ।

भूतिक—सब जगह उदारता नहीं करनी चाहिये, गुण की अधिकता और उस काल की परिस्थिति तथा भविष्य का विचार करके न शीघ्रता करनी चाहिये और न विलम्ब ही करना चाहिये । देश और काल के अनुसार कार्य्य करना चाहिये ।

राजा—भूतिक ने ठीक कहा है, कौञ्जायन ! तुम क्यों मौन हो ?

कौञ्जायन—महाराज बहुत क्षत्रियों के रहने पर भी पुराने सम्बन्धी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ अस्मत्सम्बन्धयोग्याविति स्वामिना चिन्तितौ। तत्र पूर्वमेव सौवीरराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। स चास्माभिरतिबाला कन्येत्यपदेशमुक्त्वा सुपूजितो विसर्जितः। इदानीं तु काशिराजेन पुत्रस्य कारणाद् दूतः प्रेषितः। तत्र बलाबलचिन्तायां स्वामी प्रमाणम्।

राजा—सम्यगुक्तं कौञ्जायनेन। भूतिक! सर्वराजमण्डलमपोह्य द्वयोः स्थापितयोः कं प्रति विशेषः।

भूतिकः—न भृत्यदूषणीया राजानः, स्वामिनो हि स्वाम्यममात्यानाम्।

राजा—अलमुपचारेण। ब्रूहि को निश्चयः।

भूतिकः—इदानीं तु न प्रत्याख्यातव्यम्। स्वामिन्! सौवीरराजकाशिराजौ स्वामिनो भगिनीपतित्वे तुल्यौ। अथ देव्या भ्रातेति सौवीरेन्द्रो गुणाधिकः।

त्सङ्कल्पानुवादकः = मद्विचारानुमोदकः। उभयथा=अधिकगुणिनः पुरातन सम्बन्धिनः भवता स्वीकृतस्य च प्राप्त्येत्यर्थः। दूतसम्पातः = दूतस्य प्रेषणम्।

सौवीर राज एवं काशीराज आपके बहनोई होने के कारण दोनों समान हैं, और सम्बन्ध के योग्य हैं ऐसा आपने विचारा है। उसमें सौवीरराज ने पहले ही दूत भेजा था तो उसको हम लोगों ने अभी 'कन्या अत्यन्त कम अवस्था की है' ऐसा बहाना करके सत्कार सहित लौटा दिया। इस समय काशीराज ने पुत्र के विवाह के लिये दूत भेजा है। इस विषय में क्या किया जाय? यह निर्णय आप के ही आधीन है।

राजा—कौञ्जायन ने उचित कहा। भूतिक! सब राजाओं की उपेक्षा करके पूर्वोक्त दो राजाओं को प्रमुखता दी गयी। इन दोनों में किसकी विशेषता है?

भूतिक—भृत्यों को राजा की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। राजाओं का मन्त्रियों पर प्रभुत्व रहता है।

राजा—चापलूसी छोड़ो। अपना निर्णय बताओ।

भूतिक—अब तो खण्डन नहीं करना है। महाराज! सौवीरराज तथा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा—न खलु भवानस्मत्सङ्कल्पानभिवादकः ।

भूतिकः—उभयथानुगृहीतोऽस्मि ।

राजा—भोः ! किन्नु खलु सौवीरेन्द्रेण पुनर्न दूतसम्पातः क्रियते ।

भूतिकः—तत्रास्ति मे कश्चित् सन्देहः । सुष्ठु परीक्ष्य वक्ष्यामीति नोक्तवानस्मि ।

राजा—ननु कुशली तत्रभवान् ।

भूतिकः—वदन्ति चारपुरुषाः-

न दृश्यते तत्रभवान् सपुत्रः
कार्याण्यमात्याः किल वर्तयन्ति ।

अन्वयः—सपुत्रः तत्रभवान् न दृश्यते अमात्याः किल कर्माणि वर्तयन्ति, अत्र किञ्चित् कारणम् न विद्यते, राजकुलप्रवेशः न लभ्यते ।

व्याख्या—न दृश्यत इति—सपुत्रः = ससुतः, तत्रभवान् = माननीयः, (सौवीरराज इति शेषः) न दृश्यते=नावलोक्यते, (इदानीं तदभावे) अमात्याः= मन्त्रिणः किल कर्माणि = राजकार्य्याणि, वर्तयन्ति = कुर्वन्ति, संपादयन्ति अत्र = तददर्शने किञ्चित् कारणम् = कोऽपि हेतुः न विद्यते = स्पष्टतो नोपलभ्यते । राकुलप्रवेशः = राजसद्मनि संगमः न लभ्यते न प्राप्यते कैश्चिदिति शेषः अतो गत्वापि समाचारः सम्यगवगन्तुं न शक्यते ।। १० ।।

काशीराज यद्यपि बहनोई होने के कारण समान हैं तथापि महारानी के सौवीरराज भाई हैं । इसलिये अधिक गुण वाले है ।

राजा—तुम कभी भी हमारे सङ्कल्प का विरोध नहीं करते हो ।

भूतिक—दोनों प्रकार से अनुगृहीत हुआ ।

राजा—अजी ! किन्तु सौवीरराज पुनः दूत क्यों नहीं भेजते है ।

भूनिक—इस विषय में मुझे भी कुछ सन्देह है, अच्छी तरह परीक्षा करके बताऊँगा ।

राजा—सौवीरराज सकुशल तो हैं न ?

भूतिक—गुप्तचर लोग ऐसा कहते है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न विद्यते कारणमत्र किञ्चि-
न्न लभ्यते राजकुलप्रवेशः ॥ १० ॥

राजा—भोः किन्नु खलु भवेदेतत् ।

कामाहतः कुमतिभिः सचिवैर्गृहीतो
रोगातुरः स्वजनरागमवेक्षते वा ।
शप्तो द्विजैर्व्रतमुपेत्य करोति शान्ति
को वा भवेन्नरपतेर्गृहरोधहेतुः ॥ ११ ॥

भावः—सौवीरराजः ससुतः कुतोऽपि न दृश्यते लोकैः । कारणमत्राविदितं गत्वापि न प्रवृत्तिरुपलभ्या ॥ १० ॥

किन्तु खल्वेतत् भवेत् = राज्ञोऽदर्शने किं कारणम् ।

अन्वयः—कामाहतः कुमतिभिः सचिवैः गृहीतः वा रोगातुरः स्वजनरागम् अवेक्षते, द्विजैः शप्तः व्रतम् उपेत्य शान्तिम् करोति, नरपतेः गृहरोधहेतुः कः वा भवेत् ।

व्याख्या—कामाहतः इति—कामाहतः = कामिन्यनुरागेण पीडितः, कुमतिभिः = कुबुद्धिभिः, सचिवैः = मन्त्रिभिः, गृहीतः = कुत्राप्यज्ञाते स्थाने नियन्त्रितः, रोगातुरः = व्याधिपीडितः, वा स्वजनरागम् = आत्मीयपरिजनरागम्, अवेक्षते = परीक्षते आत्मीयाचारं ज्ञीप्सते द्विजैः = ब्राह्मणैः (अपराधे) शप्तः = प्राप्तशापः, वनम् = अरण्यम् उपेत्य = गत्वा, व्रतमुपेत्य इति पाठे व्रतमाश्रित्य शान्तिम् = तच्छारप्रायश्चित्तं करोति । नरपतेः = सौवीरराजस्य गृहरोधहेतुः = गृहे प्रच्छन्नवासकारणम् को वा भवेत् = पूर्वोक्तेषु कारणेष्वेकः स्यात् येन नालोक्यते ।

सौवीर महाराज नहीं दिखाई देते । सारा राजकार्य मन्त्री लोग करते हैं, इसमें कोई कारण प्रत्यक्ष नहीं दीखता । राजदरबार में किसी का भी प्रवेश निषिद्ध हैं ।

राजा—अजी ! इसमें क्या कारण हो सकता है—

कामासक्त हैं या मन्त्रियों ने उनको कैद कर लिया है, अथवा रोगी हैं या आत्मीय जनों के प्रेम की परीक्षा कर रहे हैं । अथवा ब्राह्मणों ने उनको शाप दे दिया है व्रत ग्रहण कर उसकी शान्ति कर रहे हैं इनमें उनके छिपने का कौन सा कारण हो सकता है ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शीघ्रं परीक्ष्यतामेष वृत्तान्तः ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

राजा—कौञ्जायन ! किमिदानीं काशिराजदूतं प्रति कर्तव्यम् ।

कौञ्जायनः—एवं गते काशिराजदूतः पूजयितव्यः । बहुमुखा विवाहा यथेष्टं साध्यन्ते ।

राजा—अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानां, न स्नेहम् ।

(नेपथ्ये)

जयतु स्वामी, जयतु महाराजः । दशनालिकाः संपूर्णाः ।

भूतिकः—स्वामिन् ! शेषमभ्यन्तरे चिन्तयिष्यामः । अतिक्रामति

भावः—सचिवात्तः किं कामी रुग्णो वा वीक्षते स्वजनरागम् ।
शक्तो वने तपस्यति को हेतुस्तस्य गृहरोधे ।। ११ ।।

शीघ्रं परीक्ष्यतामेष वृत्तान्तः = अस्य याथार्थ्यमुपलभ्यतां वृत्तस्य । पूजयितव्यः = सत्कृत्य विसर्जनीयः ।

कार्य्यमवेक्षते = कर्तव्यमेव निश्चिनोति न स्नेहम् अभ्यन्तरे = कालान्तरे अतिक्रामति = अतिवर्तते । आश्वासयितव्या = सान्त्वयितव्या महाजनः = आत्मीयवर्गः ।

इस बात शीघ्र पता लगाओ ।

भूतिक—महाराज की जो आज्ञा ।

राजा—कौञ्जायन ! इस विषय में काशीराज के दूत के प्रति क्या किया जाय ?

कौञ्जायन—ऐसी स्थिति में काशीराज के दूत का आदर करना चाहिये, विवाह के बहुत मार्ग हैं और बहुतों में किसी एक को चुनना होता है ।

राजा—अहो मन्त्रियों की बुद्धि काम को विचारती, प्रेम को नहीं । (नेपथ्य में) जय हो महाराज की । दश बज गये ।

भूतिक—इस विषय का शेष विचार अन्य समय होगा । इस समय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्नानवेला। स्वामिदारिका चाश्वासयितव्या। महादेवी च चिरं प्रतीक्षते। महाजनोऽप्यस्मिन्नुपद्रवे स्वामिनं द्रष्टुमिच्छति।

राजा—अहो महद्भारो राज्यं नाम। कुतः,

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।

अन्वयः—धर्मः प्रागेव चिन्त्यः स्वबुद्धया सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या, रागरोषौ प्रच्छाद्यौ कालयोगेन मृदुपरुषगुणौ कार्यौ लोकानुवृत्तम् = ज्ञेयम् परचरनयनैः मण्डलम् प्रेक्षितव्यम् इह आत्मा यत्नात् रक्ष्यः पुनः रणशिरसि सः अपि न रक्षितव्यः।

व्याख्या—धर्म इति = धर्मः प्रागेव = पूर्वमेव, चिन्त्यः = विवेचनीयः, स्वबुद्धया = स्वधिया, सचिवमतिगतिः = मन्त्रिबुद्धिमार्गः, प्रेक्षितव्या = अवलोक्या रागरोषौ = कामक्रोधौ, प्रच्छाद्यौ = वशान्नियम्यौ, कालयोगेन = समयानुसारेण, मृदुपरुषगुणौ = मार्दवपारुष्ये, कार्यौ = विधेयौ, लोकानुवृत्तम् = जनाचरितम्, ज्ञेयम् = बोधव्यम्, परचरनयनैः = परे ये चरास्तन्नयनैः = परगुप्तचरनेत्रैः, मण्डलम् = राष्ट्रम् प्रेक्षितव्यम् = अवलोकनीयम्। इह = लोके आत्मा = स्वशरीरम्=यत्नात्=प्रयत्नात्, रक्ष्यः=रक्षणीयः, रणशिरसि= सङ्ग्रामाङ्गणे पुनः सोऽपि = आत्मापि न अवेक्षणीयः=न अपेक्षणीयः, तस्यापि रक्षा न कर्तव्या सर्वथा विजयाय युधि गन्तव्यः पराजयान्मरणं श्रेयस्करम्। इत्थं राज्यं महाभारः।

स्नान की बेला बीत रही है, राज पुत्री को आश्वासन भी देना है, महारानी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहीं होंगी। और लोग भी श्रीमान् को देखना चाहते हैं।

राजा—ओह! राज्य महाभार हैं—

इसमें पहले धर्म देखना होता है, अपनी बुद्धि से मन्त्रियों का विचार जानना होता है, रागद्वेष को छिपाना पड़ता है, समय-समय पर कोमलता और कठोरता का अनुसरण करना होता है, प्रजा वर्ग के आचरण को जानना होता है, गुप्तचरों द्वारा अपने राष्ट्र और बाहरी राष्ट्र की जानकारी रखनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥१२॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

प्रथमोऽङ्कः ।

भावः—धर्मचिन्ता पुरा मन्त्रिभावो विलोक्यः
क्रोधरागौ सुगोप्यौ मृदुत्वोग्रते च ।
योग्यकाले विधेये, चरैः प्रेक्षणीयं
रक्षणीयोऽयमात्मा रणे सोऽप्युपेक्ष्यः ॥

पड़ती है, हर समय में अपनी रक्षा करनी पड़ती है । संग्राम में अपनी रक्षा की भी उपेक्षा की जाती है ।। १२ ।।

(सबका प्रस्थान)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः—भो ! ण जाणन्ति अवत्थाविसेसं इस्सरपुत्ता णाम। अदो तत्तभवं अविमारओ इसिसावेण कुलपरिब्भंसं अन्तअकुलप्पवासं अत्तणो विण्णाणं गुरुजणं च अचिन्तअन्तो जदा हत्थिसम्भमदिअसे कुन्तिभोअदुहिआ कुरंगो दिट्ठा, तदप्पहुदि, अण्णादिसो विअ संवुत्तो। ही ही किं बहुणा, मए वि सह गोट्ठि णेच्छदि, सव्वआलं चिन्तअन्तो अहिरमदि। सच्चो खुलीअप्पवादो 'सङ्घआरिणो अणत्थ' त्ति। को एत्थ सम्बन्धो। सा राअदारिआ सअं अन्तअ त्ति। अहं पि दाव बम्हणपरिवादं परिहरन्तो बम्हणकुलेसु परिब्भमिअ पच्छण्णो तत्त-होदो आवासं एव्व गच्छामि। [भोः ! न जानन्त्यवस्थाविशेपमीश्वरपुत्रा

अवस्थादिशेषम् = समयपरिवर्तनम् , ईश्वरपुत्राः = राजपुत्राः, तत्र-भवान् = माननीय., ऋषिशापेन = चण्डालो भवेति वर्षव्यापिना शापेन हस्तिसंभ्रमदिवसे = मत्तगजस्य क्रीडोद्यानं प्रविश्य तत्रत्यान् पीडयतो निग्रहदिवसे। अन्यादृशः = चण्डालताविशदृशः, संवृत्तः = जातः, गोष्ठीं नेच्छति = जनैः सह वासं न कामयते, सर्वकालम् = सर्वदा, चिन्तयन्न-भिरमते = चिन्तितो भवति, सहचारिणोऽनर्थाः = एकस्यानर्थस्य सम्पाते ऽन्येप्यागच्छन्ति। "छिद्रेष्वनर्था वहुलीभवन्तीति' लोकोक्तिः। सा राज-दारिका = राजपुत्री, स्वयमन्त्यजः = चण्डालः कोऽत्र संबन्धः = संबन्धयोग्यता नास्ति। अवस्थापरिभ्रष्टे = स्वदशाच्युते, अवहुकार्यतया = कार्याधिक्या-भावेन, मुहूर्तकम्=कियन्तं कालम् निर्वेदं विनोदयामि = मनोऽनुरञ्जयामि। ब्राह्मणेन किं कार्य्यम् = किमर्थं ब्राह्मणमन्विष्यसि।

विदूषक—ये राजा के लड़के अवस्था के परिवर्तन को नहीं समझते हैं। इसीलिये यह अविमारक ऋषि के शाप के कारण कुल-पतन, अन्त्यज कुल-प्रवास, अपना ज्ञान तथा गुरुजन सब कुछ भूलकर, जब से उस हस्ति-संभ्रम के दिन कुन्तिभोज की लड़की कुरङ्गी दिखाई दी, तभी से कुछ और ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाम । अतस्तत्रभवान् अविमारकः ऋषिशापेन कुलपरिभ्रंशमन्त्यजकुलप्रवासमात्मनो विज्ञानं गुरुजनं चाचिन्तयन् यदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कुन्तिभोजदुहिता कुरङ्गी दृष्टा, तदाप्रभृत्यन्यादृश इव संवृत्तः । ही ही किं बहुना, मयापि सह गोष्ठीं नेच्छति, सर्वकालं चिन्तयन्नभिरमते । सत्यः खलु लोकप्रवादः 'सङ्घचारिणोऽनर्था' इति । कोऽत्र सम्बन्धः । सा राजदारिका स्वयमन्त्यज इति । अहमपि तावद् ब्राह्मणपरिवादं परिहरन् ब्राह्मणकुलेषु परिभ्रम्य प्रच्छन्नस्तत्रभवत आवासमेव गच्छामि ।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—एदस्सिं अवत्थापरिब्भट्ठे राअउले अबहुकय्यदाए णअरं पेक्खिदुं णिग्गदम्हि । (परिक्रम्यावलोक्य) अयि एसो अय्यसन्तुट्ठो गच्छइ । होदु, एदेण सह हसन्ती मुहुत्तअं णिव्वेदं विणोदेमि । (उपसृत्योर्ध्वमवलोक्य) हला कोमुदिए ! किं लद्धो बम्हणो । किं भणासि—ण लभामि त्ति । [एतस्मिन्नवस्थापरिभ्रष्टे राजकुलेऽबहुकार्यतया नगरं प्रेक्षितुं निर्गतास्मि । अयि एष आर्यसन्तुष्टो गच्छति । भवतु, एतेन सह हसन्ती मुहूर्तकं निर्वेदं विनोदयामि । हला ! कौमुदिके ! किं लब्धो ब्राह्मणः । किं भणसि—न लभ इति ।]

तरह का हो गया है । हः हः ! और तो और मेरे साथ भी बैठना नहीं चाहता है । सदा कुछ विचारता रहता है । लोग ठीक ही कहते है, अनर्थ अकेला नहीं होता है । यहाँ कौन सम्बन्ध ? वह राजकन्या है स्वयं अन्त्यज है, मैं भी ब्राह्मणों की निन्दा को बचाता हुआ ब्राह्मणों के घरों में घूमता हुआ छिपकर उस के आवास में जाता हूँ ।

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—इस अवस्था परिभ्रष्ट राजकुल में काम कम होने के कारण नगर देखने निकली हूँ । (चलकर तथा देखकर) अरे यह आर्य सन्तुष्ट जा रहे हैं । इनके साथ हंस खेलकर जरा दिन बहला लूं । (समीप जाकर और ऊपर देखकर) सखी कौमुदिके ! क्या ब्राह्मण मिल गये ? क्या कहा ? अभी नहीं मिले ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—चन्दिए। किं एदं ! [चन्द्रिके ! किमेतत् ।]

चेटी—अय्य ! कश्चि बम्हणं अण्णेसामि। [आर्य ! कश्चिद् ब्राह्मणमन्विष्यामि ।]

विदूषकः—बम्हणेण किं कय्यं ! [ब्राह्मणेन किं कार्यम् ।]

चेटी—किमण्णं, भोअणत्थं णिमन्तेदुं। [किमन्यद्, भोजनार्थं निमन्त्रयितुम् ।]

विदूषकः—भोदि ! अहं को, समणओ। [भवति ! अहं कः, श्रमणकः ।]

चेटी—तुवं किल अवेदिओ। [त्वं किलावैदिकः ।]

विदूषकः—किस्स अहं अवेदिओ सुणाहि दाव। रामाअणं। णाम णट्टसत्थं। तस्सि पञ्च सुलोआ असम्पुण्णे संवच्छरे मए पठिदा। [कस्मादहमवैदिकः। शृणु तावत्। अस्ति रामायणं नाम नाट्यशास्त्रम्। तस्मिन् पञ्च श्लोका असम्पूर्णे संवत्सरे मया पठिताः।]

चेटी—जाणामि जाणामि। अय्यस्स कुलोइदो ईदिसो मेधाविभावो। [जानामि जानामि। आर्यस्य कुलोचित ईदृशो मेधाविभावः।]

विदूषकः—ण केवलं सुलोआ एव, तेसं अत्थो वि मुणिओ। अण्णं च। अवरो विसेसो, बम्हणो दुल्लहो अक्खरञ्जो अत्थञ्जो अ।

विदूषक—चन्द्रिके ! यह क्या ?

चेटी—किसी ब्राह्मण की खोज कर रहीं हूँ।

विदूषक—ब्राह्मण से क्या कार्य है ?

चेटी—और क्या ? भोजन के लिये निमन्त्रण देना है।

विदूषक—अरी मैं क्या संन्यासी हूँ।

चेटी—तुम वैदिक नहीं हो।

विदूषक—कैसे मैं अवैदिक हूँ। सुनो-रामायण नाम का नाटक है। वर्ष पूरा नहीं हो पाया और मैंने इसके पाँच श्लोक पढ़ लिये।

चेटी—जानती हूँ। आपकी यह बौद्धिक प्रखरता कुल-क्रम से आयी है।

विदूषक—केवल श्लोक ही नहीं, उनके अर्थ को भी जानता हूँ,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[न केवलं श्लोका एव, तेषामर्थोऽपि ज्ञातः। अन्यच्च। अपरो विशेषः, ब्राह्मणो दुर्लभोऽक्षरज्ञोऽर्थज्ञश्च।]

चेटी—तेण हि भणाहि किं णाम एदं अक्खरं। [तेन हि भण किं नामैतदक्षरम्।] (नाममुद्रिकां दर्शयति)

विदूषकः—(आत्मगतम्) अजाणमाणो किं भणिस्सं। (विचार्य) भोदु दिट्ठं। एवं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) भोदि! इदं अक्खरं मम पुत्थए णत्थि। [अजानानः किं भणिष्यामि। भवतु दृष्टम्। एवं तावद् भणिष्यामि भवति! एतदक्षरं मम पुस्तके नास्ति।]

चेटी—जदि ण जाणासि, अदक्खिणं भुञ्जेहि। [यदि न जानासि, अदक्षिणं भुङ्क्ष्व।]

विदूषकः—भोदु भोदु। [भवतु भवतु।]

चेटी—पेक्खामि दाव अय्यस्स अंगुलीअअं। [पश्यामि तावदार्यस्याङ्गुलीयकम्।]

विदूषकः—पेक्ख पेक्ख ममकेरअं दंसणीअं। [पश्य पश्य मदीयं दर्शनीयम्।]

चेटी—(गृहीत्वा) एसो भट्टिदारओ इदो एव्व आअच्छदि। [एष भर्तृदारक इत एवागच्छति।]

मुझमें यह विशेषता है। अक्षर जाने और उसका अर्थ भी जाने, ऐसे ब्राह्मण दुर्लभ होते हैं।

चेटी—अच्छा तो कहो यह कौन अक्षर है (नाम लिखी अंगूठी दिखाती है)।

विदूषक—(अपने आप) मैं अनजान क्या बताऊँगा, (सोचकर) समझ गया यही कहूँगा (प्रकट) यह अक्षर मेरी पुस्तक में नहीं है।

चेटी—अगर नहीं जानते तो बिना दक्षिणा के भोजन करो।

विदूषक—अच्छा अच्छा।

चेटी—जरा आपकी अंगूठी देखूँ।

विदूषक—देखो देखो। मेरी अंगूठी देखने लायक है।

चेटी—(लेकर) यह राजकुमार इधर ही आ रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—(परावृत्यावलोक्य) कहिं कहिं तत्तभवं। [कुत्र कुत्र तत्रभवान् ।]

चेटी—विलोभिदो मुद्धबम्हणो । इमं जणसमूहं पविसिअ चउप्पहमग्गे वञ्चिअ गमिस्सं । (निष्क्रान्ता) [विलोभितो मुग्धब्राह्मणः । इयं जनसमूहं प्रविश्य चतुष्पथमार्गे वञ्चयित्वा गमिष्यामि ।]

विदूषकः—(सर्वतो विलोक्य) चन्दिए ! चन्दि ! कहिंए कहिं चंदिआ हा वंचिदो म्हि । गंडभेददासीए सीलं आणंतो वि अत्तणो भोअणविस्सम्भेण छालिदो म्हि (परिक्रम्य) भोअणं वि सलिअं चिंतेति । (अग्रतो विलोक्य) हंत एसा धावइ । चिट्ठ चिट्ठ अधम्मिट्ठदासि ! चिट्ठ । किं धावइ एव । जाव अहं वि धावामि । (धावति) मम पादा सिविणे हत्थिणा आसादिअमाणस्स विअ तहिं तहि एव्व पडन्ति । हन्त कुम्भदासीए वुत्तन्तं तत्तहोदो णिवेदइस्सं । [चन्द्रिके ! चन्द्रिके ! कुत्र कुत्र चन्द्रिका । हा वञ्चितोऽस्मि । गण्डभेददास्याः शीलं जानन्नप्यात्मनो भोजनविश्रम्भेण छलितोऽस्मि । भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि । हन्तैषा धावति । तिष्ठ तिष्ठ अधर्मिष्ठदासि ! किं धावत्येव । यावदहमपि धावामि ।

गण्डभेददास्याः = गर्हितचरित्राया दास्याः, भोजनविश्रम्भेण = भोजनविश्वासेन, छलितः = वञ्चितः, भोजनमप्यलीकं चिन्तयामि यया वञ्चितः- तत्कथितं भोजनमपि मिथ्यैव सम्भवेत् । अधर्मिष्ठदासि = पापदासि । हस्तिना आसाद्यमानस्य=करिणा गृहीतस्य, तत्र तत्रैव पततः = तस्मिन्नेव स्थाने पततः, अग्रे न गच्छतः इत्यर्थः ।

विदूषक—(मुड़कर) कहाँ ? कहाँ हैं राजकुमार ?

चेटी—ठग लिया इस बेवकूफ ब्राह्मण को । इस जन समूह में मिलकर चौराहे पर ठगकर निकल जाऊँगी । (चली गयी)

विदूषक—(चारो ओर देखकर) चन्द्रिके ! कहाँ कहाँ है चन्द्रिका ? हाय ठगा गया। मैं इस कलमुही दासी का स्वभाव जानता था तथापि भोजन मिलने की आशा से ठगा गया । (चलकर) भोजन निमन्त्रण भी झूठा हो सकता है (आगे देखकर) हाय यही तो दासी जा रही है मैं भी दौड़ता हूँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मम पादौ स्वप्ने हस्तिनासाद्यमानस्येव तत्र तत्रैव पततः। हन्त ! कुम्भदास्या वृत्तान्तं तत्रभवते निवेदयिष्यामि।]

(निष्क्रान्तः)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशत्युपविष्टोऽविमारकः।)

अविमारकः—

अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीं
वालां भयाकुलविलोलविषादनेत्राम्।

अन्वयः—अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीम् भयाकुलविलोलविषादनेत्रां बालाम् नित्यम् स्वप्नेषु उपलभ्य पुनः विबोधे जातिस्मरः प्रथमजातिम् इव स्मरामि ॥ १ ॥

व्याख्या—अद्यापीति—अद्यापि=बहुतिथे काले गतेऽपि संप्रति, हस्तिनः करस्य शीकरैः शीतलानि अङ्गानि यस्याः सा ताम् तथोक्ताम् = करिकर-जलकणसुशीरशरीराम्, भयेन आकुले विलोले विषादनेत्रे यस्या सा तथोक्ताम् भीतिव्याकुल-चञ्चल-विषण्ण-लोचनाम्, बालाम् = नवयौवनाम् नित्यम् = प्रतिरात्रि, स्वप्नेषु = स्वप्नकालेषु, उपलभ्य = प्राप्य पुनः = तदनन्तरं, विबोधे = जागरे, जातिस्मरः = जातेः पूर्वजन्मनः स्मरो यस्य स

(दौड़ता है) मेरे पैर जहाँ के तहाँ ही पड़ रहे है, जैसे सपने में हाथी पकड़ लिया हो हाय, इस अभागी दासी की सारी बातें महाराज से कहूँगा।

(निष्क्रान्तः)

इति प्रवेशकः।

(बैठे हुये अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—हाथी के सूँड़ के जलकणों से सिक्त शीतल शरीर वाली, एवं भय से व्याकुल चञ्चल तथा विषाद पूर्ण नेत्र वाली उस नवयौवना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वप्नेषु नित्यमुपलभ्य पुनर्विबोधे
जातिस्मरः प्रथमजातिमिव स्मरामि ॥ १ ॥

अहो बलमनङ्गस्य। कुतः,

दृष्टिस्तदाप्रभृति नेच्छति रूपमन्यद्
बुद्धिः प्रहृष्यति विषीदति च स्मरन्ती।

तथाभूतः = योगशक्त्या पूर्वजन्मस्मरणसिद्धिशाली प्रथमजातिम् = पूर्वजन्म इव स्मरामि = स्मृतिविषयतामानयामि ॥ १ ॥

वसन्ततिलकावृत्तम्।

भावः—करिकरसलिलसुषीमां भयलोलदृशमद्यापि तां वालाम्।
स्वप्ने दृष्ट्वा बुद्धः पूर्वजन्मेव जातिस्मरोऽध्येमि ॥ १ ॥

अहो वलमनङ्गस्य = आश्चर्यजनकं कामस्य वलम्, कुतः=तदुपपादयति—

अन्वयः—तदाप्रभृति दृष्टिः अन्यरूपम् न इच्छति, (ताम्) स्मरन्ती बुद्धिः प्रहृष्यति विषीदति च, वदनम् पाण्डुत्वम्, शरीरम् तनुताम् एति, दिवसेषु शोकम्, निशासु मोहम् व्रजामि।

व्याख्या—दृष्टिरिति—तदाप्रभृति = तद्दर्शनकालादारभ्य, दृष्टिः = नयनम् अन्यरूपम् = अन्यसौन्दर्यम् द्रष्टुम् न इच्छति = न वाञ्छति ताम् स्मरन्ती = ध्यायमाना, बुद्धिः = मतिः, प्रहृष्यति = अतिमनोहरं तद्रूपं स्मृत्वा प्रसीदति, तद्दौर्लभ्यं विचार्य च विषीदति = विषादमनुभवति वदनम् = मुखम्, पाण्डुत्वम्=पीतिमानम्, शरीरम् = देहः तनुताम् = कार्श्यम्, एति = प्राप्नोति, दिवसेषु = अहःसु, शोकम् = तदनवाप्तिजन्यां शुचम्,

---

राजकुमारी को आज भी नित्य रात में स्वप्न काल में देखकर जगा हुआ पूर्वजन्म स्मरण करने वाला जैसे पूर्वजन्म का स्मरण करता है उस प्रकार याद करता हूँ ॥ १ ॥

अहो, काम कितना प्रवल है क्योंकि—

उस काल से मेरी दृष्टि दूसरे को देखना नहीं चाहती है। बुद्धि उसका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पाण्डुत्वमेति वदनं तनुतां शरीरं
शोकं व्रजामि दिवसेषु निशासु मोहम् ॥ २ ॥

अथवा अयुक्तमधृतित्वं पुरुषाणाम् । सङ्कल्प्यमानो हि विजृम्भते मदनः । तस्मादहमिदानीं न सङ्कल्पयामि । (स्मृत्वा) अहो तस्या रूप सम्पद्, रूपानुरूपं यौवनं, यौवनसदृशं सौकुमार्यम् । अत्र हि,

प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं
गता वा स्त्रीरूपं कथमपि च ताराधिपरुचिः ।

निशासु = रात्रिषु मोहम् = मूर्च्छाम् व्रजामि = गच्छामि । एतादृशं दशा-विवर्तं जनयन्कामः आश्चर्यजनकः ।

भावः—पाण्डुवक्त्रं तदारभ्य देहः कृशो
द्रष्टुमन्यन्न दृष्टिः शुभे वाञ्छति ।
बुद्धिराधाय मोदं विषादं समैति
शोकयुक्तो दिवा मूर्च्छितोऽहं निशि ॥ २ ॥

अधृतित्वम् = धीरताभावः, सङ्कल्प्यमानः = सङ्कल्पविषयतामापाद्यमानः, विजृम्भते = वृद्धिं गच्छति । यौवनसदृशं सौकुमार्यम् = यौवनानुकूलं सौन्दर्यम् । मतिस्मृत्योरत्र सन्धिः, भावसन्धिः, एकावल्यलङ्कारः ।

अन्वयः—धात्रा युवति वपुषाम् प्रतिच्छन्दम् रचितम् किन्नु, वा ताराधिपरुचिः कथमपि स्त्रीरूपम् गता च, वा श्रीः जलशयनं सुप्तम् कृष्णम् विहाय कृतभया अन्यस्त्रीरूपम् धृता क्षितिपतिगृहे तिष्ठति ॥ ३ ॥

व्याख्या—प्रतिच्छन्दमिति—धात्रा = ब्रह्मणा, युवति वपुषाम् = तरुणीशरीराणाम् प्रतिच्छन्दम् = आदर्शम्, रचितम् = विहितम् किन्नु, वा =

स्मरण करके कष्ट और विषाद दोनों को प्राप्त करती है, मुख पीला एवं शरीर दुबला होता जा रहा है, दिन शोक और रात में मोह घेरे रहता है ॥ २ ॥

अथवा पुरुषों का धैर्यहीन होना उचित नहीं है । संकल्प करने से ही काम बढ़ता है, इसलिये मैं सङ्कल्प नहीं करूँगा (स्मरण करके) ओह !

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विहाय श्रीः कृष्णं जलशयनसुप्तं कृतभया
धृतान्यस्त्रीरूपं क्षितिपतिगृहे वा निवसति ॥ ३ ॥

कथमयं पुनरारब्धश्चिन्तयितुम्। किमिदानीं करिष्ये। मनश्च तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते। इह हि,

प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते।
चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा ॥ ४ ॥

अथवा ताराधिपरुचिः = नक्षत्रेशकान्तिः, कथमपि = केनापि प्रकारेण, स्त्रीरूपम् = कामिनीकायम्, गता = प्राप्ता च। वा = अथवा, श्रीः = लक्ष्मीः जलशयनम् = सलिलशय्याशायिनम् कृष्णम् = विष्णुम्, विहाय कृतभया = जातभीतिः, अन्यस्त्रीरूपम् = इतरनारीशरीरम् धृता = गृहीता क्षितिपति-गृहे = भूपतिगेहे, तिष्ठति = वर्तते।

भावः—व्यधितविधिरिमां किं सर्वनारीनिदर्शं
कथमपि शशिकान्तिः स्त्रीस्वरूपं गता वा।
सलिलशयनसुप्तं श्रीपतिं श्रीर्विहाय
क्षितिपतिगृहमाप्त्वा भीतचित्ता स्थिता वा ॥ ३ ॥

आरब्धश्चिन्तयितुम् = चिन्ताकर्तुमारब्धवान्, मदिच्छया न प्रवर्तते = मामिकामिच्छां नानुसरति।

अन्वयः—प्रयत्नेन प्रतिषिद्धम् क्षणमात्रम् न वीक्षते, दुर्गुणितम् शास्त्रम् यथा चिराभ्यस्तपथम् याति।

व्याख्या—प्रतिषिद्धमिति—प्रयत्नेन = प्रयासेन, प्रतिषिद्धम् = व्यावर्तितम् क्षणमात्रम् = स्तोकमपि कालम् न वीक्षते = स्वमार्गं नालोकते यथा = येन प्रकारेण, दुर्गुणितम् = दुरभ्यस्तम्, शास्त्रम् = व्याकरणादि, चिराभ्य-

---

कैसा उसका रूप था रूप के अनुसार जवानी और जवानी के समान सुकुमारता, यहाँ उस ब्रह्मा ने सारी युवतियों के शरीर का आदर्श बनाया है क्या? अथवा चन्द्रमा की कान्ति ने ही किसी तरह स्त्री का रूप धारण कर लिया है, अथवा लक्ष्मी समुद्र में सोये विष्णु को छोड़कर डर से दूसरी स्त्री का रूप धारण करके राजा के घर निवास कर रही है ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अथवा न शक्यं मनो जेतुम् । चिन्तयिष्याम्येनाम् । अहो सर्वेषां स्त्रीगुणानामेकत्र समवायः (चिन्ताभिभूत उपविशति)

(ततः प्रविशति धात्री नलिनिका च ।)

धात्री —(सवितर्कम्) अहो सङ्कडदा कय्यस्स । जइ एवं करीअदि, राअउलं दूसिअं होइ । जदि ण करोअदि, अवस्सं मा विवज्जइ । मए अणेएहि उवाएहि विआरिदं च । मम वि सा अज्ज वि पच्छादेदि । अहव किं ताए पच्छादिदं । सा तदप्पहुदि सुमणावण्णअं णेच्छदि, आहारं णाभिलसदि, ण रमदि गोट्ठीजणेण, दिग्घं णिस्ससदि, असम्बद्धं कहेदि, कहिदं ण जाणादि, गूढं हसदि, विविते रोदिदि, रोअं अवदि-

---

स्तम् = वारं वारं दुरभ्यस्तरूपमेव मन आरोहति । सदैव तस्याश्चिन्तनाभ्यासात् तत्रैव याति ॥ ४ ॥

भावः—असतोमार्गाद् निगृह्य न सत्पथे स्थाप्यते मयका ।
दुर्व्यवसितमिव शास्त्रं वारं वारं मनोऽभ्येति ॥ ४ ॥

सङ्कटतां = सङ्कटपूर्णतां, यद्येवं क्रियते = प्रच्छाद्य राजकुमारी राजकुमार्य्या प्रदीयते । सा = राजकुमारी । विपद्यते --प्राणान् प्रत्यक्ष्यति । यमपि

क्यों फिर भी मैं उसी की चिन्ता करने लगा । इस काल में मैं क्या करूँ । मन तो मेरी इच्छा के अनुसार नहीं चलता है । यहाँ पर तो—

मना करने पर भी क्षणमात्र नहीं मानता है, वारंवार उसी का स्मरण करता है । अशुद्ध याद किया गया शास्त्र वारंवार अशुद्ध ही मन पटल पर आरूढ़ हो जाता है ।

अथवा मन नहीं जीता जा सकता । तो उसी की चिन्ता करूँगा । ओह सभी प्रकार के सभी गुणों का वह एकत्रीकरण है । (चिन्ता से युक्त होकर बैठ जाता है)

(धात्री तथा नलिनिका का प्रवेश)

धात्री—(कुछ सोचती हुई) ओह कार्य की कठिनता । यदि ऐसा करें तो राजकुल दूषित होता है, न करें तो निश्चित राजकुमारी मर जाती है । मैंने अनेक प्रकार से विचारा है । आज भी हमसे भी छिपाती है । अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सदि, तणूआ होदि, पण्डभावं गच्छदि। एकं पि तहिं अच्छरिअं। एवं विधेहि अवत्थाविसेसेहि अत्तणो लज्जाए भएण कुलमाणेण बालभावेण अ एकस्सा वि किञ्चि ण मन्तेदि। [अहो सङ्कटता कार्यस्य। यद्येवं क्रियते, राजकुलं दूषितं भवति। यदि न क्रियतेऽवश्यं सा विपद्यते। मयानेकैरुपायैर्विचारितं च। ममापि साद्यापि प्रच्छादयति। अथवा किं तया प्रच्छादितम्। सा तदाप्रभृति सुमनोवर्णकं नेच्छति, आहारं नाभिलषति, न रमते गोष्ठीजनेन, दीर्घं निःश्वसिति, असम्बद्धं कथयति कथितं न जानाति, गूढं हसति, विविक्ते रोदिति, रोगमपदिशति, तन्वी भवति, पाण्डुभावं गच्छति। एकमपि तत्राश्चर्यम् एवंविधैरवस्थाविशेषैरात्मनो लज्जया भयेन कुलमानेन बालभावेन च एकस्या अपि किञ्चिन्न मन्त्रयते।]

नलिनिका— किस्स ण मन्तेदि। मम सव्वं कहेदि। [कस्मान्न मन्त्रयते। मम सर्वं कथयति।]

प्रच्छादयति = स्वाभिप्रायं कथयति। सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्। गोष्ठीजनेन = प्रियसखीसङ्गमेन असंबद्धम् = असङ्गतम्, विविक्ते = एकान्ते, रोगमपदिशति = रोगव्याजं करोति। कुलमानेन = कुलगौरवेण।

अवस्थां ज्ञात्वा = परिस्थितिं परिचिन्त्य। सर्वथा = सर्वेण प्रयत्नेन, एतेन = राजपुत्रेण योजय = घटय। तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत् = एवं-विध शूरत्वदयालुत्वगुणयुक्ता = अन्त्यजा न भवन्ति, महिष्या = राज्ञ्या। स सन्देहः = चण्डालत्वसन्देहः, अतिरिक्तगुणः = अस्मादधिकगुणान्वितः।

उसने क्या छिपाया। वह तभी से फूल की माला नहीं लेती है, भोजन करना नहीं चाहती है। सखियों की सङ्गति नहीं करती है। लम्बी साँस लेती है। असम्बद्ध बोला करती है। कहा हुआ नहीं समझती है। छिपा कर हँसती है। एकान्त में रोती है। रोग का बहाना करती है। दुबली होती जा रही है, पीली पड़ गयी है। इस पर भी यह आश्चर्य है कि वह इस स्थिति में भी भय ने कुल-गौरव तथा बाल्यभाव के चलते किसी से कुछ नहीं कहती है।

नलिनिका—क्यों नहीं कहती हमसे तो सारी बातें कह देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धात्री—हला ! जाणामि दे अभिप्पाअं, अवत्थं जाणिअ सव्वहा इमं एदेण जोजेहि त्ति। [हला ! जानामि तेऽभिप्रायम्, अवस्थां ज्ञात्वा सर्वथेमामेतेन योजयेति ।]

नलिनिका—किक्कु खु ईदिसो तादिसेहि गुणविसेसेहि अकुलीणो भवे । [किन्नु खल्वीदृशस्तादृशैर्गुणविशेषैरकुलीनो भवेत् ।]

धात्री—तहि च सन्देहो। सुदं च भए भट्टिणीए समीवे अमच्चेहि किल भणिदं—ण सो तादिसो दुक्खुलजो त्ति। अत्ताणं केणवि कारणेण पच्छादेदि त्ति । [तत्र च सन्देहः । श्रुतं च मया भट्टिन्याः समीपेऽमात्यैः किल भणितं—न स तादृशः दुष्कुलज इति । आत्मानं केनापि कारणेन प्रच्छादयतीति ।]

नलिनिका—को णु खु भवे । [को नु खलु भवेत् ।]

धात्री—जदि सो सन्देहो णत्थि, को अण्णो अदिरित्तगुणो जामातुओ भवे । [यदि स सन्देहो नास्ति, कोऽन्योऽतिरिक्तगुणो जामाता भवेत् ।]

(नेपथ्ये)

यदि च विभवरूपज्ञानसत्त्वादयः स्यु-
र्न तु कुलविकलानां वर्तते वृत्तशुद्धिः ।

अन्वयः—कुलविकलानाम् विभवरूपज्ञानवित्तादयः यदि च स्युः वृत्त-

धात्री—हाँ री, मैं तुम्हारा मतलब समझती हूँ अवस्था देखकर इसे उससे दिला दो ।

नलिनिका—क्या ऐसा व्यक्ति इस तरह के गुणों के रहते अकुलीन हो सकता है ।

धात्री—उसमें सन्देह है मैंने महारानी के पास मन्त्रियों से सुना है कि वह किसी कारण से अपने को छिपा रहा है ।

नलिनिका—यह कौन हो सकता है ।

धात्री—यदि वह सन्देह नहीं है तो कौन-इससे अधिक गुण वाला दामाद मिल सकता है ।

(नेपथ्य में)

यदि सम्पत्ति-सौन्दर्य-ज्ञान-बल आदि हो भी जाय तो भी कुलहीनों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ध्रुवमिह कुलमस्य श्रोष्यसि प्राप्तकाले
त्यज कुलगतशङ्कां साध्यतां स्वन्तमेतत् ॥ ५ ॥

धात्री—हला ! केण खु भणिदं [हला ! केन खलु भणितम् ।]

नलिनिका—एत्थ को वि ण दिस्सदि । [अत्र कोऽपि न दृश्यते ।]

धात्री— पहिट्ठरोमकूवं मे सरीरं । असंसअं दव्वेण भणिदं । अहं

शुद्धिः न वर्तते । इह अल्पप्राप्तकाले ध्रुवं कुलम् श्रोष्यसि कुलगतशङ्कां त्यज एतत् स्वन्तम् साध्यताम् ।

व्याख्या—यदि चेति–कुलविकलानाम्=नीचकुलोत्पन्नानाम्, विभवरूपज्ञानसत्वादयः = धनसौन्दर्यविचारशौर्यादयः, यदि स्युः=भवेयुर्नाम वृत्तशुद्धिः= चरित्रशुद्धिः न तु वर्तते = नास्ति चेत् इह = अस्मिन् विषये, अस्य = पुरुषस्य, प्राप्तकाले = अवसरे प्राप्ते सति ध्रुवम् = निश्चयेन, कुलम् = वंशम्, श्रोष्यसि, ज्ञास्यसि, कुलगतशङ्काम् = वंशविषयकसन्देहम्, त्यज = जहीहि, स्वन्तम् = सत्परिणामम् एतत् साधय = इदं कुरु । कुलीनोऽयं अनेन राजकुमारीं योजयेत्यर्थः । शालिनी नाम छन्दः ॥ ५ ॥

भावः—वित्तसौन्दर्यवीर्य्यादयः सन्त्वलं

दुष्कुलानां चरित्रं नहीदृग् भवेत् ।
अस्य वंशं ध्रुवं ज्ञास्यसि प्राप्तकाले
कार्य्यमेतत् त्वया सत्फलं साध्यताम् ॥ ५ ॥

चरित्र निर्मल नहीं हो सकता है । निश्चय ही तुम इसके कुल के विषय में समय आने पर जान लोगे इस अच्छे परिणाम वाले कार्य को करो ॥ ५ ॥

धात्री—अरी यह किसने कहा—

नलिनिका—यहाँ तो कोई नहीं दीख रहा है ।

धात्री—मेरा रोमाञ्च हो गया है, निश्चय ही दैव ने कहा है । मैं जानती हूँ, यह (वचन) मनुष्य का केवल नहीं है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुण जाणामि ण एसो केवलो माणुसत्ति । [प्रहृष्टरोमकूपं मे शरीरम् । असंशयं दैवेन भणितम् । अहं पुनर्जानामि नैष केवलो मानुष इति ।]

नलिनिका— गदो तस्स कुलसन्देहो । अम्हाणं वअणं करेदि ण करेदि त्ति चिंतेमि । (विचिन्त्य) धण्णो खु सो जणो इमं एवं उम्मादेदि । कि बहुणा, सअं कामदेवो वि भट्टिदारिआए रूवं तेक्खिअ किलिस्सदि। तेण सो वि किलिस्सिदि त्ति तक्केमि । [गतस्तस्य कुलसन्देहः । अस्माकं वचनं करोति न करोतीति चिन्तयामि। धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति। किं बहुना, स्वयं कामदेवोऽपि भर्तृदारिकाया रूपं प्रेक्ष्य क्लिश्यते । तेन सोऽपि क्लिश्यत इति तर्कयामि ।]

धात्री—हला ! एसो तस्स आवासो, जं तदा हत्थिसम्भमदिअसे कोदूहलेण आअदम्ह । [हला ! एष तस्यावासः, यं तदा हस्तिसम्भ्रमदिवसे कौतूहलेनागते स्वः ।]

नलिनिका—हला ! अहो दस्सणीअं किदोवहारं च दुवारमुहं ।

प्रहृष्टरोमकूपम् = उदञ्चद्रोमाञ्चम्, गतः कुलसन्देहः = तदीयकुलविषयेऽधुना सन्देहो नाऽस्ति । इमामेवमुन्मादयति = धीरधियमपि कुमारीमुन्मत्तं करोति = सौन्दर्यविशेषशालितया स धन्य इत्यर्थः । तस्य = राजकुमारस्य आवासः = निवासस्थानम्, हस्तिसम्भ्रमदिवसे = गजोपद्रवदिने, कौतूहलेन = क्वायं निवसतीति जिज्ञासाकौतूहलेन । दर्शनीयम् = सुन्दरम्, कृतोपहारम् = सुसज्जितम्, चतुःशाले = बहिर्गृहे, सुखमार्यस्य = भवतः ।

नलिनिका—इसके वंशगत संशय का तो अन्त हो गया । देखें हमारी बात मानता है या नहीं । वह धन्य है जिसके लिए इस तरह पागल हो रहा है । और क्या, स्वयं कन्दर्प भी राजकुमारी के रूप को देखकर दुःखी हो जाय । इसीलिए यह भी दुःखी हो रहा है ऐसा सोचती हूँ ।

धात्री—अरी, यही न उसका निवास-स्थान है जहाँ हाथी वाले उपद्रव के दिन हम दोनों आई थीं ।

नलिनिका—इसका दरवाजा कितना सुन्दर तथा अलङ्कृत है ? चलो प्रवेश करें ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हला ! एहि पविसामो । [हला ! अहो दर्शनीयं कृतोपहारं च द्वारमुखम् । हला ! एहि प्रविशावः ।]

धात्री—हला ! कहिं भट्टिदारओ किं भणासि—चउस्साले वत्तदि त्ति । [परिक्रम्यावलोक्य] अअं अम्हाणं भट्टिदारओ । एको एव किं वि चिन्तअन्तो चिट्ठई । [हला ! कुत्र भर्तृदारकः । किं भणसि—चतुःशाले वर्तत इति । अयमस्माकं भर्तृदारक एक एव किमपि चिन्तयंस्तिष्ठति ।]

नलिनिका—हला ! णं पिविसामो । [हला ! ननु प्रविशावः ।]

धात्री—एवं करेम्ह । (प्रविश्य) सुहं अय्यस्स । [एवं कुर्वः । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—अहो तस्या रूपसम्पत् ।

धात्री—(साकुलम्) किण्णु हु भवे । सुहं अय्यस्स ! [किन्नु भवेत् । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—

उरः स्तनतटालसं जघनभारखिन्ना तनुः

धात्री—अम्मो पिप्पलवदि । [अम्भो विप्रलपति ।]

अन्वयः—उरःस्तनतटालसम् जघनभारखिन्ना तनुः मुखम् नयनवल्लभम् प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् भये अपि यदि नयनपात्रपेयम् वपुः, सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम् तत् कथन्नु भवेत् ।

धात्री—अरी, राजकुमार कहाँ है ? क्या कहा—चतुःशाल में है ? यही तो हमारे राजकुमार कुछ सोचते हुए बैठे हैं ।

नलिनिका—अरी, चलो चलें ।

धात्री—ऐसा करें । (प्रवेश करके) आप आनन्द से तो हैं ?

अविमारक—अहा, कैसा विलक्षण था उसका रूप ।

धात्री—(आकुलता के साथ) जाने क्या होता है । आप सानन्द तो हैं ?

अविमारक—छाती स्तन के भार से अलस है, शरीर जघन के भार से भिन्न है ।

धात्री—अरे, यह तो विप्रलाप कर रहा है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—

मुखं नयनवल्लभं प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् ।

धात्री—**घण्णो खु सो जणो इमं एवं उन्मादेदि ।** [धन्यः खलु स जन इममेवमुन्मादयति ।]

अविमारकः—

भयेऽपि यदि तादृशं नयनपात्रपेयं वपुः

धात्री—**सुत्थितं कय्यं** [सुस्थितं कार्यम् ।]

अविमारकः—

कथन्नु सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमं तद् भवेत् ॥ ६ ॥

व्याख्या—उरः स्तनतटेति—उरः = वक्षस्थलम्, स्तनभारालसम्, स्तनभारेणालसम् = कुचभाराक्रान्तम् जघनभारखिन्ना = नितम्बगौरव-पीडिता, तनुः = शरीरम्, मुखम् = आननम् , नयनवल्लभम् = नेत्रसुन्दरम्, प्रकृतिताम्रबिम्बाधरम् = सहजरक्तबिम्बफलसदृशाधरोष्ठम् भयेऽपि = भय-समयेऽपि तादृशम् = विलक्षणसौन्दर्ययुक्तम्, नयनपात्रपेयम् = नेत्रैः सादर-मवलोकनीयम्, वपुः = शरीरम् । सुरतान्तरप्रचुरविभ्रमम् = रतिकालमध्ये विलासयुक्तम्, कथन्नु = कीदृशं नु; भवेत् = स्यात् । भयकालेऽपि सुन्दरं तद् रतिकालेऽलौकिकसौन्दर्ययुक्तं स्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥

भावः—अलसगमना श्रोणीभारात्, समुन्नमितस्तनी
नयनसुषमाऽसीमश्रीकमनोहरमाननम् ।
भयसमुदयेऽपीदृक् रूपं तदीयवपुर्यदि
सुरतसमये नानाभावं भवेत्तु कथं विधम् ॥ ६ ॥

अविमारक—मुख आँख की सुन्दरता से पूर्ण हैं, अधर स्वाभाविक लालिमा से भरा है ।

धात्री—धन्य है वह स्त्री जिसके लिए यह इस तरह पागल हो रहा है ।

अविमारक—भय की स्थिति में भी यदि उसका रूप देखते ही बनता था तो फिर—

धात्री—काम बन गया ।

अविमारक—सुरत (कामक्रीड़ा) के मध्य में विलासों से पूर्ण उसका चेहरा कितना सुन्दर होगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धात्री—सा एव इमं उम्मादेदि । [सैवेममुन्मादयति ।]

नलिनिका—सुट्ठु भणिदं—एसो वि किलिस्सिदि त्ति । [सुष्ठु भणितम्—एषोऽपि क्लिश्यत इति ।]

धात्री—सुट्ठु विञ्ञादं तुए । सुहं अय्यस्स । [सुष्ठु विज्ञातं त्वया । सुखमार्यस्य ।]

अविमारकः—(विलोक्य सव्रीडम्) स्वागतं भवतीभ्याम् ।

उभे—अवि सुहं । [अपि सुखम् ।]

अविमारकः—भविष्यति वां दर्शनेन ।

धात्री—अय्य ! चिन्तीअदि । [आर्य ! किं चिन्त्यते ।]

अविमारकः—भवति ! शास्त्रं चिन्त्यते ।

धात्री—किं णाम एदं रमणीअं सत्थं विवित्थे चिन्तीअदि । [किं नामैतद् रमणीयं शास्त्रं विविक्तं चिन्त्यते ।]

अविमारकः—भवति ! योगशास्त्रं चिन्त्यते ।

धात्री—(सस्मितम्) पडिग्गहिदं मङ्गलवअणं । जोअसत्थं एव्व होदु । [प्रतिगृहीतं मङ्गलवचनम् । योगशास्त्रमेव भवतु ।]

धात्री—राजकुमारी ही इसको उन्मत्त कर रही है ।

नलिनिका—तुम ने ठीक समझा ।

अविमारक—(देखकर, लज्जा से) स्वागत हो आप लोगों का ।

उभे—आप आनन्द से हैं ?

अविमारक—आप लोगों के दर्शन से आनन्द हो जायगा ।

धात्री—आप क्या सोच रहे हैं ।

अविमारक—मैं शास्त्र की चिन्ता कर रहा हूँ ।

धात्री—कौन सा सुन्दर शास्त्र है जिसका आप एकान्त में चिन्तन कर रहे हैं ।

अविमारक—मैं योगशास्त्र का चिन्तन कर रहा हूँ ।

धात्री—(मन्दहास्य के साथ) इस मङ्गलवचन को स्वीकार करती हूँ । योगशास्त्र ही हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—(आत्मगतम्) को नु खलु वाक्यार्थः। अन्यदप्यभिलाषवशादन्यथा सङ्कल्पयामि। (प्रकाशम्) किमभिप्रेतं भवत्याः।

धात्री—जोअं इच्छन्तीओ आअदम्ह। अणुमदो अय्येण जोओ त्ति णं णिट्ठिदं कय्यं अम्हाअं राअउले विवित्ते अवआसे। तहिं पि को वि जणो अहिअदरं जाअं चिन्तअन्तो अच्छदि। तेण सह तहिं एव अय्येण सुट्ठु जोअविहाणं चिन्तीअदु त्ति। [योगमिच्छन्त्यावागते स्वः। अनुमत एव आर्येण योग इति ननु निष्ठितं कार्यमस्माकं राजकुले विविक्ते अवकाशे। तत्रापि कोऽपि जनोऽधिकतरं योगं चिन्तयन्नस्ति। तेन सह तत्रैवार्येण सुष्ठु योगविधानं चिन्त्यतामिति।]

अविमारकः—कथमद्यापि सावशेषाणि मे भाग्यानि। (आसनादुत्थाय) भवति! पुनर्दत्ता इव मे प्राणाः। कुतः,

---

को नु खलु वाक्यार्थः—आभ्यां किमुच्यते, अन्यदपि = इतरार्थमपि, अभिलाषवशात् = स्वरूपानुरागवशात्। निष्ठितम् = सुसम्पन्नम्। तत्रापि कोऽपि जनः = राजकुलेऽपि = राजपुत्रीरूपः। सावशेषाणि = अवशिष्टानि, भाग्यशेषतयैवैतादृशावसरलाभः। पुनर्दत्ताः = पुनः प्रत्यर्पिताः भवत्योरीदृशवचनेन जीवितोऽस्मि जानामि भवतीभ्यामेव प्राणादत्ताः।

अविमारक—(स्वगत) इसका क्या अर्थ है, दूसरी वस्तु को भी अभिलाषवश अन्य रूप में विचारने लगता हूँ। (प्रकट) आपका क्या अभिप्राय है।

धात्री—हम लोग योग की इच्छा से ही आयी थी, आप ने भी योग की अनुमति दे दी है इससे हमारा काम बन गया, वह एकान्त राजकुल में सम्पन्न होगा। वहाँ भी कोई उत्कट रूप से योग की चिन्ता कर रहा है। उसके साथ आप भी अच्छी तरह से योग चिन्ता करें।

अविमारक—क्या अभी भी मेरे भाग्य बचे हुए हैं (आसन से उठकर) क्योंकि—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्या भयाकुलितदृष्टिविषं मनोज्ञं
सौम्यप्रकारमतितीक्ष्णमवेक्ष्य वक्त्रम् ।
उन्मादमभ्युपगतोऽस्मि चिरं भवत्यो-
र्वाक्यामृतेन पुनरद्य कृतः ससंज्ञः ॥ ७ ॥

धात्री—दिट्ठआ अय्येण परिपालिदो अअं जणो। अलमदिप्प-सङ्गेण। अज्ज एव पविसिदव्वं कण्णाउरं। अमच्चो अय्यभूदिओ कण्णाउररक्खओ कासिराअदूदेण सह अम्हाअं महाराएण पूइदो पत्थिदो अ। [दिष्ट्यार्येण परिपालितोऽयं जनः। अलमतिप्रसङ्गेन। अद्यैव

अन्वयः—भयाकुलितदृष्टिविषम् सौम्यप्रकारम् अतितीक्ष्णम् तस्या मनोज्ञम् वक्त्रम् अवेक्ष्य, चिरम् उन्मादम् अभ्युपगतः अद्य पुनः भवतीभ्यां वचनेन ससंज्ञः कृतः अस्मि ॥ ७ ॥

व्याख्या—तस्या इति—भयेनाकुला दृष्टिरेव विषं यस्मिन् तादृशम् = भयचञ्चलदृष्टिगरलम्, सौम्यप्रकारम् = अतिशयसुन्दरम्, अतितीक्ष्णम् = कामावेशजनकत्वात् तीव्रतरम्, तस्याः = राजपुत्र्याः, मनोज्ञम् = सुन्दरम् वक्त्रम् = मुखम्, अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, चिरम् = चिरकालम् = उन्मादः = मति-विक्षेपः, अधिगतः = प्राप्तः, अद्य पुनः = इदानीं तु भवतीभ्याम् = युवाभ्याम्, वचनेन ससंज्ञः = सचेतनः, कृतः = विहितोऽस्मि ।

भावः—भयचलदृशा विषाक्तं सौम्यं तीक्ष्णं निरीक्ष्य तद्वक्त्रम् ।
चिरमुन्मत्तोयुवयोर्वचनेनानेन लब्धवान् संज्ञाम् ॥

अयं जनः परिपालितः=ईप्सितपूरणेन जीवितः, अतिप्रसङ्गेन = विलम्बेन, प्रथमः कल्पः = राजकुलप्रवेशलक्षणं प्रस्तावः स्वीकृतः। कस्तावद् औषध-

---

उसके भयाकुल नयनों से सुन्दर सौम्य, मनोहर, अतितीक्ष्ण मुख को देखकर मैं पागल हो गया था, इस समय आप लोगों के वाक्यामृत ने हम को होश में ला दिया है ॥ ७ ॥

धात्री—सौभाग्य से आपने हम लोगों को बचा लिया, विलम्ब करने की जरूरत नहीं, आज ही कन्यान्तःपुर में प्रवेश कीजिये, कन्यान्तःपुर के रक्षक अमात्य भूतिक काशीराज दूत के साथ गये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रवेष्टव्यं कन्यापुरम् । अमात्य आर्यभूतिकः कन्यापुररक्षकः काशिराजदूतेन सहास्माकं महाराजेन पूजितः प्रस्थितश्च ।]

अविमारकः—बाढम् । प्रथमः कल्पः । भवति ! कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः ।

धात्री—पवेसमत्तं एव्व दुल्लहं । सक्कं अब्भन्तरे चिरं वसिदुं । [प्रवेशमात्रमेव दुर्लभम् । शक्यमभ्यन्तरे चिरं वस्तुम् ।]

अविमारकः—प्रविष्टएवाहं चिन्तयितव्यः । क्रियतामनर्गलविशाला प्रासादमाला ।

धात्री—एवं करेम्ह । सव्वं अब्भन्तरकरणीअं संपादेम्ह । अप्पमत्तो एव पविसदु अय्यो । [एवं कुर्वः । सर्वमभ्यन्तकरणीयं संपादयावः । अप्रमत्त एव प्रविशत्वार्यः ।]

मुपलक्ष्य मन्दीभवत्यातुरः, = विरहरोगातुरोऽहम् औषधमिव भवत्प्रस्तावं श्रुत्वा विलम्बं न करिष्यामि । अप्रस्तुतप्रशंसा । प्रवेशमात्रमेव दुर्लभम् बहुरक्षितत्वात् प्रवेशः कठिनः प्रवेशे लब्धे चिरं तत्र वक्तुं शक्यते ।

प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः = अहं निश्चितं प्रवेक्ष्यामीति प्रत्येयम्, अनर्गलविशाला प्रासादमाला = अर्गलहीनैः कपाटैः विवृतविशालद्वारा राजगृह-

---

अविमारक—अच्छी बात है, कौन ऐसा रोगी होगा जो औषध मिलने पर विलम्ब करेगा ।

धात्री—प्रवेश पाना ही कठिन है भीतर जाकर बहुत दिनों तक सुख से रहा जा सकता है ।

अविमारक—आप लोग यही समझें कि मैं प्रवेश पा चुका । केवल आप लोग प्रासाद के किवाड़ खुला छोड़ दें ।

धात्री—हम ऐसा ही करेंगे, भीतर का सारा काम हम कर लेगी, आप सावधानी से प्रवेश करें ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—भवति ! सकृदभिधीयतां राजकुलस्य विधानम् ।

धात्री—एवं विअ । [एवमिव ।]

अविमारकः—हन्त भोः !

श्रुत्वा तु राज्ञो गृहसंविधानं प्रविष्टमात्मानमवैति बुद्धिः ।
न पौरुषं वै परदूषणीयं न चेद् विसंवादमुपैति दैवम् ॥ ८ ॥

(विचिन्त्य) भवति ! कोऽस्माकमस्मिन् कार्ये प्रत्ययः ।

समूहा । अभ्यन्तरकरणीयम् = तत्र प्रविष्टैः कर्तव्यम् अप्रमत्तः = सावधानः, राजकुलविधानम् = तत्र निवासार्थं कर्तव्यज्ञानम् ।

अन्वयः—राज्ञः गृहसंविधानम् श्रुत्वा तु बुद्धिः आत्मानं प्रविष्टम् अवैति, पौरुषम् परदूपणीयम् न वै, चेत् दैवम् विसंवादम् न उपैति ।

व्याख्या—श्रुत्वेति—राज्ञः = कुन्तिभोजस्य, गृहसंविधानम् = कन्यान्तःपुरं प्रविश्य करणीयं कार्य्यंजातम् श्रुत्वा=आकर्ण्य तु, बुद्धिः=मतिः, आत्मानम्= स्वम्, प्रविष्टम् = कृतप्रवेशम्, अवैति = जानाति । पौरुषम् = पुरुषार्थः, परदूषणीयम् = परैः तिरस्करणीयम्, नाऽस्ति । चेद्=यदि, दैवम् = भाग्यम् विसंवादम् = प्रतिकूल्यम्, न उपैति = न प्राप्नोति ॥ ८ ॥

भावः—तत्रत्यं कर्तव्यं श्रुत्वा जाने प्रविष्टोऽहम् ।
दैवानुकूल्ये जाते पुरुषार्थो मे परैरहार्य्योऽस्ति ॥ ८ ॥

प्रत्यक्षः = विश्वासः इदं कार्यं भविष्यतीति कथं विश्वासः कार्यः ।

अविमारक—आप एक वार बता दें कि राजकुल में कैसा व्यवहार किया जाता है ।

धात्री—(कान में) ऐसे ही ।

अविमारक—यहाँ राजा के गृह का व्यवहार सुनकर मेरी बुद्धि समझ रही है कि मैंने राजकुल में प्रवेश पा लिया । मेरा पराक्रम दूसरे की निन्दा करने योग्य नहीं है, यदि भाग्य प्रतिकूल न हो ॥ ८ ॥

(सोचकर) भद्रे ! इस कार्य में हमको विश्वास कैसे हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उभे—अअं पच्चओ। जेदु भट्टिदारओ। [अयं प्रत्ययः। जयतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—हन्त गम्यतां सम्प्रति। प्रतीक्ष्यतामर्धरात्रम्।

उभे—जं भट्टिदारओ आणवेदि (निष्क्रान्ते) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अहो णअरस्स सोहा संपदि। अत्थं आसादिदो भअवं सुय्यो दीसइ दहिपिण्डपण्डरेसु पासादेसु अग्गापणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसङ्गदो विअ। गणिआजणो णाअरिअजणो अ अण्णोण्णविसेसमण्डिदा अत्ताणं दंसइदुकामा तेसु तेसु पासादेसु सविब्भमं सञ्चरन्ति। अहं तु तादिसाणि पेक्खिअ उन्मादिअमाणस्स तत्तहोदो रत्तिसहाओ होमि त्ति णअरादो णिग्गदो म्हि। सो वि दाव अम्हाअं अधण्णदाए केण वि अणत्थसञ्चिन्तणेण अण्णादिसो विअ संवुत्तो। एदं तत्तहोदो आवासगिहं। अज्ज णअरापणालिन्दे सुणामि तत्तहोदो

अहो नगरस्य शोभा = विस्मयकारिणी नगरशोभा, अस्तमासादितः = अस्तंगतः दधिपिण्डपाण्डरेषु = दधिपिण्डधवलेषु, अग्रापणालिन्देषु = पण्यवीथिकालिन्देषु, प्रसारितगुडमधुरसङ्गत इव प्रसारितस्य गुडस्य मधुनश्च रसमास्वादयितुमिव तत्र प्रतिबिम्बितः सूर्यो लक्ष्यते। गणिका = वेश्या, अन्योन्यविशेषमण्डितौ = परस्परस्पर्धयेव समधिकमण्डितशरीरौ, सविभ्रमम् =

दोनों—ऐसे विश्वास होगा। राजकुमार की जय हो।

अविमारक—अच्छा आप लोग जायँ, आधीरात में मेरी प्रतीक्षा करें।

दोनों—राजकुमार की जैसी आज्ञा।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अहा, इस समय नगर की शोभा विचित्र है। अस्ताचल को प्राप्त सूर्य दही की तरह सफेद कोठों तथा अँगने की सहन पर पसारे गुडमधु की तरह शोभित हो रहे हैं। वेश्यायें एवं विलासी लोग एक से एक वेश-भूषा से सुसज्जित होकर अपने को दिखलाने की इच्छा से कोठे पर टहल रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गिहादो णिग्गदा राअदारिआए धत्ती सही अ त्ति। किं णु खु एत्थ कय्यं। अहव हत्थिहत्थचञ्चलाणि पुरुसभग्गाणि होन्ति। अहव गच्छदु अणत्थो अम्हाअं। अवत्थासदिसं राअउलं पविसामि। (प्रविश्य) ही ही एसो अत्तभवं कामुअजणवण्णएण अणुलित्तो विअ पण्डुभावेण इदो एव आअच्छदि। अहव सव्वं अलङ्कारो होदि सुरूवाणं (उपेत्य) जेदु भवं। [अहो नगरस्य शोभा सम्प्रति। अस्तमासादितो भगवान् सूर्यो दृश्यते दधिपिण्डपाण्डरेषु प्रासादेष्वग्रापणालिन्देषु प्रसारितगुडमधुरसङ्गत इव। गणिकाजनो नागरिकजनश्चान्योन्यविशेषमण्डितावात्मानं दर्शयितुकामौ तेषु तेषु प्रासादेषु सविभ्रमं संचरतः। अहं तु तादृशानि प्रेक्ष्योन्माद्यतस्तत्रभवतो रात्रिसहायो भवामीति नगरान्निर्गतोऽस्मि। सोऽपि तावदस्माकमधन्यतया केनाप्यनर्थसंचिन्तनेनान्यादृश इव संवृत्तः। एतत् तत्रभवत आवासगृहम्। अद्य नगरापणालिन्दे शृणोमि तत्रभवतो गृहान्निर्गता राजदारिकाया धात्री सखी चेति। किं नु खल्वत्र कार्यम्। अथवा हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति। अथवा गच्छत्वनर्थोऽस्माकम्। अवस्थासदृशं राजकुलं प्रविशामि।

सविलासम्। तादृशानि = कामसन्दीपनानि। उन्माद्यतः = सञ्जातोन्मादस्य। रात्रिसहायः = निशिसहचरः। अधन्यतया = अभाग्यतया। अनर्थसञ्चिन्तनेन= दुःखं विचारयता। तत्रभवतः = माननीयस्य राजकुमारस्य। अत्र = राजकुमारावासे, हस्तिहस्तचञ्चलानि=करिकरचपलानि, गच्छतु=नश्यतु, अनर्थः= दौर्भाग्यम्। कामुकजनवर्णकेन = कामिजनाकारेण, पाण्डुभावेन = धवलिम्ना सुरूपाणां सर्वमेवालङ्कारो भवति = सर्वावस्थास्वपि दर्शनीया भवन्ति। अतिविलम्बितम् = अधिकः विलम्बः कृतः। आमन्त्रणविप्रलब्धः = निमन्त्रणेन

मैं इसलिये नगर से निकला हूँ कि इस तरह के दृश्यों को देख उन्मत्त हुए राजकुमार की सहायता कर सकूँगा। वे आजकल कुछ अनर्थ की चिन्ता से दूसरी तरह के हो गये हैं। यही उनका निवास-स्थान है। मैंने बाजार में सुना है कि उनके घर से राजकुमारी की सखी और धात्री निकली हैं। उनका यहाँ क्या कार्य हो सकता है? अथवा पुरुष के भाग्य हाथी के सूँड़ की तरह चञ्चल होते हैं। अथवा—हमारे अनर्थ दूर हों। अवस्थानुकूल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही ही एषोऽत्रभवान् कामुकजनवर्णकेनानुलिप्त इव पाण्डुभावेनेत एवागच्छति। अथवा सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम्। जयतु भवान्।]

अविमारकः— वयस्य ! अतिविलम्बितमिव भवता नगरे।

विदूषकः — तुमं दाव आमन्तणविप्पलद्धो विअ बम्हणो अहोरत्तं चिन्तेसि। अहं पि दाव दिअसे णअरं परिब्भमिअ अलद्धभोआ पाअडगणिआ विअ रत्ति पस्सदो सइदुं आअच्छामि। [त्वं तावदामन्त्रणविप्रलब्ध इव ब्राह्मणोऽहोरात्रं चिन्तयसि। अहमपि तावद् दिवसे नगरं परिभ्रम्यालब्धभोगा प्राकृतगणिकेव रात्रौ पार्श्वतः शयितुमागच्छामि।]

अविमारकः—सखे ! प्रियं ते कथयिष्यामि।

विदूषकः—किं समत्तो अम्हाअं इसिसावो। [किं समाप्तोऽस्माकमृषिशापः।]

अविमारकः—मूर्ख ! अवश्यं भवितव्येऽर्थे कः प्रहर्षः।

प्रतारितः अलब्धभोजनः। अलब्धभोगा = अप्राप्तकामुकजना, प्राकृतगणिका= साधारणवेश्या इति।

भवितव्ये अर्थे कः प्रहर्षः = ऋषिशापः सावधिकः स मनावधौ निवृत्ते

राजकुल में प्रवेश कर रहा हूँ। यही तो कामिजन की धवलता से युक्त राजकुमार हैं। ये इधर ही आ रहे हैं। सुन्दर लोगों के लिये सब कुछ सुन्दर ही होता है। जय हो आपकी।

अविमारक—मित्र ! आपने नगर में बहुत विलम्ब कर दिया।

विदूषक—तुम तो निमन्त्रण में हो गये ब्राह्मण की तरह रात-दिन चिन्ता करते रहते हो, मैं भी दिन भर घूमकर कार्य्य के न मिलने पर वेश्या की तरह रात में बगल में सो जाता हूँ।

अविमारक—मित्र ! तुम्हें खुशखबरी सुनाऊँगा।

विदूषक—क्या हमारा ऋषि का शाप समाप्त हो गया ?

अविमारक—मूर्ख ! उस निश्चित होने वाले कार्य में क्या प्रसन्नता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—किं पुण अण्णं । [किं पुनरन्यत् ।]

अविमारकः—किं न दृष्टा कुरङ्ग्या धात्री नलिनिका च ।

विदूषकः—आम भो ! दिट्ठाओ तत्तहोदीओ ! किं आणीदं । [आम् भोः दृष्टे तत्रभवत्यौ । किमानीतम् ।]

अविमारकः—अस्मच्छोकौषधमानीतम् ।

विदूषकः—पेक्खामि दाव । [पश्यामि तावत् ।]

अविमारकः—काले द्रक्ष्यसि । अद्य तावत् श्रूयताम् ।

विदूषकः—भणादु भणादु भवं [भणतु भणतु भवान् ।]

अविमारकः—किं बहुना । तत्रभवती ब्रवीति अद्यैव प्रवेष्टव्यं कन्यापुरमिति ।

विदूषकः—(विहस्य) केण खु उवाएण अब्भन्तरं पविसिअ जीवग्गहणं पत्तुकामोऽसि । अमच्चा णाम विसमसीला कुन्तिभोअस्स । स्वयंगतो भविष्यति निश्चिते कः प्रहर्षः ।

अस्मच्छोकौषधम् = शोकनिवारकम् । जीवग्रहणं प्राप्तुकामः = जीवितुमिच्छुः । विषमशीलाः = कठिनस्वभावाः, कुन्तिभोजामात्याः तैर्गृहीतश्चेत् कं स्वरक्षणोपायं चिन्तयसीति तदाशयः ।

विदूषक—तो और क्या है ?

अविमारक—क्या तुमने कुरङ्गी की धात्री और नलिनिका को नहीं देखा है ?

विदूषक—हाँ, उन दोनों को तो देखा हैं । क्या लाई थीं ?

अविमारक—उन दोनों ने मेरे जीवन की दवा लाई थीं ।

विदूषक—देखें कहाँ है ।

अविमारक—समय पर देख लेना, अभी सुनो ।

विदूषक—कहिये कहिये आप ।

अविमारक—अधिक क्या कहें महारानी ने कहा है आज ही कन्यान्तःपुर में प्रवेश करूँ ।

विदूषक—(हँसकर) किस प्रकार अन्तःपुर में प्रवेश कर जीते रह सकोगे ? कुन्तिभोज के अमात्य बड़े कठोर हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

[केन खलूपायेनाभ्यन्तरं प्रविश्य जीवग्रहणं प्राप्तुकामोऽसि। अमात्या नाम विषमशीलाः कुन्तिभोजस्य ।]

अविमारकः—कथं भवतापि शङ्कनीयम् । पश्य,

भग्ना मयैकेन पराः ससैन्या
अद्यापि गन्धेन न संश्रयन्ते ।
किं मानुषैः सोऽप्यसुरेश्वरो मे
हतो भुजाभ्यामविरूपधारी ॥ ९ ॥

अन्वयः—मया एकेन ससैन्याः पराः भग्नाः अद्यापि गन्धेन न संश्रयन्ते मानुषैः किम् अविरूपधारी सः असुरेश्वरः अपि मे भुजाभ्याम् हतः ।

व्याख्या—भग्न इति—मया एकेन = सहायकनिर्व्यपेक्षेण, ससैन्याः = सेनासहिताः पराः = शत्रवः, भग्नाः = पराजिताः, अद्यापि = इदानीमपि, गन्धेन = गर्वेण, न संश्रयन्ते = गर्वयुक्ता न भवन्ति, मानुषैः किम् = का गणना मनुष्याणाम्, अविरूपधारी = मेषाकारः, सः = प्रसिद्धो बलवान्, असुरेश्वरः = राक्षसराजः, मे = मम, भुजाभ्यां = हस्ताभ्याम्, हतः = मारितः । एवंविध-दृष्टमत्पराक्रमस्य तवापि तत्र गमने कापत्तिः शङ्का ॥ ९ ॥

भावः—एकलेनैव सैन्यैर्युताः शत्रवो
निर्जिता भग्नदर्पा मयापादिताः ।
का कथा मानवानां स रक्षोऽधिपो
मेषरूपो भुजाभ्यां मया मारितः ॥ ९ ॥

अविमारक—तुम भी शंका कर रहे हो ? देखो ।

बिना किसी की सहायता से मैंने अकेले ही सेना से युक्त शत्रुओं को हरा दिया, वे आज भी गर्व-धारण नहीं कर रहे हैं । मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? भेड़े का रूप धारण करने वाले उस असुरराज को भी मैंने भुजा से मार दिया ॥ ९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—जाणामि जाणामि भवदो अमाणुसाणि कम्माणि। सव्वहा सङ्कणीओ रत्तिच्छण्णो परगिहप्पवेसो। [जानामि जानामि भवतोऽमानुषाणि कर्माणि। सर्वथा शङ्कनीयो रात्रिच्छन्नः परगृहप्रवेशः।]

अविमारकः—एष समासः। सर्वथा प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। तदनुमन्तुमर्हति महाब्राह्मणः।

विदूषकः—कहं मं उज्झिअ गच्छसि। अहं भवन्तं सव्वकालं ण मुञ्चामि। अक्कोसन्तो वि एक्को इच्छिदव्वो। [कथं मामुज्झित्वा गच्छसि। अहं भवन्तं सर्वकालं न मुञ्चामि। आक्रोशन्नप्येक एष्टव्यः]

अविमारकः—न जानाति भवान् शास्त्रमार्गम्।

एकः परगृहं गच्छेद् द्वितीयेन तु मन्त्रयेत्।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः॥ १०॥

एष समासः = सङ्क्षेपेणैतत्कथयामि, मया प्रवेष्टव्यं राजकुलम् = निर्भयं राजगृहं प्रवेक्ष्यामि, अनुजानातु = आज्ञापयतु। आक्रोशम् = विपदागमे शब्दायमानः, एष्टव्यः = अभिलषणीयः। शास्त्रमार्गम् = शास्त्रसिद्धान्तम्—

अन्वयः—एकः परगृहम् गच्छेत्, द्वितीयेन तु मन्त्रयेत्, बहुभिः समरम् कुर्य्यात् इति अयं शास्त्रनिर्णयः।

व्याख्या—एक इति—एकः = एकलः, परगृहम् = अन्यसद्म, गच्छेत् = यायात् द्वितीयेन = अपरेण, मन्त्रयेत् = कार्यनिर्णयम् कुर्य्यात् बहुभिः=अनेकैः

विदूषक—जानता हूँ, मैं आपके अमानवीय बल को, किन्तु-किन्तु रात में छिप कर दूसरे के घर में प्रवेश करना सर्वथा शङ्कनीय है।

अविमारक—यह संक्षेप है। निश्चय कर लिया हूँ, किसी भी प्रकार से राजा कुन्तिभोज के घर में अवश्य जाऊँगा। महाब्राह्मण हो मुझे अनुमति दो।

विदूषक—मुझे छोड़ कर क्यों जाते हो, मैं किसी समय आपको नहीं छोड़ता। आपत्ति पड़ने पर कोई पुकारने वाला भी तो चाहिये।

अविमारक—आप शास्त्र की बात नहीं जानते।

अकेला दूसरे के घर में प्रवेश करे, दो आदमी के साथ सलाह करे, और बहुतों के साथ युद्ध करे यह शास्त्र का निर्णय है॥ १०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तस्मादेकेनैव मया प्रवेष्टव्यं कुन्तिभोजस्य कन्यापुरम्। न ते वयं शङ्कनीयाः। पश्यतु भवान्,

मितगुणमिह कुन्तिभोजसैन्यं
नृपभवनं विभवैः, सुखं प्रवेष्टुम्।
वयमपि च भुजायुधप्रधानाः
किमिह सखे! भवतापि शङ्कनीयाः॥ ११॥

सहायैः, समरम् = सङ्ग्रामम्, कुर्यात् = सम्पादयेत् इत्ययम्=एवं रूपः अयम् शास्त्रेषु = नीतिषु, निर्णयः = सिद्धान्तः अस्तीति शेषः॥ १०॥

प्रकारान्तरेण—अन्यस्यैको गेहं यायान् मन्त्रं द्वाभ्यां कुर्यादद्धा।
भूयोलोकैः कार्य्यं युद्धं राद्धान्तोऽयं नीतेर्ज्ञेयः॥ १०॥

अन्वयः—इह कुन्तिभोजसैन्यम् मितगुणम्, विभवैः (युक्तम्) नृपभवनम् प्रवेष्टुम् सुखम्, भुजायुधप्रधानाः वयम् अपि च। सखे! भवता अपि किम् शङ्कनीयाः॥ ११॥

व्याख्या—मितगुणमिति– इह = कन्यान्तःपुरे कुन्तिभोजस्य सैन्यम् = कुन्तिभोजनृपतेर्बलम्, मितगुणम् = अतिस्वल्पम् (अस्ति) विभवैः = सम्पत्या (युक्तम्) नृपगृहम् = राजसद्म प्रवेष्टुम् = अन्तर्गन्तुम् सुखम् = सुशकम्, भुजायुधप्रधानाः = बाहुप्रहरणप्रधानाः। वयमपि च = दृष्टपराक्रमा भवता सखे = मित्रं भवताऽपि = सुपरिचितमत्पराक्रमेण, शङ्कनीयाः किम् भवता मद्विषये शङ्का न कार्य्या अतो न मद्विपत्तिचिन्ता कार्य्या—पुष्पिताग्रा वृत्तम्॥ ११॥

भावः—परिमितसैन्यं कन्यासदनं विभवयुतं सुगमं नृपगेहम्।
वयमपि चिन्त्या भुजयुगशस्त्रा इह विषये किं भवता कथमपि॥११॥

अतः मैं अकेला ही कुन्तिभोज के कन्यान्तःपुर में प्रवेश करूँगा। तुमको मेरे विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। आप देखें—

कुन्तिभोज की सेना साधारण (सीमित) है वैभवयुक्त राजगृह में प्रवेश सरल है, हम भी हाथों में शस्त्र धारण करने वाले हैं। मुझ पर तुम क्यों शङ्का कर रहे हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—जइ एवं किदो णिच्चओ, संपदि णअरं पविसामो। तहिं मम अत्थि भित्तो। तस्स आवासे कालं पडिवालम्ह। [यद्येव कृतो निश्चयः, संप्रति नगरं प्रविशावः! तत्र ममास्ति मित्रम्। तस्यावासे कालं प्रतिपालयावः।]

अविमारकः—सम्यग् भवानाह। साम्प्रतमभ्यन्तरं प्रविश्य कृताह्निको महाराजेनाभ्यनुज्ञातो वासगृहे शयनसंविधानं प्रविश्याज्ञातो नगरं प्रविश्य भवतो मित्रगृहे कालं प्रतिपालयामि। (प्रविश्य)

चेटी—जेदु भट्टिदारओ। आवुत्तं ह्लाणोदअं। [जयतु भर्तृदारकः। आवृत्तं स्नानोदकम्।]

अविमारकः—अयमयमागच्छामि। गच्छाग्रतः।

चेटी—ज भट्टिदारओ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारक आज्ञापयति।.]

अविमारकः—वयस्य! अस्तमितो भगवान् दिवाकरः। सम्प्रति हि—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।

प्रतिपालयावः = निशीथं कन्यागृहप्रवेशकालं प्रतीक्षावहे।

अन्वयः—पूर्वा काष्ठा तिमिरानुलिप्ता पश्चिमाशा च सन्ध्यारुणा भाति द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षम् अर्धनारीश्वररूपशोभां याति।

विदूषक—यदि यही निश्चय किया है तो चलो नगर में चलें, हमारा एक मित्र है उसी के घर बैठकर प्रतीक्षा करें।

अविमारक—आपने ठीक कहा। इस समय घर में जाकर दैनिक कार्य्य करके पिता जी से आज्ञा लेकर वासगृह में प्रवेश कर छिपे-छिपे तुम्हारे मित्र के घर में जाकर समय की प्रतीक्षा करें।

चेटी—जय हो राजकुमार की। स्नान के लिये जल तैयार है, (जाती है)।

अविमारक—यह आया, तुम आगे चलो।

चेटी—जो राजकुमार की आज्ञा।

अविमारक—मित्र, भगवान् सूर्य्य अस्त हो गये। इस समय—

पूर्व दिशा तो अन्धकार से अनुलिप्त है, पश्चिम दिशा सन्ध्याराग-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥ १२ ॥

विदूषकः—सुट्ठु, भवं भणादि। अदिक्कन्दो दिअसो। आरूढो पओसो। [सुष्ठु भवान् भणति। अतिक्रान्तो दिवसः। आरूढः प्रदोषः।]

अविमारकः—अहो विचित्रस्वभावता जगतः। कुतः।

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहरशीतवातः।

व्याख्या—पूर्वा त्विति—पूर्वा=प्राची काष्ठा=दिशा, तिमिरानुलिप्ता=अन्धकारावृता, पश्चिमाशा = पश्चिमा दिक्, सन्ध्यारुणा = सायङ्कालिक-रागताम्रा, भाति = शोभते, द्विधा विभक्तम् = प्रकारद्वयेन पृथक्कृतम्, अन्तरिक्षम् = गगनम्, अर्धनारीश्वररूपकान्तिम् = वामभागनिहितपार्वतीक-शङ्कररूपम्, याति = प्राप्नोति तादृशं विभाति ॥ १२ ॥

भावः—ऐन्द्री तिमिराच्छन्ना तथा पराची समनुरक्ता।
वामावामार्धयुतां शैवीतनुमनुकरोति गगनम् ॥ ११ ॥

विचित्रस्वभावतां = प्रकृतेराश्चर्यकारित्वम्।

अन्वयः—व्यामृष्टसूर्यतिलकः विततोडुमालो, नष्टातपः मृदुमनोहर-शीतवातः, संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरः मनुष्यलोकः वेशान्तरम् रचयति इव।

व्याख्या—व्यामृष्टेति—व्यामृष्टं सूर्य्यतिलकं यस्य सः तथोक्तः = प्रोञ्छिततरणितिलकः, नष्टातपः = आतपरहितः, मृदुमनोहरशीतवातः =

से रक्त है, दो रूपों में विभक्त आकाश अर्धनारीश्वर (शिव) का अनुकरण कर रहा है ॥ १२ ॥

विदूषक—आप ठीक कर रहे हैं, दिन बीत गया प्रदोष आ गया है।

अविमारक—अहा! जगत् का स्वभाव विचित्र है। क्योंकि—

सूर्य्य रूपी चन्दन तिलक पुँछ गया, चारों तरफ तारा-गण व्याप्त हो गये घाम का ताप नष्ट हो गया, कोमल मनोहर शीतल हवा चलने लगी। कामी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णशूरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥ १३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

द्वितीयोऽङ्कः ।

सुखस्पर्शमनोरमशिशिरपवनः संलीनकामुकजनः = लीलागृहसन्निविष्टविलासिलोकः, प्रविकीर्णशूरः = सर्वतः प्रचलितशूरः मनुष्यलोकः = मानवजनः, वेषान्तरम् = भिन्नवेषम्, रचयति इव = धारयति इव ॥ १३ ॥

भावः—रवितिलकविहीनो व्याप्तनक्षत्रमालो
विगलितपरितापः शीतलस्पर्शवातः ।
अभिकनिलयलीनः सञ्चरद्वीरलोको,
रचयति निजवेशं नूतनं जीवलोकः ॥ १३ ॥

समाप्तः द्वितीयोऽङ्कः ।

लोग अपने वासगृह में छिप गये वीर लोग चारो तरफ घूम रहे हैं। सारे मनुष्य लोक के प्राणी मानो नया वेश बना लिये हैं ॥ १३ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

द्वितीय अंक समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी चेटयौ च)

कुरङ्गी—हला ! किं तेण भणिअ [हला ! किं भणितम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! केण । [भर्तृदारिके ! केन ।]

कुरङ्गी—(स्वगतम्) हं भिन्दामि खु मन्दभाआ । (प्रकाशम्) कण्णेउरचेडेण । [भिनद्मि खलु मन्दभागा । कन्यापुरचेटेन ।]

मागधिका—दिट्ठो भए कण्णेउरचेडो । भणिदं च । ण किञ्चि आह । [दृष्टो मया कन्यापुरचेटः । भणितं च । न किञ्चिदाह ।]

कुरङ्गी—हन्त भट्टिणीए णिवेदेमि—कण्णेउरचेडो मम सुअपञ्जरं ण करेदि त्ति । [हन्त भट्टिन्यै निवेदयामि—कन्यापुरचेटो मम शुकपञ्जरं न करोतीति ।]

भिनद्मि = अपमानेन भिन्नहृदया भवामि । कन्यापुरचेटः = कन्यान्तःपुर-

---

(कुरङ्गी के साथ दो चेटियों का प्रवेश)

कुरङ्गी—उसने क्या कहा ?

चेटी—भर्तृदारिके ! किसने ?

कुरङ्गी—(स्वगत) मैं अपमान के दुःख से मरी जा रही हूँ । (प्रकट) कन्यापुर के भृत्य ने ।

मागधिका—मैंने कन्यापुर के भृत्य से भेंट की थी । कहा भी था । उसने कुछ भी नहीं कहा ।

कुरङ्गी—अच्छा मैं महारानी से कहूँगी । कन्यापुर का भृत्य मेरा शुकपञ्जर नहीं बना रहा है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मागधिका—णं णिट्ठिदो सुअपञ्जरो भट्टिदारिए। [ननु निष्ठितः शुकपञ्जरो भर्तृदारिकायाः ।]

कुरङ्गी—वाचाडे ! किं अण्णो वि अत्थि। [वाचाटे ! किमन्योऽप्यस्ति ।]

मागधिका—भोदव्वं। [भवितव्यम् ।]

कुरङ्गी—हला ! का वेला [हला ! का वेला ।]

मागधिका—ओगाढो पओसो। [अवगाढः प्रदोषः ।]

कुरङ्गी—तेण ही पासादं आलुहामो। [तेन हि प्रासादमारोहामः ।]

मागधिका—विलासिणि ! अग्गदो जाहि। विरएहि सअणासणाणि। [विलासिनि ! अग्रतो याहि । विरचय शयनासनानि ।]

विलासिनी—सुप्ता खु तुवं ! को कालो विरइदाणि सअणासणाणि। [सुप्ता खलु त्वम् । कः कालो विरचितानि शयनासनानि ।]

मागधिका—हला ! जाणामि दे अलसत्तणं। दिवसरइदाणि भणासि रइदाणि त्ति। [हला ! जानामि तेऽलसत्वम् । दिवसरचितानि भणसि रचितानीति ।]

चारकः। निष्ठितः = निर्मितः । वाचाटे = बहुभाषिणि। अवगाढः = घनीभूतः।

मागधिका—राजकुमारी का शुकपञ्जर तो वनकर आ चुका हैं।

कुरङ्गी—अरे वकवाद करने वाली ! क्या दूसरा भी है।

मागधिका—होना चाहिये।

कुरङ्गी—सखि, क्या समय है।

मागधिका—प्रदोष गाढ़ा हो रहा है।

कुरङ्गी—तब हम प्रासाद पर चढ़ें।

मागधिका—अरी, तू आगे चल विछावन ठीक कर।

विलासिनी—क्या तुम सो रही थी, मैंने कभी से विछावन ठीक कर दिया है।

मागधिका—मुझे तुम्हारा आलस्य ज्ञात है, दिन में ठीक किये गये विछावन को अभी ठीक किया वताती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विलासिनी—**हला ! मा एव्वं भणाहि। भट्टिदारिअं अन्तदेण अण्णादिसाणि होन्ति।** [हला ! मैवं भण। भर्तृदारिकामन्तरेणान्यादृशानि भवन्ति।]

मागधिका—**हला ! गदुअ जाणामि।** [हला ! गत्वा जानामि।]

(सर्वाः परिक्रामन्ति।)

मागधिका—**एसो पासादो।** [एष प्रासादः।]

कुरङ्गी—**अग्गदो जाहि !** [अग्रतो याहि।] (आरोहणं नाटयति।)

मागधिका—**साहु विलासिणि ! साहु ! अत्तणो णामसदिसं किदं एदस्सिं सिलादले रइदं सअणं।** [साधु विलासिनि ! साधु ! आत्मनो नामसदृशं कृतम्। एतस्मिन् शिलातले रचितं शयनम्।]

विलासिनी—**अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। मागधिए ! पेक्ख पेक्ख मे अलसत्तणं।** [अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। मागधिके ! पश्य पश्य मेऽलसत्वम्।]

मागधिका—**अदिपण्डिता खु सवुत्ता एवं पण्डितचेडवुत्तं भत्तारं लभेहि।** [अतिपण्डिता खलु संवृत्ता। एवं पण्डितचेटवृत्तं भर्तारं लभस्व।]

अतिपण्डिता = अतिचतुरा, पण्डितचेटवृत्तम् = चतुरत्वेन ख्यातस्य

विलासिनी—ऐसा मत कहो। राजकुमारी क्या सोंचेंगी।

मागधिका—जाकर ही जान सकूंगी। (सभी जाती है)

मागधिका—यही प्रासाद है।

कुरङ्गी—आगे चल। (चढ़ती है)

मागधिका—शावास विलासिनी शावास, तुमने नामानुकूल काम किया है। इस शिलातल पर बिछावन लगा दिया है।

विलासिनी—मैंने भीतर के मण्डप में बिछावन लगा दिया है। देखो मेरा आलस्य ?

मागधिका—तुम बड़ी चालाक हो गयी हो। अपने ही समान चालाक स्वामी को प्राप्त करो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुरङ्गी—हला ! इमस्सि सिलादले मुहुत्तअं उववेिसामि । [हला ! अस्मिन् शिलातले मुहूर्तकमुपविशामि ।]

मागधिका—जं भट्टिदारिआए रुइदं । होदु । [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम् । भवतु ।]

(सर्वा उपविशन्ति)

मागधिका—भट्टिदारिए ! कहेमि वक्खाण । [भर्तृदारिके ! कथयामि व्याख्यानम् ।]

कुरङ्गी—हला ! जाणामि दे असम्बद्धप्पलावं । [हला ! जानामि तेऽसंवद्धप्रलापम् ।]

मागधिका—भट्टिदारिए ! अभिणवा खु कहा । [भर्तृदारिके ! अभिनवा खलु कथा ।]

कुरङ्गी—याचेमि, मा णिब्बन्धिअ, मुहुत्तअं सआमि । [याचे, मा निर्बन्धय, मुहूर्तकं शये ।१]

विलासिनी—सुहं सइदु भट्टिदारिआ । मे कहेहि । [सुखं शेतां भर्तृदारिका । मह्यं कथय ।]

परिचारकस्य समाचारम् । व्याख्यानम् = कथाविशेषम् । असम्बद्धप्रलापम्= परस्परासम्बद्धकथाभिधायकत्वम् । याचे = प्रार्थये । मा निर्बन्धय = आग्रहं मा कार्षीः भर्तृदारिकामन्तरेण = राजपुत्रीं विना । परिभ्रष्टास्मि=पतितास्मि यदाभिमंम तस्मिन् यूनि अनुरागादिकं ज्ञातं तदा मम पतनं जातम् ।

कुरङ्गी—इस शिलातल पर थोड़ी बैठ लेती हूँ ।

मागधिका—जो राजकुमारी के लिये अच्छा लगे । अस्तु । (सब बैठती हैं) ।

मागधिका—अब मैं कहानी कहती हूँ ।

कुरङ्गी—मैं जानती हूँ तुम बेशिर-पैर की कहती है ।

मागधिका—यह बिलकुल नयी कथा है ।

कुरङ्गी—प्रार्थना करती हूँ, हठ मत करो । थोड़ा सो लेती हूँ ।

विलासिनी—राजकुमारी सुख से सोयें, हमको सुनाओ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) किण्णु खु भवे ! [किन्नु खलु भवेत् ।]

मागधिका—हला ! सुणाहि भट्टिदारिअं अन्तरेण··· । [हला ! शृणुहि भर्तृदारिकाभन्तरेण ।]

कुरङ्गी—हंह विदिदं रहस्सं । परिब्भट्ठम्हि । [हं विदितं रहस्यम् । परिभ्रष्टास्मि ।]

विलासिनी—हला । कहिं तुए सुदं । [हला ! कुत्र त्वया श्रुतम् ।]

मागधिका—भट्टिणीपरिचारिआए वसुमित्ताए कहिदं । [भट्टिनी-परिचारिकया वसुमित्रया कथितम् ।]

विलासिनी—सअं णाम भट्टिणीए कहिदं होदि । [स्वयं नाम भट्टिन्या कथितं भवति ।

मागधिका—अत्थि कासिराअपुत्तो जअवम्मा णाम । तस्स दिण्णा भट्टिदारिआ । तस्स अ दूदो आअदो महाराएण पूइदो । पडिग्गहिदं च वण्णिआरं । [अस्ति काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम । तस्मै दत्ता भर्तृदारिका । तस्य च दूत आगतो महाराजेन पूजितः । प्रतिगृहीतं च वर्णिकारम् ।]

कालान्तरितम् = विलम्बसम्पाद्यम् । स्वयौवनं सफलं संवृत्तम् = अनुकूलस्याभिलाभेन राजकुमार्या रूपं यौवनञ्च सफलं जातम् । प्रियनिवेद्यमानानि प्रियतराणि भवन्ति = प्रियजनेन सूचितो हि प्रियसमाचारोऽत्यन्तप्रियत्वं याति । सर्वं विश्वस्तं न भणति = मयि विश्वस्ता भूत्वा हृदयाभिलाषं

कुरङ्गी—(स्वगत) न जाने क्या बात है ?

मागधिका—सखि ! राजकुमारी के बिना सुनो—

कुरङ्गी—हाय मेरा रहस्य इसको मालूम हो गया । मैं भ्रष्ट हो गई ।

विलासिनी—तुमने कहाँ सुना ।

मागधिका—महारानी की परिचारिका वसुमित्रा ने कहा है ।

विलासिनी—तब तो महारानी ने कहा है ।

मागधिका—काशीराज का एक पुत्र जयवर्मा नाम का है । राजकुमारी उसको दी गयी है । उसका दूत भी आया था । महाराज ने उठकर सत्कार किया, वरण सामग्री भी ले ली ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) एदं अलिअं। अहं अत्तणो पभवामि। [एतदलीकम् अहमात्मनः प्रभवामि।]

मागधिका—तहि किल भट्टिणीए भणिदं—बाला खु मे दुहिआ, ण सक्कुणोभि एक्कंपि दिअसं अपेक्खन्ती जीविउं। जेदि मे महाराओ पसण्णो, एत्थ एव्व जामादुओ आणीदव्वो त्ति। [तत्र किल भट्टिन्या भणितं–बाला खलु मे दुहिता, न शक्नोम्येकमपि दिवसमपश्यन्ती जीवितुम्। यदि मे महाराजः प्रसन्नः, अत्रैव जामातानेतव्य इति।]

विलासिनी—तदो तदो। [ततस्ततः।]

मागधिका—तदो तं पि किल अणुमदं महाराएण। अज्ज णक्खत्तं सोभणं ति तेण अ दूदेण अमच्चो अय्यभूदिओ पत्थिदो। [ततस्तदपि किलानुमतं महाराजेन। अद्य नक्षत्रं शोभनमिति तेन च दूतेनामात्य आर्य-भूतिकः प्रस्थितः।]

कुरङ्गी—(स्वगतम्) हन्त कालन्तरिदं कय्यं। (हन्त ! कालान्तरितं कार्यम्।)।

विलासिनी—पिअं भट्टिदारिआए रूव जोव्वणं सफलं संवुत्तं त्ति। (प्रियं भर्तृदारिकाया रूपयौवनं सफलं संवृत्तमिति।)

सर्वं न कथयति। लज्जते। काले पार्श्वतः प्रभवामि = यथावसरं समीपस्था भवामि।

कुरङ्गी—(स्वगतम्) यह असत्य है। मैं अपनी मालिक स्वयं हूँ।

मागधिका—इस पर महारानी ने कहा मेरी लड़की अभी छोटी है, उसको मैं एक दिन के लिये भी नजर से अलग नहीं कर सकती। यदि महाराज की मेरे ऊपर कृपा है तो दामाद को यहीं बुला लें।

विलासिनी—तब क्या हुआ।

मागधिका—महाराज ने वह भी स्वीकार कर लिया। आज शुभ समय था इसलिये दूत के साथ अमात्य आर्य भूतिक भी गये हैं।

कुरङ्गी—(स्वगत) अच्छा हुआ, यह कार्य्य विलम्ब से होगा।

विलासिनी—बड़ी खुशी की बात है। राजकुमारी का रूप एवं यौवन सफल हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(प्रविश्य)

नलिनिका—भणिदं हि मम मादाए—गच्छ एदं वुत्तन्तं भट्टिदारिआए कहेहि। पिअणिवेदिअमाणाणि पिआणि पिअदराणि होन्ति। अह अ सा वि मं पेक्खन्ती सव्वं विस्सत्थं ण भणादि। अहं पि काले पस्सदो पभवामि त्ति। जाव भट्टिदारिआए पिअं णिवेदेमि। (परिक्रामति) (भणितं हि मम मात्रा—गच्छैतं वृत्तान्तं भर्तृदारिकायै कथय। प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति। अथ च सापि मां पश्यन्ती सर्वं विश्वस्तं न भणति। अहमपि काले पार्श्वतः प्रभवामीति यावद् भर्तृदारिकायै प्रियं निवेदयामि।)

कुरङ्गी—कोणु खु अभूदपूव्वो रोओ चिन्तिअमाणो मं उम्मादेदि। सुमणावण्णअं णेच्छदि। न तुस्सदि गोट्ठीए। इदं एत्थ दारुणं मनोहरं च। (निःश्वस्य) णलिणिए ! कि एदं। [को नु खल्वभूतपूर्वो रोगश्चिन्त्यमानो मामुन्मादयति। सुमनोवर्णकं नेच्छति। न तुष्यति गोष्ठया। इदमत्र दारुणं मनोहरं च। नलिनिके ! किमेतत्।]

मागधिका—भट्टारिए ! माअधिआ खु अहं। [भर्तृदारिके ! मागधिका खल्वहम्।]

अभूतपूर्वः = पूर्वं कदाप्यजातः, सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्। सोपानशब्देन = सोपानोपरि जायमानेन मदीयपादन्यासशब्देन।

(प्रवेश करके)

नलिनिका—मेरी माता ने कहा है कि यह समाचार जाकर राजकुमारी को सुनाओ। प्रियजन द्वारा कही प्रिय बात अत्यन्त प्रिय हो जाती है। तभी मुझे देखते ही सारी बातें खुलकर नहीं कहती है, मैं भी समय पर समीप आ जाऊँगी। अब मैं राजकुमारी को खुशखबरी सुना दूँ।

कुरङ्गी—(गहरी श्वास लेकर) यह कौन सा अपूर्व रोग है, जिसकी चिन्ता में मैं पागल होती जा रही हूँ। मुझे पुष्पमाला अच्छी नहीं लगती। लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता। यह तो अत्यन्त कष्टकर होते हुए भी मनोहर है। (श्वास लेकर) नलिनिके ! यह क्या बात है।

मागधिका—राजकुमारी ! मैं मागधिका हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विलासिनी—भट्टिदारिए ! विलासिणी खु अहं। [भर्तृदारिके ! विलासिनी खल्वहम्।]

नलिनिका—(उपगम्य) भट्टिदारिए ! अहं णलिणिआ। सोवाण-सद्देण खु भट्टिदारिआए विञ्जादं। भट्टिदारिए ! भट्टिणी भणादि। (भर्तृदारिके ! अहं नलिनिका। सोपानशब्देन खलु भर्तृदारिकया विज्ञातम्। भर्तृदारिके ! भट्टिनी भणति।)

कुरङ्गी—किं त्ति। (किमिति।)

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ। (एवमिव।)

कुरङ्गी—हं हीणं चारित्तं। [हं हीनं चारित्रम्]

नलिनिका—णं सम्भावणीओ एसो। णं सो एव सो। [ननु संभावनीयं एषः ! ननु स एव सः।]

कुरङ्गी—णलिणिए ! संवाहेहि मं। [नलिनिके ! संवाहय माम्।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि। [यद् भर्तृदारिका। आज्ञापति।]

विलासिनी—णलिणिए ! विवाहो कदा भविस्सदि। [नलिनिके। विवाहः कदा भविष्यति।]

सम्भावनीयः = आदरेण गृहीतः।

विलासिनी—स्वामिनि ! मैं विलासिनी हूँ।

नलिनिका—(समीप जाकर) राजकुमारी ! मैं हूँ नलिनिका। सीढ़ी के शब्द से आपने जान लिया, महारानी ने कहा है।

कुरङ्गी—क्या कहा है ?

नलिनिका—(कान में) यही कहा है।

कुरङ्गी—हाय ! चारित्रिक पतन हो गया।

नलिनिका—ऐसा मत कहिये, निश्चय ही यह वही है।

कुरङ्गी—नलिनिके ! पकड़ ले मुझे।

नलिनिका—जो कुमारी की आज्ञा।

विलासिनी—विवाह कब होगा ?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(नेपथ्ये)

अद्य

नलिनिका—चिरं जीव ।

(नेपथ्ये)

राजपुरुषाः ! अमात्यः प्रस्थित इति कश्चिदमात्यभृत्यः कन्यापुररक्षणार्थं नाभ्यागतः । तद् यथेष्टं भवतु । तावदहं श्वो राज्ञे निवेदयिष्यामि ।

विलासिनी—हला णलिणिए ! किं भणिदं । [हला नलिनिके ! किं भणितम् ।]

नलिनिका—जदा सो भट्टिदारओ पविसदि, तदा होदि विवाहो । [यदा स भर्तृदारकः प्रविशति, तदा भवति विवाहः ।]

विलासिनी—अविग्घेण पविसदु । [अविघ्नेन प्रविशतु ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु]

मागधिका—हला ! एहि चउस्साले उपविसामो । [हला ! एहि चतुःशाले उपविशामः ।]

विलासिनी—एवं होदु । गदप्पाओ पओसो । आरूढा जोह्ला । [एवं भवतु । गतप्रायः प्रदोषः । आरूढा ज्योत्स्ना ।]

(नेपथ्य में) आज ।

नलिनिका—चिरकाल तक जीती रहो ।

(नेपथ्य में) राजपुरुषो ! अमात्य चले गये हैं, कोई अमात्य का भृत्य कन्यान्तःपुर की रक्षा करने नहीं आया । जो होता है होवे, कल मैं महाराज से निवेदन करूँगा ।

विलासिनी—सखि नलिनिके ! क्या कहा ?

नलिनिका—जब वह राजकुमार आयेंगे तब विवाह होगा ।

विलासिनी—निर्विघ्न भाव से प्रवेश करें ।

नलिनिका—ऐसा हो ।

मागधिका—चलो चतुःशाला में चलकर बैठें ।

विलासिनी—ऐसा ही हो, प्रदोष हो गया, चन्द्रिका फैल रही है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—हला ! मम वि अत्थरं अत्थरेहि । [हला ! ममाप्यास्तरमास्तृणु ।]

मागधिका—अत्थि अवआसो । सेवेहि भट्टिदारिअं, जाव णिद्दं लभदि । [अस्त्यवकाशः । सेवस्व भर्तृदारिकां, यावन्निद्रां लभते ।]

नलिनिका—एवं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे निष्क्रान्ते)

(ततः प्रविशति खड्गहस्तश्चोरवेषेण रज्जुहस्तोऽविमारकः)

अविमारकः—(सविमर्शम्) भोः ! कष्टं तारुण्यं नाम । कुतः,

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं
दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।

तारुण्यं कष्टं नाम = यौवनम् अतिकष्टकरम् ।

अन्वयः—रागम् विजृम्भयति, प्रमादम् संश्रयते दोषान् न चिन्तयति साहसम् अभ्युपैति स्वच्छन्दतः व्रजति, नीतिमार्गम् न इच्छति विदुषाम् शुभाम् बुद्धिम् अवशीकरोति ।

व्याख्या—रागमिति–रागम् विषयाभिलाषम्, विजृम्भयति = वर्धयति, प्रमादम् = असावधानताम्, संश्रयते = धारयति, दोषान् = अनर्थान्, न चिन्तयति = न विचारयति, साहसम् = दोषवत्कार्य्याध्यवसायम्, अभ्युपैति=

नलिनिका—सखि ! मेरा भी विस्तर लगा दे ।

मागधिका—अवकाश तो है, राजकुमारी की सेवा कर जब तक वह सो नहीं जाती ।

नलिनिका—यही हो (दोनों का प्रस्थान) ।

(इसके बाद खड्ग तथा रस्सी हाथ में लिये चोर वेशधारी अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—(विचार करके) अहो ! जवानी बहुत कष्टकारक है, क्योंकि राग बढ़ता है, असावधानता को धारण करता है, अनर्थ का विचार नहीं करता है, दोष युक्त कार्य्य को हठात् कर देता है, गुरुजनों के नियन्त्रण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं
बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥ १ ॥

कथमात्माधीनेष्वर्थेषु मन्दीभवामि । इह हि,

नगरपरिचितोऽहं रक्षिणो ज्ञातसारा-
स्तिमिरगहनभीमं वर्तते चार्धरात्रम् ।

स्वीकरोति, स्वच्छन्दतः = गुर्वादिनियन्त्रणमवहेल्य चरति = व्यवहरति, सुविदुषाम् = महापण्डितानामपि-शुभाम्=स्वच्छाम्, बुद्धिम् = धियम्, अवशीकरोति = अस्वाधीनीकरोति = विधत्ते । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

भावः—रागोद्रेकोऽसावधानत्वमन्यत्
दोषानीक्षाऽकार्य्यकारित्वमेव ।
स्वैराचारो नीतिमार्गस्य हानं
विद्वद्बुद्धेरप्यनीहाभिसारः ॥ १ ॥

आत्माधीनेषु = स्वाधीनेषु, मन्दीभवामि = उत्साहरहितो भवामि ।

अन्वयः—अहम् नगरपरिचितः रक्षिणः ज्ञातसाराः तिमिरगहनभीमम् अर्धरात्रम् वर्तते, असिः अपि सुसहायः अन्तरात्मा च निश्चितः इह बहुविचारैः किम् ? कः अर्थः मया दुष्करः (अस्ति) ॥ २ ॥

व्याख्या—नगरेति—अहम् नगरपरिचितः = नगराभिज्ञः (अस्मि) रक्षिणः = रक्षकाः, ज्ञातसाराः = विदितबलाः तिमिरेण गहनं भीमम् तिमिरगहनभीमम् = अन्धकारपूर्णं भयङ्करम्, अर्धरात्रम् = निशीथम्, वर्तते =

से रहित कर देता है, नीति-मार्ग का अनुसरण नहीं करता है, बड़े-बड़े विद्वानों की शुद्ध बुद्धि अस्वाधीन कर देता है ॥ १ ॥

स्वाधीन कार्य में ढिलाई कैसी ? यहाँ पर—

मुझे नगर का परिचय है, रक्षकों के बल को जानता हूँ अन्धकार से पूर्ण भयानक आधी रात है, तलवार मेरा सहायक है, मेरी आत्मा स्थिर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

असिरपि सुसहायो निश्चितश्चान्तरात्मा
किमिह बहुविचारैः को मया दुष्करोऽर्थः ॥ २ ॥

अहो अर्धरात्रस्य प्रतिभयता । सम्प्रति हि,

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजना ध्यानं प्रविष्टा इव ।

अस्ति, असिः = खड्गः सहायः = साहाय्यकर्ता अन्तरात्मा = हृदयश्च निश्चितः = = कृतकर्तव्यनिर्धारणः इह = अस्मिन् साध्येऽर्थे, बहुविचारैः = अनेकविध-विचारैः किम् ? कोऽर्थः = किं कार्य्यम् मया दुष्करः = दुःसम्पादः । न कोऽपी-त्यर्थः । मालिनी छन्दः ॥ २ ॥

भावः—पुरीयं विज्ञाता सुविदितबला रक्षकगणा
निशीथोऽयं भीमस्तिमिरविततश्चातिगहनः ।
सहायो मे खड्गो मतिरपि सुनिष्ठा कृतमतो
विचारैः कोऽर्थो मे य इह खलु साध्यो न भवति ॥ २ ॥

प्रतिभयता = भयानकता ।

अन्वयः—सर्वाः प्रजाः गर्भस्थाः इव निद्रया मोहम् उपगताः, सुखसुप्त-नीरवजनाः प्रासादाः ध्यानं प्रविष्टा इव, नगाः सञ्चितेन तमसा ग्रस्ताः इव स्पर्शानुमेया प्रच्छन्नरूपम् सकलम् जगत् अन्तर्धानम् इव उपयाति ॥ ३ ॥

व्याख्या—गर्भस्था इवेति—सर्वाः = अखिलाः, प्रजाः = लोकाः, गर्भस्थाः गर्भमध्यगता इव = यथा निद्रया = स्वापेन, मोहम् = वैचित्यम्, गताः = प्राप्ता, सुखं सुप्ता नीरवा जना येषु ते तथोक्ताः = सुषुप्तनिःशब्द-लोकाः, प्रासादाः = राजभवनानि, ध्यानं प्रविष्टा = ध्यायन्त इव वर्तन्ते,

---

विचार वाली है, फिर यहाँ अनेक विचारों की क्या आवश्यकता, कौन ऐसा कठिन काम है जिसको मैं नहीं कर सकता ।

अहो ! आधी रात का समय कितना भयङ्कर है ।

इस समय सारी जनता गर्भस्थ शिशु के समान निद्रा से ज्ञानरहित हो गई है । सुख से सोये लोगों से युक्त प्रासाद मानो ध्यान कर रहे हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रग्रस्ता इव सञ्चितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगा
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत् ॥ ३ ॥

अद्यैव खलु वर्तते कालरात्रिः ।

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः ।
तमसि दश दिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥ ४ ॥

नगाः = पर्वताः, सञ्चितेन = पुञ्जीभूतेन, तमसा = अन्धकारेण ग्रस्ताः = निगीर्णा इव = यथा स्पर्शानुमेयाः, अप्रत्यक्षाः स्पर्शमात्रेण ज्ञेयाः, प्रच्छन्न-रूपम् = आच्छादिताकारम् जगत् = संसारः अन्तर्धानम् = अन्तर्हितम् उप-गतम् = प्राप्तम् इव । शार्दूलविक्रीडितम् छन्दः ॥ ३ ॥

भावः—गता गर्भं मन्ये नहि किमपि जानन्ति जनताः
गृहाः शङ्के ध्यानं सुनिभृतजनाः संविदधति ।
चिताध्वान्तग्रस्ता इव गिरिगणाः स्पर्शविदिता
ध्रुवं छन्नो लोकः, सकल इह चान्तर्धिमगमत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—मार्गनद्यः तिमिरम् वहन्ति इव, हर्म्यमालाः पुलिननिभाः प्रतिभान्ति दश दिशः तमसि निमग्नरूपाः अन्धकारः प्लवतरणीय इव ॥ ४ ॥

व्याख्या—तिमिरमिवेति—मार्गनद्यः = पथिरूपा नद्यः, तिमिरमिव वहन्ति, अन्धकाररूपं जलं वहन्ति, तासाम् हर्म्यमालाः = प्रासादपरम्परा पुलिनमिव = तटा इव प्रतिभान्ति = शोभन्ते, अयमन्धकारः = ध्वान्तम्, प्लवतरणीयः = प्लवेन नावा पारणीयो भाति । पुष्पिताग्रा छन्दः ॥ ४ ॥

पुञ्जीभूत अन्धकार से मानो निगल गया हो ऐसा पर्वत केवल स्पर्श से ज्ञात हो रहा है, ढका हुआ सारा संसार मानों अन्तर्धान हो गया है ॥ ३ ॥

आज ही काल रात्रि है ।

सभी मार्ग तिमिर जल को बहाने वाली नहीं हो गये है, दोनों तरफ की अटारियाँ तट के समान प्रतीत हो रही हैं सारी दशदिशायें अन्धकार मे डूब गयी है, इतना घना अन्धकार है कि इसको नाव से मानों पार किया जा सकता है ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(परिक्रम्य कर्णं दत्वा) अये गान्धर्वध्वनिरिव श्रूयते । को नु खल्वयं सर्वकालसुखी पुरुषः कान्तया सह गान्धर्वमनुभवति व्यक्तं स्वयं वीणां वादयति । कुतः,

उच्चं हर्म्यं सन्निरुद्धाश्च जाला-
स्तन्त्रीनादः श्रूयते सानुनादम् ।
बाह्यस्थानं व्यक्तमेवं प्रयोक्तुं
किं सामर्थ्यं स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् ॥ ५ ॥

भावः—मार्गो नदी तिमिरवारिवहा विभाति
हर्म्यालिरेतिततटताश्च समा तदीयाम् ।
मग्ना दिशो दश घने तमसीह सर्वा
नावा विभान्ति सुखतः खलु पारणीयाः ॥ ४ ॥

गान्धर्वध्वनिः = गानवाद्यध्वनिः, सर्वकालसुखी = सर्वदानन्दः, गान्धर्वम् अनुभवति = गीतवादित्रानन्दमनुभवति स्वयं वीणां वादयति—

अन्वयः—हर्म्यम् उच्चम् जालाः च सन्निरुद्धाः तन्त्रीनादः सानुनादम् श्रूयते बाह्यस्थान् व्यक्तम् एव प्रयोक्तुम् स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम् किम् सामर्थ्यम् ।

व्याख्या—उच्चमिति—उच्चम् = उन्नतम्, हर्म्यम्=प्रासादः, जालाः = गवाक्षा संनिरुद्धाः, मुद्रिताः=पिहिताः, तन्त्रीनादः=वीणाध्वनिः, सानुनादम्= सप्रतिनादम् , श्रूयते = आकर्ण्यते, बाह्यस्थानम् = परश्रवणयोग्यम्, व्यक्तम् = स्फुटम् एवम् = अनेन प्रकारेण प्रयोक्तुम् एवं वीणा वादयितुम् स्त्रीकराग्राङ्गुलीनाम्=नारीकराङ्गुल्यग्राणाम् किं सामर्थ्यम् , का शक्तिः । हर्म्यस्योच्चता गवाक्षाणाम् पिधानम् तथापि सानुनादः वीणाध्वनिः श्रूयत इति पुरुष एव वीणां वादयति ॥ ५ ॥

(चलकर कान देकर) गीत की ध्वनि सुनाई दे रही है । कौन यह सदा आनन्द का अनुभव करने वाला है जो वीणा बजाकर गाने का आनन्द लें रहा है । स्पष्ट है कि यह पुरुष स्वयं वीणा बजा रहा है क्योंकि—

मकान ऊँचा है जंगले बन्द हैं, प्रतिध्वनि के साथ वीणा का शब्द सुनाई पड़ रहा है, इस वीणा ध्वनि के वाह्यस्थान (पर श्रवण योग्यता) स्पष्ट है इस तरह वीणा बजाने की शक्ति स्त्री की अंगुलियों में कहाँ से आ सकती है ॥५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गीतं तु पुनः स्त्रियाः । इह हि,

तानस्तु मन्दो विशदप्रवृत्तो
जातश्च नादो मुखनासिकेन ।
स्थूलोऽपि हेतुः करतालनादः
सञ्जायते सद्वलयस्वनेन ॥ ६ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) हहह अयमपरः कः क्रुद्धां कान्तां प्रसादयति । महान् खल्वस्यापराधः, येनेयमस्यां वेलायामपि न प्रसीदति । अथवा प्रसन्ना खल्वियं व्यपदेशमिच्छति । कुतः,

---

भावः—उच्चे हर्म्ये पिहितगवाक्षे वीणावादः प्रतिरवयुक्तः ।
स्पष्टाकर्ण्यो नहि वनिताया हस्तादेवं कथमपि शक्यः ॥ ५ ॥

अन्वयः—विशदप्रवृत्तः तानः तु मन्दः, नादः च मुखनासिकेन जातः, स्थूलः अपि करतालनादः सद्वलयस्वनेन हेतुः जायते ॥ ६ ॥

व्याख्या—तानस्त्विति—विशदप्रवृत्तः = स्पष्टरूपेणारब्धः, तानः = लयप्रकाशनप्रकारः, नादः = ध्वनिश्च, मुखनासिकेन = मुखेन नासिकया च जातः = उत्पन्नः, स्थूलः = महान् अपि करतालनादः = परस्परकरताडनशब्दः, वलयस्वनेन = कङ्कणध्वनिना युक्तः हेतुः = स्त्रीजन्यत्वे कारणम् । निर्दिष्ट-हेतुभिर्ज्ञायते यत् स्त्री गायति ॥ ६ ॥

भावः—तानस्य स्पष्टमन्दत्वात् माधुर्य्याच्च ध्वनेस्तथा ।
स्थूलस्य करतालस्य वलयध्वनियोगतः ॥ ६ ॥

गाना तो स्त्री का है, यहाँ पर—

तान मन्द एवं स्पष्ट है, नाद मुख और नासिका दोनों के प्रयत्न से पैदा हुआ है, स्थूल करताल वलय के शब्द से मिला है ॥ ६ ॥

(यह गान के स्त्रीकृत होने का कारण है)

(चलकर और देखकर) ह. ह. ह. यह कौन अपनी मानिनी स्त्री को मना रहा है । ज्ञात होता है इसने कोई बड़ा अपराध किया है । जिससे यह स्त्री इस समय भी नहीं मान रही है, अथवा यह प्रसन्न है, कोई बहाना ढूंढ रही है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठं
काऽहं तवेत्यसकलं प्रणयाद् वदन्ती ।
सद्भावतः प्रियवशं समुपागतापि
स्त्रीभावतः प्रवदति प्रतिकूलमेव ॥ ७ ॥

को नु खल्वयं पक्षी भैरवस्वरः । आ उलूकः खल्वयम् । कथं हसितमनेन । उलूकस्वरश्रवणभीतया कान्तया परिष्वक्तः खल्वयं तपस्वी । सदृशं वयसः । किं परव्यापारवीक्षणम् । साधयामस्तावत् । (परिक्रम्य) को नु खल्वयमस्मिन् नगरापणालिन्दे सशङ्कितमतिस्निग्धं च सम्भाषते । अस्मत्सब्रह्मचारी खल्वयं तपस्वी ।

अन्वयः—वाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठम् तव अहम् का इति प्रणयात् असकलम् वदन्ती सद्भावतः प्रियवशम् गता अपि स्त्रीभावतः प्रतिकूलम् एव वदति ।

व्याख्या—वाष्पोपेति—वाष्पेण = अन्तरुष्मणा अवरुद्धः = आवृतः जडः = कुण्ठितः गद्गदः = स्खलद्वर्णः जिह्मः = मन्दः कण्ठो यस्मिन् कर्मणि तत्तथा तव का अहम् = त्वं मां न स्निह्यसि इति प्रणयाद् = प्रेम्णा असकलमसंपूर्णं वदन्ती सद्भावतः स्वाभाविकस्नेहात् प्रियवशम् = प्रियतमाधीनताम्, गता प्राप्ताऽपि स्त्रीभावतः = निसर्गवाम्यात् प्रतिकूलम् = विपरीतम् एव प्रवदति = प्रलपति ॥ ७ ॥

भावः—सगद्गदं कापि न तेऽहमस्मीत्येतद् ब्रुवाणाऽसकलं वचो हि ।
सद्भावतः प्रेष्टवशंगतापि वाम्याद् विरुद्धं प्रलपत्यभीक्ष्णम् ॥७॥

भैरवस्वरः—भयावहशब्दः उलूकस्वरभीतया = कौशिकध्वनिभीरुकया कान्तया = प्रियया परिष्वक्तः = आलिङ्गितः, सदृशं वयसः = अवसणानुकूलम् किंपरव्यापारवीक्षणम् = दम्पतिरहः प्रणयदर्शनमनुचितम्, साधयामस्तावत् = गच्छामस्तावत् । नगरापणालिन्दे = नगरविपणि बहिर्भागे शङ्कितशङ्कायुक्तम्, अतिस्निग्धम् = अत्यनुरागम् । अस्मत् सब्रह्मचारी = मत्सदृश एव प्रच्छन्नकामुकः ।

वाष्प से रुद्ध गद्गद एवं जड कण्ठ से मैं तुम्हारी कौन हूँ ऐसा कहती हुई प्रियतम के सन्निकट वर्तमान भी स्त्रीस्वभाव के कारण विपरीत बोलती है ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्पीड्यते परिजनेन शनैर्वदेति
संविग्नवद् भवति भूषणनिःस्वनेन।
सङ्गं वदत्यसुखदं मदनाभिभूतः
सङ्केतमिच्छति च नेच्छति चाभिगन्तुम् ॥ ८ ॥

(परिक्रम्य) अये ज्योत्स्ना। नैषा ज्योत्स्ना, उभयपङ्क्तिगतानां प्रासादानां गवाक्षान्तरगता दीपप्रभैषा। इह खलु प्रयत्नादात्मा रक्षितव्यः। अये अयं तु तस्करः। एष हि,

---

अन्वयः—परिजनेन शनैः वद इति सम्पीड्यते भूषणनिःस्वनेन संविग्नवद् भवति सङ्गम् असुखदम् वदति मदनाभिभूतः सङ्केतम् इच्छति अभिगन्तुम् च न इच्छति।

व्याख्या—सम्पीड्यत इति—परिजनेन = परिचारकवर्गेण, शनैर्वद = मन्दं जल्प इति सम्पीड्यते = कदर्थ्यते, भूषणनिःस्वनेन = प्रियतमाभरणशब्दश्रवणेन = संविग्नवत् = उद्दीपितकाम उद्विग्न इव भवति, सङ्गम् = परस्त्रीसमागमम्, असुखदम् = दुष्परिणामम्, वदति = कथयति, मदनाभिभूतः = कामसमाकुलः, सङ्केतम् = प्रियासम्मेलनगुप्तस्थानम्, इच्छति = कामयते, अभिगन्तुम्=तत्र गन्तुं च नेच्छति भीरुत्वात्। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥८॥

भावः—नोच्चैर्वदेति परिचारकसन्निरुद्धः
भूषारवश्रवणतश्च नितान्तखिन्नः।

भयानक शब्द वाला यह कौन पक्षी बोल रहा है ? अरे यह उल्लू है, यह हँस क्यों रहा है, उलूक के शब्द को सुनकर डरी यह कामिनी अपने प्रियतम का आलिङ्गन कर रही है। (चलकर) यह कौन नगरापण के अलिन्द पर सशङ्क तथा सानुराग भाषण कर रहा है। यह बेचारा भी हमारे समान है।

धीरे से बोलो ऐसा परिचारकों द्वारा डांटा जा रहा है। आभूषण के शब्द से उद्विग्न जैसा हो जाता है। सङ्ग असुखकारी है ऐसा कहता है और कामार्त संकेतस्थल को चाहता है पर (भीरुता के कारण) जाना नहीं चाहता ॥ ८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः परगृहवादनिविष्टदृष्टिचेष्टः ।
द्रुतगतिरपि दीपिकावलोकी भवति च पादनिपातनादभीरुः ॥९॥

हन्त परिहरिष्याम्येनम् । (एकान्ते स्थितः) गतो नृशंसः । वयमपि तावत् प्रतिष्ठामहे । (परिक्रम्य) अये रक्षिणः खल्वेते । किन्नु खल्विदानीं करिष्ये । भवतु दृष्टम् । इमां श्रृङ्गाटकस्थां विटसभां प्रविशामि । (विलङ्घ्य स्थित्वा)

अन्याङ्गनारतिमनायति मा ब्रवीति
सङ्केतमिच्छुरपि नेच्छति तत्र गन्तुम् ॥ ८ ॥

ज्योत्स्ना = चान्द्रीप्रभा उभयपङ्क्तिगतानाम् = पार्श्वद्वयसंस्थितानाम् प्रासादानाम् = राजगृहाणाम्, दीपप्रभा = दीपप्रकाशः ।

अन्वयः—दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः, परगृहवादनिबद्धदृष्टिचेष्टः द्रुतगतिरपि दीपिकावलोकी पादनिपातनाद् भीतः च भवति ।

व्याख्या—दृढपरिकरेति—दृढस्य परिकरस्य बन्धेन हृष्टः=सुस्थिरकटिबन्धेन प्रसन्नः परगृहस्य वादे निबद्धा दृष्टिचेष्टा यस्य सः तथोक्तः = अन्यगृहवार्तालापश्रवणयोजितनयनव्यापारः । द्रुतगतिरपि = शीघ्रगतिरपि दीपिकावलोकी = दीपवीक्षणार्थं नाश्रितमन्दगतिः । पादनिपातनादभीतः पादप्रक्षेपजनितशब्देन भीतः भवति मा कश्चित् शब्दं श्रुत्वा द्राक्षीत् ।

भावः—आबद्धकक्षो मुदितान्तरात्मा गृहप्रवादे विनिबद्धदृष्टिः ।
शीघ्राभिसारोऽपि प्रदीपदर्शी पादावपातध्वनिभीरुकश्च ॥ ९ ॥

परिहरिष्यामि = वर्जयिष्यामि, नृशंसः = घातकः, प्रतिष्ठामहे = गच्छामः, श्रृङ्गाटकस्थाम् = चतुष्पथस्थाम्, विटसभाम् = विटनिवेशस्थानम् ।

(चलकर) अरे यह चाँदनी है । नहीं यह चाँदनी नहीं है । दोनों कतारों में वर्तमान भवनों के जंगलों से निकली दीपों की प्रभा है । इसमें यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करनी है । यह—

दृढतापूर्वक परिकर बंधने से प्रसन्न, दूसरों के घर की बातों के सुनने में दृष्टि ले गये हुए, शीघ्र चलता हुआ भी दीपक को देखता हुआ अपने पैर की ध्वनि से भी डरता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां
मामभ्युपेत्य हसतीव ममैष खड्गः ।
नैते तु रक्षिपुरुषा मम भारभूता
मत्कार्यसाधनपरोऽहमिह प्रविष्टः ॥ १० ॥

गता रक्षिणः । के रक्षन्ति रक्षितात्मानम् ।

अबहुपुरुषपक्षमेत्य शौर्यं
निशि विचरन्ति सरागलोभमोहाः ।

अन्वयः—मितविक्रमाणाम् आरक्षिणाम् विमुखम् माम् तु अभ्युपेत्य एषः मम खड्गः हसति इव, तु एते रक्षिपुरुषा मम भारभूता न अहम् इह मत्कार्यसाधनपरः प्रविष्टः ।

व्याख्या—आरक्षिणामिति—मितविक्रमाणाम्=अत्यल्पबलानाम्, आरक्षिणाम् = कन्यान्तःपुररक्षकाणाम्, विमुखम् = पराङ्मुखम्, माम् = महावीरं तु अभ्युपेत्य = प्राप्यज्ञात्वा इत्यर्थः, एषः = अयम् मम खड्गः = कृपाण, हसति इव = अहा एभ्यः क्षुद्रेभ्यो भीत इति दृष्ट्या प्रहसति । अहमिह मत्कार्य्यसाधनपरः = स्वेष्टप्रियासमागमार्थं प्रविष्टः=न युद्धार्थम् इत्येतान् उपेक्षामि । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १० ॥

भावः—रक्षकनिकरमुपेक्ष्य स्वकार्यसाधने प्रवृत्तं माम् ।
हीनबलेभ्यो भीत इत्यवेत्य हसतीवायं खड्गः ॥ १० ॥

अन्वयः—अबहुपुरुषपक्षम् शौर्य्यम् एत्य निशि सरागलोभमोहाः विचरन्ति इह तु पुरुषकारसारसाक्षी रात्रिचारः बहुविषमः सुखश्च अस्ति ।

व्याख्या—अबह्विति—न सन्ति बहवः पुरुषाः पक्षे यस्य स तथोक्तः =

अच्छा इनसे बच जाऊँ (एकान्त में खड़ा होकर) चला गया वह क्रूर । अब मैं भी जाता हूँ । (चलकर) यह तो रक्षक हैं । अब क्या करूँ, सोच लिया । इस चौराहे पर की विट-सभा में बैठ जाऊँ (लांघ कर खड़ा होकर) इन साधारण बल वाले से मुझे विमुख देख यह मेरा खड्ग हँस रहा है पर वे रक्षक तो मेरे भार नहीं हैं । मैं यहाँ अपना कार्य्य करने आया हूँ ॥१०॥

रक्षक चले गये जो अपनी रक्षा स्वयं करता है उसकी कौन रक्षा करेगा। अन्य बहुत लोगों की सहायता से निरपेक्ष शूरता की एक मात्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इह तु पुरुषकारसारसाक्षी
बहुविषमश्च सुखश्च रात्रिचारः ॥ ११ ॥

एतद् राजकुलम् । अहो स्थिरत्वमुच्छ्रितत्वं प्राकारस्य । इह खलु प्रयुज्यते पुरुषाणां कक्ष्याबन्धः । अथवा प्रविष्ट एवाहं चिन्तयितव्यः, यदि स्थिराः कपिशीर्षकाः । इह स्थित्वा रज्जुं प्रक्षिपामि । नमः प्रजापतये । नमः सर्वसिद्धेभ्यः । प्रसीदन्तु बलिशम्बरमहाकालाः । विजृम्भतां रात्रिः । वर्धतां निद्रा । अनुमन्यतां पद्मा । लयं गताः सर्वविघ्ना भवन्तु । हताः परिपन्थिका भवन्तु । जयतु भगवती

बहुजनाननुश्रितपक्षम् , शौर्य्यम् = शूरताम् , एत्य = अभ्युपगम्य, निशि = रात्रौ सरागलोभमोहाः = रागेण-लोभेन-मोहेन च युक्ताः = जार-चौर-मोहाभिभूता, विचरन्ति = पर्य्यटन्ति, इह तु = राजप्रासादे तु अन्यतो विशेषः पुरुषकारसारः = प्रबलपराक्रमप्रमाणभूतः, रात्रिचारः = निशिपर्यटनं साक्षी बहुविषमम् = सर्वतो रक्षिणां बहुत्वाद् भयजनकम् अतिमनोहरस्थानत्वाच्च सुखम् = सुखकरः । अस्ति ॥ ११ ॥

भावः—अनन्यसाहाय्यमपेक्ष्य शौर्य्यं जाराश्च चौराश्च निशि भ्रमन्ति ।
राजाधिवासे तु निशाप्रचारः महाभयः सौख्यकरस्तथास्ति ॥ ११ ॥

राजकुलम् = राजपरिजननिवासप्रासादः । उच्छ्रितत्वम् = औनत्यम् । प्राकारस्य = पुरप्रवेशावरोधाय परितो रचितस्य महाकुड्यस्य । कक्ष्यबन्धन् = परिकरबन्धनम्, कपिशीर्षकः = कपिशीर्षाकारः भवनप्रदेशः, बलिशम्बर

सहायता से राग-लोभ-मोह-युक्त, जार-चौर आदि रात में घूमते हैं, इस राजमहल में तो रात का चलना बड़ी बहादुरी का प्रमाण है। यह भयानक तथा सुखकर भी है ॥ ११ ॥

यही राजकुल है, अहा चाहारदीवारी कितनी ऊँची और दृढ है, यहाँ पर-पुरुषों को परिकर बाधना होता है। अथवा मैं तो प्रविष्ट ही हूं। यदि यह कंगूरे स्थिर हैं तो यहीं रस्सी फेंकता हूँ। प्रजापति को नमस्कार, सभी सिद्धों को नमस्कार करता हूँ। बलि-शम्बर, महाकाल मुझ पर प्रसन्न हों। रात बढ़े। नींद गहरी हो, लक्ष्मी अनुकूल रहें। सभी विघ्नों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कात्यायनी । (रज्जुं क्षिप्त्वा) हन्त बद्धः कर्कटकरज्ज्वा कपिशीर्षकः । अहो भवित व्यस्य प्रभावः । एकेनैव क्षेपेण सुसंसक्तां रज्जुं कार्यसिद्धिमिव पश्यामि । अहो बलवान् हि भगवान् प्रजापतिः । कुतः,

> यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
> को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
> यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
> दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥ १२ ॥

महाकालाः = चौर्य्यशास्त्रप्रसिद्धा एते । अनुमन्यताम् = अनुजानन्तु, परिपन्थिनः = शत्रवः, भवितव्यस्य प्रभावः = अवश्यभावित्वप्रभावः, सुसंसक्ताम्= दृढलग्नाम् । कार्य्यसिद्धिमिव पश्यामि-एक प्रक्षेपेण कपिशीर्षकलग्नारज्जुः कार्यसिद्धि सूचयति ।

अन्वयः—यत्ने कृते यदि कार्यं न सिध्यति अत्र कः दोषः कः वा मम न सिध्यति इति कार्यं करोति । इह शुभैः यत्नैः नृणां पुरुषता भवति । कार्यसिद्धिः दैवं विधानम् अनुगच्छति ।

व्याख्या—यत्ने कृत इति—यत्ने कृते = शक्त्यनुसारं प्रयासे कृते यदि कार्य्यं न सिध्यति = विपद्यते, अत्र कोः दोषः = कर्तुर्दोषो नास्तीत्यर्थः । को वा पुरुषो मम न सिद्धयति मम कार्य्यसिद्धिर्न जायतामिति कार्यं = कर्म, करोति= सर्वोऽपि कार्यसिद्धिमपेक्ष्यैव करोति । शुभैः = यथार्थैः, यत्नैः = प्रयासैः नृणाम् = मनुष्याणाम् पुरुषता भवति, पुरुषाः पौरुषवन्तो जायन्ते, कार्य्यसिद्धिः = कार्य्यसाफल्यम् तु, दैवं विधानम् = भाग्यविहितं, नियमम्,

---

नाश हो । अहो मेरे शत्रु विनष्ट हों । जय हो, भगवती दुर्गा की जय हो (रस्सी फेंक कर) अहो रस्सी से कंगूरा बंध गया ।

- अहा भवितव्यता का क्या प्रभाव है । एक ही बार फेंकने से रस्सी कस गयी इससे पता चलता है कि कार्य्य बन जायगा । भगवान् प्रजापति बड़े प्रभावशाली हैं । क्योंकि—

यत्न करने पर भी कार्य्यसिद्ध न हो तो इसमें किसका दोष है कौन नहीं चाहता कि मेरा कार्य सिद्ध हो । अच्छे प्रयत्नों से पुरुषों की पुरुषता की सिद्ध होती है, कार्य-सिद्धि तो भाग्य के विधान पर निर्भर होती है ॥ १२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवतु रज्जुमवलम्ब्यारोहामि। (आरुह्य दृष्ट्वा) अहो राजकुलस्य श्रीः।

विपुलमपि मितोपमं विभागा-
न्निबिडमिवाभ्युदितं क्रमोच्छ्रयेण।
नृपभवनमिदं सहर्म्यमालं
जिगमिषतीव नभो वसुन्धरायाः॥ १३॥

इह तु न स्थातव्यम्। अट्टालप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्ना भवन्ति।

अनुगच्छति = अनुसरति। महाप्रयासे कृतेऽपि कार्य्यसिद्धिर्भाग्याधीना भवतीत्यर्थः॥ १२॥

भावः—यत्नः कार्य्यो मानवैः सर्वथा हि
कामं सिद्धिर्जायतां भाग्यतो न।
एवं नृणां पौरुषं याति सम्यक्
साफल्यं तत्तस्य निघ्नं हि कार्यम्॥ १२॥

अन्वयः—विपुलम् अपि विभागात् मितोपमम् क्रमोच्छ्रयेण निबिडम् इदम् सहर्म्यमालम् नृपभवनम् वसुन्धरायाः नभः जिगमिषति इव।

व्याख्या—विपुलमिति-विपुलम् = विशालमपि, विभागात्=तत्तद्विभागहेतोः मितोपमम् = संजातसीममिव, क्रमोच्छ्रयेण = क्रमिकोन्नत्या, निबिडम् = घनमिव, अभ्युदितम्=उच्छ्रितमिव प्रतीयमानम्। इदम् सहर्म्यमालम् = हर्म्यमालया सहितम्, नृपभवनम्=राजभवनम् = वसुन्धरायाः=पृथिव्याः सकाशात्, नभः = आकाशम्, जिगमिषति = गन्तुमिच्छतीव। पुष्पिताग्रावृत्तम्॥ १३॥

अट्टालः = गृहोपरिभागः, प्रतोली = रथ्या, इन्द्रपथः = प्रधानमार्गः। अवतरिष्यामि = अधोगमिष्यामि।

ठीक रस्सी पकड़ कर चढ़ता हूँ। (चढ़कर तथा देखकर) राजकुल की समृद्धि धन्य है!

अनेक भागों में विभक्त होने कारण विशाल होने पर भी परिमित सा ज्ञात होता है, क्रमशः उन्नत होते जाने के कारण घना सा ज्ञात होता है प्रासाद समूहों से युक्त यह भवन धरातल से मानों आकाश में जाना चाह रहा हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवतु अनयैव रज्ज्वावतरिष्यामि । (अवतीर्य) क्व नु खल्विदानीं रज्जुं प्रच्छादयामि । (विचिन्त्य) भवतु दृष्टम् । अस्यां हस्तिशालायां पाशं क्षिप्त्वा क्षिपामि । (प्रक्षिपति । परिक्रम्य)

अये तन्त्रीनादो युवतिकलगीतध्वनियुतः
अन्यतो यास्यामि ।
अये गन्धामोदो गजवरमदोद्बोधितपटुः ।
मुहूर्तं स्थित्वा यास्यामि ।
प्रभैषा दीपानामिह तु वितता रक्षिपुरुषाः
का गतिः ।
चिराद् रात्रौ शान्तं सह कमलषण्डैर्नृपगृहम् ॥ १४ ॥

व्याख्या—अय इति—अये = अहो युवतिकलगीतध्वनियुतः = कामिनी-कमनीयध्वनिसंवलितः, तन्त्रीनादः = वीणानादः, अये = अहो, गजवर-मदोद्बोधितपटुः = गजवराणाम्, मदेन = दानवारिणा, उद्बोधितः = समेधितः, पटुः = सर्वतः प्रसवशीलः, गन्धामोदः = सुरभिगन्धः, प्रसरति एषा = पुरो दृश्यमाना दीपानाम् = प्रदीपानाम् प्रभा = कान्तिः, इह तु = एतस्मिन् स्थले तु विततः = व्याप्ताः रक्षिपुरुषाः = आरक्षिजनाः, सन्तीति शेषः । रात्रौ = निशि चिरात् = चिरकालानन्तरम्, कमलषण्डैः सह = कमलवनैः सार्धम्, नृपगृहम् = राजभवनम्, सुप्तम् = प्रयासरहितम् शान्तम् जातम् ।

यहाँ नहीं ठहरना चाहिये, अटारियों, गलियों, चौराहों से ही विघ्न हैं, अस्तु इसी रस्सी के सहारे नीचे उतरूँगा (उतर कर) अब इस रस्सी को कहाँ छिपाऊँ ? (सोचकर) इस हस्तिशाला में गांठ खोल कर रख देता हूँ. (फेंकता है । चलकर) अरे यह युवती के गीत से युक्त वीणा का नाद है-दूसरी ओर जाऊँगा । अहो यहाँ हाथियों के मद-जल से उत्पन्न गन्ध फैल रहा है थोड़ा ठहर कर जाऊँगा, यह दीपों का प्रभा है यहाँ बहुत से रक्षक हैं, (क्या उपाय है) बड़ी रात गये यह राजभवन शान्त होता है, जिस समय कमल समूह मुद्रित (संकुचित) हो जाते हैं ।। १४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यास्यामि। एष तयोक्तो मार्गः। इयं मन्दाकिनी। असौ दारुपर्वतकः। इयमुपस्थानसभा। अये अयं कन्यापुरप्रासादः। एष तु काष्ठकर्मबहुलतया समासन्नजालत्वाच्च सुखमारोढुम्। अथवा दुरारोहश्चेत्,

कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषा–
द्धर्म्याधिरोहणमतेर्मम का विशङ्का।
संसक्तनालगतकण्टकभीतचेता–
स्तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति॥ १५॥

इयम् मन्दाकिनी = कृत्रिमा सरित्, दारुपर्वतकः = काष्ठनिर्मितः पर्वतप्रतिच्छन्दकः, उपस्थानसभा = यत्र स्थितं राजानं सर्वे पश्यन्ति। काष्ठकर्मबहुलतया = काष्ठशिल्पाधिक्यात्, समासन्नजालत्वात् सन्निकटस्थ गवाक्षत्वात्।

अन्वयः—मनोभिलाषात् कान्तासमीपम् उपगम्य हर्म्याधिरोहणमतेः मम विशङ्का का? कः तृष्णार्दितः (पुरुषः) संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः पुष्करिणीम् जहाति।

व्याख्या—कान्तासमीपेति–मनोभिलाषात् = मनोरथाधिक्यात्, कान्तासमीपम् = प्रियतमासन्निधिम्, उपेत्य = अभिगम्य, हर्म्याधिरोहणमतेः = प्रासादारोहणाभिलाषिणः, मम का विशङ्का=को विकल्पः, कः तृष्णार्दितः = पिपासाकुलः संसक्तनालगतकण्टकभीतचेताः = संसक्तात् = संश्लिष्टात्, नालगतात् = विसस्थात्, कण्टकात्, भीतम् = संजातभयम्, चेतः = चित्तम् यस्य सः तथोक्तः। पुष्करिणीम् = वापीं, जहाति = त्यजति॥ १५॥

जाता हूँ। यही मार्ग तो उसने बताया था, यही मन्दाकिनी है, यही दारु पर्वतक है, यही उपस्थान सभा, यह है कन्यान्तःपुर का प्रासाद है। इसमें लकड़ी की कारीगरी अधिक की गयी है, खिड़कियाँ पास में हैं, अतः इस पर चढ़ना सरल है, अथवा यदि चढ़ना कठिन होगा तो भी—

कान्ता के समीप में आकर प्रासाद पर चढ़ने में क्या शङ्का? नालगत कण्टकों के भय से कोई पिपासाकुल व्यक्ति क्या पुष्करिणी को छोड़ देता है?॥ १५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवत्वारोहामि । (आरुह्य) इदं तयोक्तं जालयन्त्रम् । (विघाट्य प्रविश्यावलोक्य च) साधु कुन्तिभोज ! साधु । उत्प्रहसित । इव भवनेनानेन स्वर्गः । तथा हि,

हंसाः स्वपन्ति मणिरत्नशिलातलेषु
वैदूर्यमौक्तिककृताः सिकताप्रतानाः ।
स्तम्भाः प्रवालविहिताः किमिह प्रलापै-
र्मन्दीभवन्ति मणिदीपहताः प्रदीपाः ॥ १६ ॥

अलं रौद्रवेषेण । (चोरवेषमपनीय कक्ष्याबन्धं विमुञ्चति)

भावः—कान्तासविधमुपेत्य हर्म्यारोहणे तु कैव शङ्का मे ।
नालस्य कण्टकभयात् तृष्णार्तः किं जलं त्यजति ॥ १५ ॥

अन्वयः—मणिरत्नशिलातलेषु हंसा स्वपन्ति सिकताप्रताना वैदूर्यमौक्तिककृताः स्तम्भाः प्रवालविहिताः इह प्रलापैः किम् मणिदीपहताः प्रदीपाः मन्दी भवन्ति ।

व्याख्या—हंसा इति—मणिरत्नशिलातलेषु = मणिरत्ननिर्मितशिलाफलकेषु, हंसाः = पक्षिविशेषाः, स्वपन्ति=निद्रति, सिकताप्रतानाः = सिकतासमूहाः, वैदूर्यमौक्तिककृताः=हरिन्मणिमौक्तिकक्षोदरचिताः, स्तम्भाः=आधारस्तम्भाः, प्रवालविहिताः = प्रवालरचिताः, प्रलापैः = वर्णनविस्तारैः किम् प्रदीपाः=मणिदीप्तिहताः = मणिप्रकाशैस्तिरोहिताः सन्तीति शेषः ।

भावः—मणिरचितशिलायां शेरते हंससंघाः,
मरकतमणिमुक्तानिर्मिताः सैकताश्च ।

ठीक है चढ़ता हूँ । (चढ़कर) यह उसके द्वारा बताया गया जालयन्त्र है । (खोलकर प्रवेशकर और देखकर) । साधु कुन्तिभोज ! साधु ! इस भवन से स्वर्ग उपहसित हो रहा है । क्योंकि—

रत्नमय शिला पर हंस सो रहे हैं, यहाँ की बालुका वैदूर्य और मोती से बनी हैं । खम्भे मूंगा के बने हैं । अधिक क्या कहा जाय मणियों के प्रकाश से दीप प्रकाश तिरोहित हो गया है ॥ १६ ॥

अब उग्रवेष की क्या आवश्यकता है (चोर के वेप को छोड़कर कछोटा को छोड़ता है) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—को णु खु वुत्तन्तो भट्टिदारअस्स। भट्टिदारिआ वि अवत्थादुल्लहं णिद्दं लभदि अज्ज उ मम पिओ आअच्छदि त्ति सुदमत्तेण एव। [को नु खलु वृत्तान्तो भर्तृदारकस्य। भर्तृदारिकाप्यवस्थादुर्लभां निद्रां लभते अद्य तु मम प्रिय आगच्छतीति श्रुतमात्रेणैव।]

अविमारकः—(श्रुत्वा सहसोपसृत्य) भवति ! अयं मे वृत्तान्तः।

नलिनिका– (विलोक्य सहर्षम्) साअदं भट्टिदारअस्स। [स्वागतं भर्तृदारकस्य।]

अविमारकः—(दृष्ट्वा सानन्दम्) इयमियं सा। यत्र मम

दृष्टिर्न तृप्यति परिष्वजतीव साङ्गं
बुद्धिस्त्वरां व्रजति बोधयतीव सुप्ताम्।

इह विरचितरूपाः स्तम्भकाश्च प्रवालैः
मणिरुचिभिरपीह क्षीणभासः प्रदीपाः ॥ १६ ॥

अन्वयः—दृष्टिः न तृप्यति सा अङ्गम् परिष्वजति इव बुद्धिः त्वरां व्रजति सुप्ताम् बोधयति इव रागः अभिचोदयति अङ्गम् च सादयति इव अन्तरात्मा प्रसीदति विमुह्यति च।

व्याख्या—दृष्टिर्नेति–दृष्टिः = विलोचनम्, न तृप्यति = न सन्तुष्यति, सा = दृष्टिः, अङ्गम् = प्रियतमावयवान् परिष्वजति = आलिङ्गतीव बुद्धिः = मतिः, त्वराम् = शीघ्रताम्, व्रजति = गच्छति, सुप्ताम्=निद्रिताम्, बोधयतीव=

नलिनिका—राजकुमार का क्या समाचार है, प्रियतम के आने का समाचार सुनकर आज राजकुमारी विरहावस्था में दुर्लभ गाढ़ी नींद सो रही है।

अविमारक—(सुनकर सहसा समीप जाकर) यह हमारा समाचार है।

नलिनिका—(देखकर सहर्ष) राजकुमार का स्वागत है।

अविमारक—(देखकर सानन्द) यह वही है जिसमें—

मेरी आँखें तृप्त नहीं हो रही हैं, मानों अङ्गों का आलिङ्गन कर रही हैं, बुद्धि जल्दी कर रही है मानों सोयी को जगा रही है, अनुराग प्रेरित कर रहा है अङ्ग सन्न हो रही हैं, हर्ष से आत्मा प्रसन्न भी हो रही है और मुग्ध भी हो रही है ॥ १७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रागोऽभिचोदयति सादयतीव चाङ्गं
हर्षात् प्रसीदति विमुह्यति चान्तरात्मा ॥ १७ ॥

नलिनिका—(आत्मगतम्) एसो खु भअवं कामदेवो ओघो विअ उभअपक्खं पीडेइ । (प्रकाशम्) भट्टिदारअ ! अलङ्करीअदु सअणअलं [एष खलु भगवान् कामदेव ओघ इवोभयपक्षं पीडयति । भर्तृदारक ! अलंक्रियतां शयनतलम् ।]

अविमारकः—बाढम् । (उपविशति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! किं ओबोधेमि भट्टिदारिअं । [भर्तृदारक ! किमवबोधयामि भर्तृदारिकाम् ।]

अविमारकः—भद्रे ! अलमलं बालचापलेन । पश्य,

अहं द्विनेत्रो न सहस्रनेत्रो
मतिश्च मूढा सुचिराभिलाषात् ।

जागरयतीव, रागः = स्नेहातिशयः, अभिचोदयति = प्रेरयति, अङ्गम् = सकलावयवम्, सादयतीव = पीडयतीव, अन्तरात्मा च = हृदयश्च, प्रसीदति = प्रसन्नताम्–याति, मुह्यति च = मोहम् = अधिगच्छति च ॥ १७ ॥

भावः—अतृप्ते प्रेयस्याः स्वजत इव नेत्रे मम तनुम्
प्रसुप्तां जागर्यै त्वरयति च बुद्धिः प्रियतमाम् ।
नुदत्येष स्नेहः सकलतनुसादश्च कुरुते
प्रसीदत्यानन्दादपि च हृदयं मुह्यतितराम् ॥ १७ ॥

अन्वयः—अहम् द्विनेत्रः सहस्रनेत्रः न, सुचिराभिलाषात् मतिः च मूढा अद्य कामार्णवस्य दृष्टपारम् मे अक्षियुग्मम् सुखम् चेक्रीड्यताम् ॥ १८ ॥

नलिनिका—(स्वगत) यह भगवान् कामदेव जलराशि की तरह दोनों तटों को पीडित कर रहे हैं, (प्रकाश) राजकुमार इस शयन-तल को अलंकृत करें ।

अविमारक—अच्छी बात है (बैठता है) ।

नलिनिका—भर्तृदारक ! क्या राजकुमारी को जगा दूं ।

अविमारक—अरी बालसुलभ चपलता नहीं करो देखो—

मेरे दो ही नेत्र हैं, मैं सहस्रनेत्र नहीं हूँ, बहुत दिनों की प्रतीक्षा से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कामार्णवस्याद्य तु दृष्टपारं
चेक्रीड्यतां मे सुखमक्षियुग्मम् ॥ १८ ॥

नलिनिका—जाणामि जाणामि भट्टिदारिअं अन्तरेण भाट्टदारअस्स परिस्समं। [जानामि जानामि भर्तृदारिकामन्तरेण भर्तृदारकस्य परिश्रमम्।]

अविमारकः—अद्य सफलो मे परिश्रमः।

कुरङ्गी—(बुद्ध्वा) हला! किं णिरणुकोसेण भणिअं। [हला! किं निरनुक्रोशेन भणितम्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए! भणिदं खु मए पुढमं। [भर्तृदारिके! भणितं खलु मया प्रथमम्]

अविमारकः—प्राप्तं खलु मया जीवितस्य फलं, येनेयमीदृशं मोहं गता।

व्याख्या—अहमिति–अहम् द्विनेत्रः = नयनद्वययुक्तः, सहस्रनेत्रः = सहस्रनेत्रयुक्तो न तेन न तुष्याम्येनां निरीक्ष्य, सुचिराभिलाषात् = चिरकाल-मनोरथेन, मतिः = बुद्धिः च मूढा = मोहं प्राप्ता अद्य = इदानीं तु, कामार्णवस्य = कामवारिधेः, दृष्टपारम् = अन्तम् दृष्टवानस्मि आलापादिकं भविष्यत्येव मे = मम, अक्षियुग्मम् नयनयुगलम्, सुखम् = यथानन्दम्, चेक्रीड्यताम् सुषमासम्भारदर्शनानन्दमनुभवतु ॥ १८ ॥

मेरी बुद्धि कुण्ठित हो रही है, आज मैं काम-सागर के पार पहुँच गया हूँ, मेरी आँखें यथेच्छ क्रीड़ा कर ले ॥ १८ ॥

नलिनिका—राजकुमारी के वियोग में मैं आपके परिश्रम को जानती हूँ।

अविमारक—आज मेरा परिश्रम सार्थक हुआ।

कुरङ्गी—(जागकर) उस निर्दय ने क्या कहा।

नलिनिका—वह तो मैंने पहले कह दिया था।

अविमारक—मेरा जीवन सफल हुआ जब यह मेरे विरह में मूर्छित हो रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुरङ्गी—(आत्मगतम्) हं परिब्भट्ठम्हि । (प्रकाशम्) हला ! किं मए भणिदं । [हं परिभ्रष्टास्मि ! किं मया भणितम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! किञ्चि ण मन्तिदं । [भर्तृदारिके ! किञ्चिन्न मन्त्रितम् ।]

अविमारकः—अयमस्या मोहविस्तरेण द्वितीयो मे मोहः ।

कुरङ्गी—णलिणिए ! चिरं खु उवविट्ठा । का वेला । [नलिनिके ! चिरं खलूपविष्टा । का वेला ।]

नलिनिका—संवुत्तं अद्धरत्तं । [संवृत्तोऽर्धरात्रः ।]

कुरङ्गी—तेण हि परिस्सन्तासि । एहि परिस्सजेहि मं । [तेन हि परिश्रान्तासि । एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—(अपवार्य) अहं संवाहेमि । भट्टिदारअ ! परिस्सजेहि भट्टिदारिअं । [अहं संवाहयामि । भर्तृदारक ! परिष्वजस्व भर्तृदारिकाम् ।]

अविमारकः—(सहर्षम्) बाढम् । एवमेव त्वमपि प्रियशतानि शृणु ।

भावः—नेयं द्विनेत्रेण समग्रदृश्या चिरप्रतीक्षे मतिरस्ति मूढा ।
सुदृष्टपारो मदनाब्धिरद्य मन्नेत्रयुग्मं रमतां तदत्र ॥ १८ ॥

कुरङ्गी—(आत्मगत) मैंने भूल की (प्रकाश में) सखि मैंने क्या कहा ?

नलिनिका—आपने कुछ नहीं कहा ।

अविमारक—इसके मोह के बढ़ने से मेरा दूसरे तरह का मोह हो रहा है ।

कुरङ्गी—नलिनिके तुम बड़ी देर से बैठी हो, क्या समय हुआ होगा ।

नलिनिका—आधी रात हो रही है ।

कुरङ्गी—मैं थक गयी हूँ आओ हमसे लिपट जाओ ।

नलिनिका—(छिपकर) मैं पैर दबाती हूँ राजकुमार ! आप कुमार से लिपट जायँ ।

अविमारक—(सहर्ष) अच्छा इसी तरह प्रिय कथायें तुम को भी सुनने को मिला करें ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुरङ्गी—अलं अदिसिणेहेण। एहि दाव। [अलमतिस्नेहेन। एहि तावत्।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि। [भर्तृदारिके ! इयमस्मि।]

कुरङ्गी—(बलादाकृष्याविमारकमालिङ्गति) हं को दाणिं मं संवाहेदि। [हं क इदानीं मां संवाहयति।]

नलिनिका—(कर्णे) एवं विअ। [एवमिव।]

कुरङ्गी—(ससम्भ्रमम्) हा हीणं चारित्तं। भीदम्हि। [हा हीनं चारित्रम्। भीतास्मि।]

अविमारकः—

न त्वं प्रिये ! मम नवासि मनोभियोगात्
किं कम्पसे पवनवेगहता लतेव।
भद्रे ! भयं त्यज कुरुष्व मयि प्रसादं
किं वा प्रलप्य बहुधा शरणागतोऽस्मि ॥ १९ ॥

अन्वयः—प्रिये ! त्वम् मनोभियोगात् मम नवा न असि, पवनवेगहता लता इव किम् वेपसे, भद्रे ! भयम् त्यज। मयि प्रसादम् कुरुष्व। बहुधा प्रलप्य किम् ? अहम् तव शरणागतः अस्मि।

व्याख्या—न त्वमिति—हे प्रिये ! त्वं मनोभियोगात्=मानसिकसमागमेन, मम नवा = अनभिज्ञा नासि = न वर्तसे, पवनवेगहता=वायुरवान्दोलिता लता इव = वल्लीव, किम्=कथम्, कम्पसे = कम्पमनुभवसि, अपूर्वभावात्तव कम्पो

कुरङ्गी—अधिक स्नेह की आवश्यकता नहीं शीघ्र आओ।

नलिनिका—राजकुमारी यहीं तो हूँ।

कुरङ्गी—(बलपूर्वक अविमार का आलिङ्गन करती है) इस समय मेरा पैर कौन दबा रहा है।

नलिनिका—(कान में) यह बात है।

कुरङ्गी—हाय मेरा चरित्र नष्ट हो गया मैं डरती हूँ।

अविमारक—हे प्रिये, चिरानुराग के कारण तुम मेरे लिये नयी नहीं हो, क्यों वायु प्रेरित लता की तरह काँप रही हो, भद्रे ! भय को छोड़ो मुझ पर प्रसन्न हो विशेष क्या कहूँ मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(कुरङ्गी सलज्जं नलिनिकां विलोकयति)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि । भट्टिदारिआ भणादि। उट्ठेहि किल । [भर्तृदारक ! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । भर्तृदारिका भणति । उत्तिष्ठ किल ।]

अविमारकः—वाढम् । (उत्तिष्ठति)

(प्रविश्य)

धात्री—जेदु भट्टिदारओ । [जयतु भर्तृदारकः ।]

अविमारकः—कथं भवती ।

धात्री—णलिणिए ! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। भट्टिदारिअं भट्टिदारअं च तहिं एव पवेसेहि । [नलिनिके ! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम् । भर्तृदारिकां भर्तृदारकं च तत्रैव प्रवेशय ।]

न युक्तः, भद्रे ! भयम् = भीतिम्, त्यज = जहीहि, मयि = प्रपन्ने, प्रसादम् = दयाम्, कुरु = विधेहि, बहुधा = अनेकधा, प्रलप्य = प्रलापं कृत्वा, किंवा = किं प्रयोजनम्, अहम् तव शरणागतोऽस्मि कृपाकाङ्क्षी अतो भीतिं त्यजेत्यर्थः ।। १९ ।।

भावः—मनोभिसङ्गान्न नवा प्रिये मे
किं वेपसे वातहता लतेव ।
त्यक्त्वा भयं भामिनि मे प्रसीद
ब्रुवे किमन्यच्छरणागतोऽस्मि ।। १९ ।।

(कुरङ्गी लज्जा से नलिनिका को देखती हैं)

नलिनिका—राजकुमार ! उठो-उठो । राजकुमारी कहती है उठिये ।

अविमारक—अच्छा (उठता है) ।

(प्रवेश कर)

धात्री—जय हो राजकुमार की ।

अविमारक—क्या आप आ गयीं ।

धात्री—नलिनिके ! भीतर आसन बिछा दिया है राजकुमार तथा राजकुमारी को वहीं पहुँचा दो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—तह। [तथा।]

(निष्क्रान्ता धात्री)

नलिनिका—भट्टिदारअ ! अब्भन्तरमण्डवे खु रइदं सअणं। तहि एव पविसदु भट्टिदारिआए सह। [भर्तृदारक ! अभ्यन्तरमण्डपे खलु रचितं शयनम्। तत्रैव प्रविशतु भर्तृदारिकया सह।]

अविमारकः—त्वमप्येवं प्रियशतानि शृणु।

(हस्तेन तस्या हस्तं गृहीत्वोत्तिष्ठति।)

नलिनिका—एदु एदु भट्टिदारओ। [एत्वेतु भर्तृदारकः।]

अविमारकः—अयमहमागच्छामि। (उभौ परिक्रामतः)

अविमारकः—(सहर्षम्) अनृणोऽस्मि यौवनस्य। कुतः,

नेत्रे बाष्पपरिप्लुते करधृतौ व्यावल्गमानौ स्तनौ
श्रोणी चाधिकभारिका न विशदौ पादौ ह्रिया स्यन्दिनौ।

अन्वयः—नेत्रे वाष्पपरिप्लुते करधृतौ स्तनौ व्यावल्गमानौ, श्रोणी च अधिकभारिका ह्रिया स्यन्दिनौ पादौ न विशदौ एतत् सप्तपदप्रमाणम् इह भोः योजना सम्पाद्यते यदि एषा क्षणदा युगशतं भवेत् मत् अन्यः कः धन्यः।

व्याख्या—नेत्रे इति–नेत्रे = प्रियतमानयने वाष्पपरिप्लुते = आनन्दाश्रुपरिगते करधृतौ = हस्तगृहीतौ, स्तनौ = कुचौ, व्यावल्गमानौ = चलन्तौ,

---

नलिनिका—अच्छा (धात्री का प्रस्थान)।

नलिनिका—राजकुमार, मण्डप में भीतर बिछावन् लगा है आप राजकुमारी के साथ वहीं चलें।

अविमारक—तुम भी इसी प्रकार प्रिय वचन सुनो। (हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उठता है)।

नलिनिका—आईये राजकुमार।

अविमारक—आ रहा हूँ। (दोनों जाते हैं)।

आज मैंने जवानी का ऋण चुका दिया हूँ। क्योंकि—

ये मेरी प्रिया की आँखें आनन्दाश्रु से भरी हैं, हाथ द्वारा पकड़े गये स्तन सात्विक भाव से काँप रहे हैं, श्रोणी अधिक भारवती है, चरण स्वेद से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतत् सप्तपदप्रमाणमिह भोः ! सम्पाद्यते योजना
यद्येषा क्षणदा भवेद् युगशतं धन्यो मदन्यः कुतः ॥ २० ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

तृतीयोऽङ्कः

श्रोणी च = जघनाभोगः, अधिकभारिका = समधिकभारवती, ह्रिया=व्रीडया, स्यन्दिनौ = प्रस्विन्नौ, पादौ = चरणौ न विशदौ = स्खलितौ एतत् सप्तपदीप्रमाणम् = विवाहसमयविहिता सप्तपदीपरिक्रिया, इह भो = अत्र भोः योजना सम्पाद्यते मनश्चिन्तितम् क्रियते, यदि–चेत् एषा = इयम् क्षणदा युगशतं = युगशतकालीना भवेत् मदन्यः = मद्व्यतिरिक्तः कुतः = केन प्रकारेण धन्यः = कृतार्थो भवेत् । सकलसात्त्विकभावपरिपूर्णेयमद्य प्रथमसमागमापदीयं रात्रिर्युगसमसमया यदि स्यात् तदा मत्सदृशः कोऽन्यः सुखी समभविष्यत् ।

भावः—सास्रे दृशौ करधृतौ सुकुचौ स्फुरन्तौ
श्रोणीभरालसगती चरणौ सुमुन्नौ ।
एषा हि सप्तपदिका मनसोऽनुगं मे
रात्रिर्युगं यदि भवेन्न मदन्यधन्यः ॥ २० ॥

गीले हो रहे हैं, यही हम दोनों की सप्तपदी है, यदि रात युग के समान बड़ी हो तो मेरे समान और धन्य सुखी और कौन है ॥ २० ॥

(सब जाते हैं)

तृतीय अङ्क समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चाङ्गेरिकाहस्ता मागधिका)

मागधिका—अहो परिजणस्स पमादो। आसुय्योदअं पि ण किदा पासादरअणा। ण सुणीअदि गोट्ठीजणकोलाहलो। किं णु खु भवे। आ, रत्तिजागरदाए पभादप्पसुत्ता भवे। जाव भट्टिदारिअं ओबोधेमि। (परिक्रामति) [अहो परिजनस्य प्रमादः। आसूर्योदयमपि न कृता प्रासादरचना। न श्रूयते गोष्ठीजनकोलाहलः। किं नु खलु भवेत्। आ, रात्रिजागरतया प्रभातप्रसुप्ता भवेत्। यावद् भर्तृदारिकामवबोधयामि।]

(ततः प्रविशति विलासिनी बीजनेन)

विलासिनी—मागधिए ! चिट्ठ चिट्ठ। [मागधिके ! तिष्ठ तिष्ठ !]

मागधिका—हला ! मा वारेहि। भट्टिदारिआए सुमणावण्णअं मए आणीअदि। [हला ! मा वारय। भर्तृदारिकायै सुमनोवर्णकं मया नीयते।]

चाङ्गेरिकाहस्ता = पुष्पधारणार्हं पात्रविशेषं करे धृत्वा। परिजनस्य = भृत्यपरिचारकगणस्य, प्रमादः = असावधानता, प्रासादरचना = प्रासादपरिक्रिया, प्रभातसुप्ता = उषसि निद्रिता, अवबोधयामि = उन्निद्रयामि सुमनोवर्णकम् = पुष्पमालाम्, अविनीते = अनुचितव्यवहारिणि; सतता-

---

(हाथ में चाङेरी लिये मागधिका का प्रवेश)

मागधिका—परिजनों की असावधानी देखो। सूर्य्योदय हो जाने पर भी प्रासाद को अलंकृत नहीं किया है, गोष्ठीजनों का कोलाहल भी नहीं सुना जाता है। क्या बात है ? ओ रातभर जगने के कारण सुबह नींद लग गयी होगी, तब तक राजकुमारी को जगाऊँ।

(इसके बाद हाथ में पंखा लिये विलासिनी का प्रवेश)

विलासिनी—मागधिके ठहर ठहर।

मागधिका—सखी रोको मत। मैं राजकुमारी के लिये पुष्पमाला लाई हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विलासिनी—किं भट्टिदारिआए सुमणावण्णएण वा अलङ्कारेण वा। [किं भर्तृदारिकायाः सुमनोवर्णकेन वालङ्कारेण वा।]

मागधिका—अविणीदे! मा अमङ्गलं भणाहि। सददालङ्किदा भट्टिदारिआ होदु। [अविनीते! मा अमङ्गलं भण। सततालङ्कृता भर्तृदारिका भवतु।]

विलासिनी—ण खु। आइदी एव भट्टिदारिआए अलङ्कारो त्ति भणामि। [न खलु। आकृतिरेव भर्तृदारिकाया अलङ्कार इति भणामि।]

मागधिका—उम्मत्तिए! णणु पुष्फं वि वासीअदि। [उन्मत्तिके! ननु पुष्पमपि वास्यते।]

विलासिनी—सदिसं एदं। सभावरमणीआणि मण्डिदाणि अदिरमणीआदि होन्ति। [सदृशमेतत्। स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति!]

मागधिका—हला! सुजोजिदो खु भट्टिदारिआए रूवाणुरूवो भत्ता। [हला! सुयोजितः खलु भर्तृदारिकाया रूपानुरूपो भर्ता।]

लङ्कृता = निरन्तरभूषिता, आकृतिः = स्वरूपम्, निसर्गसुन्दरी नाहार्यगुणमपेक्षते, पुष्पमपि वास्यते = तथा प्रकृतिसुन्दर्यपि भूषणेन समुत्कर्षमापाद्यते। अनुरूपः = रूपस्य योग्यः, शरीरधारी कामः = राजकुमाररूपः काम एव, सास्रा = साश्रुनयना।

विलासिनी—राजकुमारी को पुष्पमाला अथवा अलङ्कार की क्या आवश्यकता है।

मागधिका—अरी अविनीते अमङ्गल बात मत कह।

विलासिनी—नहीं नहीं मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि राजकुमारी का अलङ्कार उसकी आकृति ही है।

मागधिका—अरी, पगली पुष्प भी वासा जाता है।

विलासिनी—तो ठीक कहा, जो स्वभावतः सुन्दर होता है वह अलङ्कार से और अधिक सुन्दर हो जाता है।

मागधिका—राजकुमारी को अपने रूप के अनुकूल पति मिल गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विलासिनी—अलं पक्खवादेण भट्टिदारअस्स समीवे भट्टिदारिआ पदुमिणिआ विअ दिस्सदि। [अलं पक्षपातेन। भर्तृदारकस्य समीपे भर्तृदारिका पद्मिनीव दृश्यते।]

मागधिका—सुट्ठु भणादि। अहं वि चिन्तेमि—ससरीरो भअवं कामदेवो ईदिसो भवेत्ति। [सुष्ठु भणति। अहमपि चिन्तयामि—सशरीरो भगवान् कामदेव ईदृशो भवेदिति।]

विलासिनी—तह एव भट्टिदारिआ भट्टिदारअं विणा खणमत्तं वि ण रमदि। [तथैव भर्तृदारिका भर्तृदारकं विना क्षणमात्रमपि न रमते।]

(ततः प्रविशति सास्रा नलिनिका)

नलिनिका—(सशोकम्) सच्चो खु लोअप्पवादो—बहुविग्घाणि सुहाणि त्ति। एसो खु संवच्छरो अदिक्कन्दो भट्टिदारिआए अविच्छिण्णसुहसम्भोएण रदिं करिअ। अम्हाअं पुण गोट्ठीजणस्स उत्तरकुरुवासो संवुत्तो। अज्ज उअ महाराएण विदिदो एसो खु वुत्तन्तो त्ति

बहुविघ्नानि = अनेकविघ्नयुक्तानि, अतिक्रान्तः = व्यतीतः अविच्छिन्नसुखसम्भोगेन = निरन्तरसुखानुभवेन। उत्तरकुरुवासः = प्रसन्नाया राजकुमार्य्या गोष्ठी सहासनालाभेन दीर्घप्रवास इत्यर्थः, एष वृत्तान्तः = कुरङ्ग्या राजपुत्रेण सह मिलनसमाचारः, सीदति = दुःखीभवति। लज्जाभयमदनैः-लोकैरिदं

विलासिनी—पक्षपात करना ठीक नहीं है। राजकुमार के सामने राजकुमारी कमलिनी के समान शोभती है।

मागधिका—ठीक कहती हो, मैं भी सोचती हूँ, कामदेव यदि शरीर धारण कर लें तो राजकुमार के सदृश प्रतीत हों।

विलासिनी—राजकुमारियाँ राजकुमार के विना क्षण भर भी प्रसन्न नहीं दिखाई देती है।

(रोती हुई नलिनिका प्रवेश)

नलिनिका—(शोक के साथ) लोग ठीक ही कहते हैं सुख में बड़े विघ्न होते हैं एक वर्ष हुआ राजकुमारी निरन्तर सुखोपभोग करती ही है। हम लोग इस बीच प्रवासित सी हो गयीं थी। आज राजमहल को इस बात की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुणिअ सीददि विअ सरीरं। भट्टिदारिआ च लज्जाभअमअणेहि अभितालिअमाणा सन्दावेण मुद्धा अवअदचेदणा विअ संवुत्ता। एसो खु पासादो णिव्वाविददीवो विअ मे पडिभादि। तेण भट्टिदारएण विरहिदाए मम एक्कं पि हिअअप्पीदिकरं ण जादं। भट्टिदारओ अविग्घेण णिग्गदो त्ति सुणिअ अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं। सम्पदि सुरुद्धं कण्णाउरं। (परिक्रम्य) (अम्मो सहीओ। हला माअधिए! किं एदं। [सत्यः खलु लोकप्रवादः-बहुविघ्नानि सुखानीति। एष खलु संवत्सरोऽतिक्रान्तो भर्तृदारिकाया अविच्छिन्नसुखसम्भोगेन रतिं कृत्वा। अस्माकं पुनर्गोष्ठीजनस्योत्तरकुरुवासः संवृत्तः। अद्य पुनर्महाराजेन विदित एष खलु वृत्तान्त इति श्रुत्वा सीदतीव शरीरम्। भर्तृदारिका च लज्जाभयमदनैरभिताड्यमाना सन्तापेन मुग्धापगतचेतनेव संवृत्ता। एष खलु प्रासादो निर्वापितदीप इव मे प्रतिभाति। तेन भर्तृदारकेण विरहिताया ममैकमपि हृदयप्रीतिकरं न जातम्। भर्तृदारकोऽविघ्नेन निर्गत इति श्रुत्वाद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। सम्प्रति सुरुद्ध कन्यापुरम्। अम्मो सख्यौ। हला मागधिके! किमेतत्।]

मागधिका—हला! किं पुच्छसि। णं मण्डणवेला भट्टिदारिआए। [हला! किं पृच्छसि। ननु मण्डनवेला भर्तृदारिकायाः]

रहस्यं ज्ञातमिति लज्जा, पितृकोपाद् भयम्, राजकुमारेण पुनर्मेलनाभावात् मदनः। अवगतचेतना = मूर्च्छिता, विरहितायाः = वियुक्तायाः। निर्गतः = कन्यान्तःपुराद् बहिर्गतः। प्रह्लादितम् = प्रसन्नम् सुरुद्धम् = सुगोपितम्।

खबर लग गई है। यह सुनकर हमारे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं। राजकुमारी तो आज लाजभय और काम पीड़ित हो गई है और सन्ताप से बेहोश हो रही है। हमको ऐसा लग रहा है मानों इस महल का दीप बुझ गया है। राजकुमार के वियोग से हमको कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है, राजकुमार सकुल यहाँ से निकल गये, यह जानकर थोड़ी खुशी हो रही है, इस समय कन्यान्तःपुर में कड़ा पहरा है। अरी मागधिके! यह क्या है।

मागधिका—क्या पूछती हो राजकुमारी अलङ्करण का यही समय है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—अदिक्कन्दो उच्छवो। (रोदिति) [अतिक्रान्त उत्सवः।]

उभे—सिविणं विअ किं एदं। भणादि समाणा भवामो। [स्वप्न इव किमेतत्। भण समाना भवामः।]

नलिनिका—सव्वहा गओ भट्टिदारओ। [सर्वथा गतो भर्तृदारकः।]

उभे—हं।

नलिनिका—अहं पि भट्टिदारिआए दुक्खं पेक्खिदुं असहन्ती इह आअदम्हि। [अहमपि भर्तृदारिकाया दुःखं प्रेक्षितुमसहमानेहागतास्मि।]

मागधिका—ण सक्कं खु भट्टिदारिआए अवत्थादंसणं। तह वि भट्टिदारिअं अस्सासइस्सामो। [न शक्यं खलु भर्तृदारिकाया अवस्थादर्शनम्। तथापि भर्तृदारिकामाश्वासयिष्यामः।]

उभे—एवं करेम्ह [एवं कुर्मः।]

(सर्वा निष्क्रान्ताः)

प्रवेशकः।

मण्डनवेला = अलङ्कारकालः, समानाः = समदुःखाः, असहमाना = अक्षमा। अवस्थादर्शनम् = दुःखावस्थावलोकनम्।

नलिनिका—उत्सव के दिन तो बीत गये है (रोती है)।

दोनों—स्वप्न के समान यह क्या बात है, अहो हम सब एक सी हो जायें।

मलिनिका—राजकुमार तो चले गये।

दोनों—हाँ।

नलिनिका—मैं भी राजकुमारी का दुःख न देख सकी, अतः वहाँ से चली आई हूँ।

मागधिका—राजकुमारी का दुःख नहीं देखा जाता है। फिर भी राजकुमारी को आश्वासित करूँगी।

दोनों—ऐसा करते हैं।

(सभी जाती हैं)

प्रवेशक समाप्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ततः प्रविशत्यविमारकः)

अविमारकः—(सशोकम्)

कन्यापुरात् कथमपीह विनिर्गतं मे
भाग्यावशेषमवलम्ब्य शरीरमात्रम् ।
अद्यापि तन्मम मनो न तु मामुपैति
नावेक्षते मयि तथा प्रिययावरुद्धम् ॥ १ ॥

का नु खलु भवेदवस्था कुरङ्ग्याः ।
ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्भीता च राज्ञा दृढसन्निरुद्धा ।

अन्वयः—भाग्यावशेषम् अवलम्ब्य इह मे शरीरमात्रम् कथमपि कन्यापुरात् विनिर्गतम् तु अद्यापि मम तत् मनः माम् न अभ्युपैति तथा प्रियया अवरुद्धम् मयि न अवेक्षते ।

व्याख्या—कन्यापुरादिति—भाग्यावशेषात् अवशिष्टजीवनादृष्टात्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, इह = अस्मिन् काले मे = मम, शरीरमात्रम् = केवलशरीरम् कथमपि = केनापि प्रकारेण, कन्यापुरात् = कन्यावासस्थानात्, विनिर्गतम् = वहिरायातम्, तु = किन्तु अद्यापि = इदानीं यावत्, मम तन्मनः = हृदयम् प्रियया = कुरङ्ग्या, तथा = तेन प्रकारेण अवरुद्धम् = निगृह्य स्थापितम् यत् मयि = मदुपरि, नावेक्षते = अपेक्षां न करोति ॥ १ ॥

भावः—कन्यापुराच्छरीरं मे कथमप्यत्र निर्गतम् ।
तया गृहीतं तु मनो नाद्याप्यायाति मामहो ॥ १ ॥

अन्वयः—प्रेष्यजनप्रवादैः ह्रीता भवेत् राज्ञा दृढसन्निरुद्धा च भीता भवेत्, माम् अनवेक्षमाणा वाष्पाविला रात्रिषु मोहम् व्रजेत् किम् करिष्ये ।

(अविमारक का प्रवेश)

अविमारक—(शोक के साथ) भाग्यशेष के सहारे केवल मेरा शरीर कन्यापुर से यहाँ निकल आया है मेरा मन तो आज भी नहीं आ रहा है उस मेरे मन को प्रियतमा ने रोके रखा है । वह मेरी ओर नहीं देखता है ॥१॥

कुरङ्गी की क्या हालत होगी ।

वह परिजनों के अपवाद से लज्जित और राजा के द्वारा कड़ाई के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बाष्पाविला मामनवेक्षमाणा मोहं व्रजेद् रात्रिषु किं करिष्ये ॥ २ ॥

हन्त दृष्टः प्रतीकारः। तथापि तावदस्मदपेक्षया नापेक्षित आत्मा। तस्मादहमपि तावत् तदर्थे प्राणान् परित्यजामि। (परिक्रम्य) कतिपयदिवसप्रोषितोऽहमस्मि। अद्य तु मानसं शारीरं च दुःखमसह्यमिव मे प्रतिभाति। इह हि,

निर्व्याजं परिचयवर्धमानरागां
रूपाढ्यामभिनवयौवनां मनोज्ञाम्।

व्याख्या—ह्रीतेति-प्रेष्यजनप्रवादैः = परिजननिन्दावचनैः ह्रीता = लज्जिता भवेत् = स्यात्, राज्ञा = कुन्तिभोजेन, दृढसन्निरुद्धा = कठोरे कारागारे स्थापिता भीता = भयम् प्राप्ता भवेत्, माम् = प्रियम्—अनवेक्षमाणा = अपश्यन्ती वाष्पाविला = अश्रुकलुषिता, रात्रिषु = निशासु, मोहम् = मूर्छाम् व्रजेत् किम् करिष्ये = अत्र विषये किमपि कर्तव्यं न निश्चिनोमि ॥ २ ॥

भावः—ह्रीता परिजनवादैः राज्ञा रुद्धा च सा भवेद् भीता।
वाष्पाविला विना माम् रात्रौ मुह्येत् ततोऽत्र किं कुर्य्याम् ॥२॥

दृष्टः = ज्ञातः, प्रतीकारः = उपायः, तया = कुरङ्ग्या, मदपेक्षया = ममानुरागमूढया, आत्मा नापेक्षितः = स्वचिन्ता न कृता, कतिपयदिवसप्रोषितोऽहमस्मि = कियद्भिरहोभिर्विप्रयुक्तोऽस्मि।

अन्वयः—निर्व्याजम् परिचयवर्धमानरागाम् रूपाढ्याम् अभिनवयौवनाम् मनोरमाम् ताम् त्यक्त्वा क्षणम् अपि जीवन् अहम् वञ्चितः अस्मि इह अन्यः कष्टः कः कृतघ्नभावः भवेत्।

साथ निरुद्ध होकर डरी हुई होगी, मुझे न देखती हुई रो रही होगी, रातों में मूच्छित हो जाती होगी—क्या किया जाय ॥ २ ॥

अहा! उपाय ज्ञात हो गया, उसने मेरे लिये प्राणों की चिन्ता नहीं की। अतः मैं भी उसके लिये प्राणों को त्याग दूंगा। (चलकर) कुछ दिनों से मैं वियुक्त हूँ आज मानसिक तथा शारीरिक क्लेश असह्य हो रहा है। यहाँ—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्यक्त्वा तां क्षणमपि वञ्चितोऽस्मि जीवन्
कष्टोऽन्यः क इह भवेत् कृतघ्नभावः ॥ ३ ॥

सम्प्रति हि मदनेनान्तर्दह्यमानस्य क्षारीभवितुमारब्धो भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः। (सर्वतो विलोक्य) अहो प्रतिभयता निदाघस्य। सम्प्रति हि,

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।

व्याख्या—निर्व्याजमिति—निर्व्याजम् = निश्छलम्, परिचयमात्रेण वर्धमानो रागो यस्याः सा तथोक्ताम् = सकृद्दर्शनमात्रोपचीयमानानुरागाम् रूपाढ्याम् = परमसुन्दरीम्, अभिनवयौवनाम् = आरब्धयौवनावस्थाम् मनोरमाम् = मनोज्ञाम् ताम् = पूर्वानुभूताम्, त्यक्त्वा = विहाय क्षणमपि स्तोकसमयमपि, जीवन् = प्राणन् अहम् वञ्चितोऽस्मि = प्रतारितोऽस्मि। इह = अत्र, कष्टः = क्लेशदः, अन्यः = अपरः कः कृतघ्नभावः = कृतघ्नता भवेत् ॥ ३ ॥

भावः—निरुपधि परिचयरक्तां रूपाढ्यामभिनवयौवनां हृद्याम्।
हित्वा प्राणन् कोऽन्यो मद्व्यतिरिक्तः कृतघ्नः स्यात् ॥ ३ ॥

मदनेनान्तर्दह्यमानस्य = कामेन सन्तप्तहृदयस्य, क्षारीभवितुमारब्धः = अन्तस्तप्तस्य बहिरपि तापजनकत्वात्; प्रतिभयता = भयानकता।

अन्वयः—भास्करकरैः आपीतसाराः अत्युष्णा मही ज्वरिता इव, (लक्ष्यते) दवाग्न्याश्रयात् प्रमुषितच्छाया पादपा यक्ष्मार्ता इव, उच्छ्रित-गुहाव्यात्ताननाः पर्वताः अवशा विक्रोशन्ति इव रविपाकनष्टहृदयः अयम् लोकः मूर्च्छाम् संयाति इव।

निश्छल भाव से परिचय से बढ़े अनुराग वाली, सुन्दरी, नवयौवना तथा प्रियतमा उस कुरङ्गी को छोड़कर मैं यदि क्षण भर भी जीवित हूँ, तो इस से बड़ी कौन कृतघ्नता हो सकती है ॥ ३ ॥

इस समय काम से जलते हुये मेरे शरीर पर सूर्य्य नमक छिड़क रहे हैं। (चारों तरफ देखकर) अहा ग्रीष्म-काल कितना भयङ्कर है। इस समय—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः पर्वता
लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥ ४ ॥

किमिदानीं करिष्ये । न चास्म्यहं गन्तुं समर्थः । कुतः,

लिम्पन्ति रूक्षपवनाः सिकताग्निचूर्णैः
संस्वेदयन्ति च नगाः परुषैः पलाशैः ।

व्याख्या—अत्युष्णा इति—भास्करकरैः = सूर्य्यकिरणैः, आपीतसारा = संशुष्कजला, अत्युष्णा = अतितप्ता, मही = धरित्री, ज्वरिता = संजातज्वराः इव लक्ष्यते, दवाग्न्याश्रयात् = वनदहनसम्पर्कात्, प्रमुषितच्छाया = पत्र-नाशात् छायारहिताः, पादपाः = वृक्षाः, यक्ष्मार्ताः = राजयक्ष्मरोगपीडिताः इव संलक्ष्यन्ते, उच्छ्रितगुहाव्यात्ताननाः = व्यात्तोन्नतगुहामुखाः, पर्वताः = शैलाः, अवशाः = अस्वाधीनाः, व्याक्रोशन्ति = आक्रन्दन्तीव, रविपाकनष्ट-हृदयः = सूर्य्यकिरणसन्तापदग्धहृदयः अयम् = एषः लोकः = संसारः, मूर्च्छामिव = मोहमिव, संयाति = सम्प्राप्नोति ॥ ४ ॥

भावः—ज्वरार्तेवेयं भू रविकिरणदग्धा गतरसा
क्षयग्रस्ता वृक्षा दवदहनदग्धा गतदलाः ।
गुहास्यं व्यादाय ह्यवश इव रोदन्ति गिरयो
रवेरस्त्रैस्ततः सकल इव संमूर्च्छंरिजनः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पवनाः सिकताग्निचूर्णैः लिम्पन्ति, परुषैः पलाशैः नगाः च संस्वेदयन्ति, भास्वान् दावैः द्रवीकृततनुः स्रवति इव, लोकः आदित्यपाक-चलितः फलति इव ।

सूर्य्य के किरणों से नीरस हो गयी पृथिवी ज्वर पीडित-सी तप्त दिखाई दे रही है, दवाग्नि लगने से वृक्ष छायाहीन यक्ष्मा से पीडित के समान दीखते हैं, गुहा रूप मुख को फैलाये सभी पर्वत अवश होकर मानो चिल्ला रहे हैं, यह संसार सूर्य्य की किरणों से दग्ध हृदय होकर मूर्च्छित सा हो रहा है ॥ ४ ॥

अब मैं क्या करूँ चल भी नहीं सकता क्योंकि—

बालुका रूपी अग्निकणों से यह वायु सब जगह व्याप्त कर रहा है, ये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दावैर्द्रवीकृततनुः स्रवतीव भास्वा-
नादित्यपाकचलितः फलतीव लोकः ॥ ५ ॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! देहि मे प्रतिवचनम् । (मूर्च्छां नाटयति । पुनर्निःश्वस्य ऊर्ध्वमवलोक्य) रुद्धः खलु भगवान् सूर्यः सहस्ररश्मिः । अथवा,

किमत्र चित्रं वितताः पयोदा
रुन्धन्ति सूर्यं ननु वातनीताः ।

व्याख्या—लिम्पन्तीवेति–पवनाः = वायवः, सिकताग्निचूर्णैः=मुर्मुराभ-वालुकाकणैः लिम्पन्ति = लेपमिव कुर्वन्ति, नगाः = वृक्षाः परुषैः = शुष्कत्वाद् रुक्षैः पलाशैः = पत्रैः, संस्वेदयन्ति = स्वेदं जनयन्ति भास्वान् = रविः दावैः = वनाग्निभिः, द्रवीकृततनुः = द्रुतशरीरः, स्रवति = च्यवतीव, लोकः = जनः, आदित्यपाकचलितः = सूर्य्यपाकविकलः फलति = स्फुटतीव भ्राष्ट्रयवा इव लाजीभवति ।

भावः—वालुका मुर्मुराभाः समन्तात्पतन्ति
शुष्कपत्रैः कुजाः स्वेदयन्ते जनान् ।
च्योततीयांशुमान् दाववह्निद्रुतो
लाजतां सूर्यमृष्टो जनो यात्ययम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—वातनीताः वितताः पयोदाः सूर्य्यम् रुन्धन्ति अत्र किं चित्रं ननु मे अन्तःस्थितम् कामम् यदि वारयन्ति एतत् विस्मयनीयम् भवेत् ।

व्याख्या—किमत्रेति, वातनीताः = वायुप्रापिताः, वितताः = विस्तृताः, पयोदाः=मेघाः, यदि = चेत् सूर्य्यम् = भास्करम् रुन्धन्ति = आवृण्वन्ति, अत्र=

वृक्ष कर्कश पत्रों से सभी को स्वेदित कर रहे हैं। दावाग्नि से मानो पिघल कर सूर्य्य चू रहा है। सूर्य्य के ताप से यह संसार भाड में पककर लावा जैसा हो रहा है ॥ ५ ॥

हा प्रिये ! हा सुन्दरि ! मुझे उत्तर दो (मूर्छित होता है) (पुनः होश में आकर ऊपर देखकर) भगवान् सूर्य्य छिप गये । अथवा—

हवा से लाये गये मेघ सूर्य्य को छिपा रहे हैं, इसमें आश्चर्य्य ही क्या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्तःस्थितं मे यदि वारयन्ति
काम भवेद् विस्मयनीयमेतत् ॥ ६ ॥

किमनेन जीवन्मरणेन। विसर्जयिष्याम्यात्मानम् (उत्थाय परिक्रामति) किन्नु खलु करिष्ये। भवतु दृष्टम्। अस्मिन्नारण्यतटाके विसर्जयिष्याम्यात्मानम्। धिगधर्मः खलु मे मरणमार्गः। अभिमानमोहान्महापथो विस्मृतः। अन्यथा प्रयतिष्ये। (विलोक्य) भवतु दृष्टम्। अये अदूरे दृश्यते दवाग्निः। तस्मिन् प्राणाहुतिं करिष्यामि। (उपगम्य प्रणम्य च) भगवन्! अग्ने!

इष्टं चेदेकचित्तानां यद्यग्निः साधयिष्यति।
परत्रापि च मे कान्ता सा भवेदेककीर्तनी ॥ ७ ॥

अस्मिन् विषये किम् चित्रम् न = आश्चर्यं, मे = मम, अन्तःस्थितम् = अन्तःकरणनिष्ठम् कामम् मनसिजम् यदि = चेत् वारयन्ति = आच्छादयन्ति, एतत् = इदम् विस्मयनीयम् विस्मयजनकम् भवेत् ॥ ६ ॥

भावः—वातानीतपयोदैः रोधः सूर्य्यस्य किं चित्रम्।
कामं मेऽन्तर्निष्ठं रुन्ध्यादेतद् भवेच्चित्रम् ॥ ६ ॥

जीवन्मरणेन = मरणवद्दुःखदायिना जीवनेन। विसर्जयिष्यामि = त्यक्ष्यामि, आरण्यतटाके = वन्यसरसि, मरणमार्गः = मृत्युप्रकारः, अभिमानमोहात् = देहाभिमानवशात्, महापथः = श्रेष्ठमृत्युमार्गः। अन्यथा = उपायान्तरम्, अदूरे = समीपे, प्राणाहुतिम् = प्राणहोमम्।

अन्वयः—यदि चेत् अग्निः एकचित्तानाम् इष्टम् साधयेत् (तदा) परत्र अपि सा कान्ता मे एककीर्तनी भवेत्।

है ? ये मेघ यदि मेरे हृदय में वर्तमान काम को छिपा दें तो यह आश्चर्य की बात होगी ॥ ६ ॥

इस जीवन-मरण से क्या लाभ, मैं जीवन का त्याग करूँगा। (उठकर चलता है) अच्छा क्या करूँ ? उपाय सूझ गया, इसी वन्य सरोवर में प्राण त्याग करूँगा। मेरे मरने का मार्ग अधर्मपूर्ण है, देह के अभिमान और मोह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(अग्नि प्रविश्य सकुतूहलम्) किमिदं वर्तते।

दग्धाः स्फुलिङ्गनिकरैर्निपतन्ति वृक्षा
ज्वालाश्च मे मलयचन्दनपङ्कशीताः।
अग्निर्दयां हि कुरुते मदनातुरेऽपि
पुत्रं पितेव च परिष्वजति प्रहृष्टः॥ ८॥

व्याख्या—इष्टमिति-यदि चेत् अग्निः = दहनः, एकचित्तानाम् = परस्परं प्रेमानुसक्तानाम् इष्टम् = अभिलषितम्, साधयेत् = सम्पादयेत् (तदा) परत्रापि = अन्यजन्मनि अपि सा = कुरङ्गी, कान्ता = प्रिया एककीर्त्तनी = एकानुगा भवेत् = स्यात्। इति भगवन्! अग्ने त्वया विधातव्यम्॥ ७॥

भावः—अग्निदाहप्रदग्धानां इष्टावाप्तिः श्रुता श्रुतौ।
ततो मे निश्चिता भार्य्या परत्रापि भयेद्धि सा॥ ७॥

अन्वयः—स्फुलिङ्गनिकरैः दग्धाः वृक्षाः निपतन्ति, मे ज्वाला मलयचन्दनपङ्कशीता हि अग्निः मदनातुरे अपि दयाम् कुरुते हृष्टः पिता-पुत्रम् इव (माम्) परिष्वजति।

व्याख्या—दग्धा इति-स्फुलिङ्गनिकरैः = अग्निकणसमूहैः, दग्धाः = प्लुष्टाः, वृक्षाः=पादपाः, निपतन्ति=धराशायिनो भवन्ति, मे = मह्यविमारकें, ज्वालाः = अग्निहेतवः मलयचन्दनपङ्कशीताः = पाटीरपङ्कशिशिराः (सन्ति) हि अग्निः = दहनः, मदनातुरे = कामपीडिते अपि दयाम् कुरुते = दयते, हृष्टः = प्रसन्नः पिता = जनकः, पुत्रम् = तनयमिव परिष्वजति = आलिङ्गति।

से मैंने अच्छा मार्ग भुला दिया। दूसरा प्रयास करूँगा। (देखकर) अच्छा देख लिया समीप में ही दावाग्नि है, इसीमें प्राणों का होम कर देता हूँ, (समीप जाकर प्रणाम कर) भगवन् अग्निदेव! यदि हृदय से स्नेह करने वाले का हित आप करते हैं तो जन्मान्तर में भी मेरी वही प्रिया रहे॥ ७॥

(आग में बैठकर साश्चर्य) क्या बात है।

अग्निकणों से जलकर वृक्ष धराशायी होते हैं, यह अग्नि ज्वाला मेरे शरीर में, चन्दन के पङ्क के समान शीतल प्रतीत हो रही हैं। जैसे प्रसन्न पिता पुत्र का आलिङ्गन करता है वैसे अग्नि मेरा आलिङ्गन कर रहा है॥८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोः किमतः परं विस्मयनीयम्! अग्निः खलु मां न दहति। अथवा एतदप्यस्ति कारणम्। अन्यथा प्रयतिष्ये (परिक्रम्य) एष खलु महान् पर्वतः,

असितजलदवृन्दैर्मिश्रसन्दिग्धशृङ्गो
गगनचरकुलानां विश्रमस्थानभूतः।
सुकविमतिविचित्रो मित्रसंयोगहृद्यो
नरपतिरिव नीचो दृश्यते निष्फलाढ्यः॥ ९॥

भवतु तावदस्मिञ्छैले प्राणान् परित्यजामि। मरुत्प्रपातो हि

अन्वयः—असितजलदवृन्दैः, मिश्रसन्दिग्धशृङ्गः, गगनकरकुलानाम् विश्रमस्थानभूतः सुकविमतिविचित्रः मित्रसंयोगहृद्यः निष्फलाढ्यः नीचः नरपतिः, इव दृश्यते।

व्याख्या—असितेति—असितानां जलदानां वृन्दैः = नीलनीरधरमेचकैः, मिश्राणि सन्दिग्धानि शृङ्गाणि यस्य स तथोक्तः = व्याप्तनीलमेघशयितशिखरः। गगनचरकुलानाम् = खेचरसमूहानाम्, विश्रमस्थानभूतः = विश्रामस्थानभूतः, मित्रसंयोगहृद्यः = सुहृत्समागममनोहरः, निष्फलाढ्यः = निरर्थकधनशाली, नीचः = निर्दयोऽदानी, नरपतिरिव राजेव दृश्यते = विलोक्यते। मालिनीवृत्तम्॥ ९॥

इससे बढ़कर क्या आश्चर्य हो सकता है, अग्नि मुझे न ही जला रहा है। अथवा इसका भी कारण है। दूसरा प्रयास करूँगा (चलकर) यह विशाल पर्वत है।

काले बादल इस पर चल रहे हैं, जो शिखरों से मिलकर तदाकार प्रतीत हो रहे हैं, यह पर्वत आकाशचारियों का विश्रामस्थान है, कवि बुद्धि के समान विचित्र है और मित्र के मिलन के समान मनोहर है। निष्फल धन वाला नीच राजा के समान दिखाई दे रहा है॥ ९॥

अस्तु इसी पर्वत पर प्राण-त्याग करता हूँ। पर्वत शिखर से गिर कर प्राण छोड़ना सब कामना का साधक है, चढ़ता हूँ (चढ़कर और देखकर)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वार्थसाधकः। यावदारोहामि। (आरुह्यावलोक्य) एतत् पानीयं गोत्रस्थं स्नात्वोपस्पृश्य मन्त्रं जपामि। (तथा कृत्वा जपति)

(ततः प्रविशति विद्याधरः सह प्रियया)

विद्याधरः—

प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातं पुनर्मानसे
भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।
क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता
यास्यावो मलयस्य चन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखान्॥ १०॥

मरुत्प्रपातः = पर्वतशिखरात्पतनम्, गोत्रस्थम् = पर्वतस्थम् पानीयम् = जलम्।

अन्वयः—उत्तरेषु कुरुषु प्राक् सन्ध्या गमिता पुनः मानसे स्नातम् मन्दरकन्दरान्तरतटेषु यौवनम् आमोदितम्, क्रीडार्थम् हिमवद्गुहासु लोभिता दृष्टिश्च रचिता मलयस्य चन्दननगात् मध्याह्ननिद्रासुखान् यास्यावः।

व्याख्या—प्राक् सन्ध्येति—प्राक्सन्ध्या = प्रातस्तनी सन्ध्या उत्तरकुरुषु गमिता = यापिता पुनः = भूयः मानसे = एतन्नाम्नि सरसि, स्नातम् = स्नानं कृतम्. भूयः = पुनः मन्दरकन्दरतटेषु = पर्वतविशेषकन्दरमध्ये, यौवनम् = तारुण्यम् आमोदितम् = सफलं कृतम्, क्रीडार्थम् हिमवद्गुहासु = हिमालयदरिषु संलोभिता = संजातलोभा दृष्टिः = नयनम्, रचिता = कृता, मलयस्य तन्नाम्नः पर्वतस्य मध्याह्ननिद्रासुखान् = निदाघमध्याह्ननिद्रासुखकरान् चन्दननगान् = चन्दनपर्वतान् यास्यावः = गमिष्यावः।

यह पर्वत पर जल. इसमें स्नान आचमन करके मन्त्र जप लूं, (वैसा करके मन्त्र जपता है)।

(प्रिया के साथ विद्याधर का प्रवेश)

विद्याधर—प्रातःकाल मैंने उत्तर कुरु में व्यतीत किया, पुनः मानसरोवर में स्नान किया, मन्दराचल की कन्दरा में जवानी का सुख-भोग किया, क्रीडा के लिये लुभाई आँखें हिमालय पर विचरती रही, अब हम लोग मध्याह्न काल के निद्रासुख को मलय के चन्दन पर्वत पर अनुभव करेंगे॥१०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(आकाशयानं निरूप्य) सौदामिनि ! पश्य पश्य भगवत्या वसुन्धराया दूरस्थां दर्शनीयामाकृतिम् । इह हि,

शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमा
वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलं प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् ।
सीमन्ता इव निम्नगाः सुविपुलाः सौधाश्च विन्दूपमा
दृष्टं वक्रमिवाभिभाति सकलं संक्षिप्तरूपं जगत् ॥ ११ ॥

भद्र ! अवहिता भव । शीतचन्दननिलयं मलयं प्रयास्यावः ।

अन्वयः—शैलेन्द्राः कलभोपमा जलधयः क्रीडातटाकोपमाः वृक्षाः शैवलसन्निभाः क्षितितलम् प्रच्छन्ननिम्नस्थलम्, सीमान्ता इव निम्नगा सुविपुलाः सौधाः च विन्दूपमा दृष्टम् सङ्क्षिप्तम् सकलम् जगत् वक्रम् इव भाति ।

व्याख्या—शैलेन्द्रा इति–शैलेन्द्रा = महापर्वताः कलभोपमाः=करिशावकसदृशाः, जलधयः = समुद्राः, क्रीडातटाकोपमा = विलासवापीसदृशाः, वृक्षाः= भूरुहाः शैवालसन्निभाः = जम्वालसमानाः, क्षितितलम् = भूतलम्, प्रच्छन्ननिम्नस्थलम् = अन्तर्हितनिम्नभागम्, निम्नगाः = नद्यः, सीमान्ता इव = केशान्तभागा इव सुविपुलाः = महान्तः सौधा विन्दूपमा = विन्दुसदृशाः, दृष्टम् = इत्थमवलोकितम् सकलम् = सर्वम्, जगत् = लोकः, संक्षिप्तरूपम् = संहितपरिणामम्, वक्रम् = कुटिलम् भाति = शोभते ।

अवहिता = सावधाना, शीतचन्दननिलयम् = शीतलचन्दनोत्पत्तिस्थानम् मलयम् = दक्षिणदिगवस्थम् पर्वतविशेषम्, प्रयास्यावः = गमिष्यावः ।

(आकाश गमन कर देखकर) प्रिये सौदामिनी देखो यह पृथिवी दूर से कैसी सुन्दर दीखती है ।

बड़े-बड़े पर्वत हाथी के बच्चे के समान ज्ञात होते हैं, समुद्र क्रीडासरोवर की तरह, वृक्ष सेवार के समान, दिखाई देते हैं, पृथ्वी के सभी निम्न भाग छिप गये है, नदियाँ भूमि की माँग के समान ज्ञात होती हैं प्रासाद विन्दु के समान दीखते हैं, यह सारा संसार छोटा एवं टेढ़ा दिखाई देता है ॥ ११ ॥

भद्रे ! सावधान हो जाओ, अब शीतलचन्दन वाले मलय पर्वत पर चलेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौदामनी—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(उभावाकाशयानं निरूपयतः)

सौदामनी—अय्य ! ण पारेमि अविस्सन्ता गन्तुं । [आर्य ! न पारयाम्यविश्रान्ता गन्तुम् ।]

विद्याधरः—तेन हि कस्मिंश्चित् पर्वते मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! पिअं मे । [आर्य ! प्रियं मे ।]

(उभाववतरतः)

विद्याधरः—सौदामिनि ! पश्य पश्य ।

जलदगहनमुज्झतीव वेगा-
दभिपततीव मही समुद्रमुद्रा ।
जलदसमयतोयदा इवामी
भृशमभिभान्ति नगा विजृम्भमाणाः ॥ १२ ॥

पारयामि = शक्नोमि, अविश्रान्तः=अविरम्य, मुहूर्तकम् = अल्पकालम् ।

अन्वयः—वेगात् समुद्रमुद्रा मही जलदगहनम् उज्झतीव अभिपतति, अमी विजृम्भमाणा नगा जलदसमयतोयदा इव भृशम् अभिभान्ति ।

व्याख्या—जलदेति—वेगात् = अतिरयात्, समुद्रमुद्रा = जलधिवेष्टिता, मही = धरा जलदगहनम् = घनघटाम्, उज्झतीव = परित्यजतीव, अभिपतति = अभिमुखम् आयाति, अमी = पुरस्ताद् दृश्यमाना विजृम्भमाणा = स्फुट-

---

सौदामिनी—बहुत अच्छा ।

(दोनों आकाश-गमन का अभिनय करते है)

सौदामिनी—आर्य्य ! मैं विना विश्राम किये आगे नहीं जा सकती ।

विद्याधर—तो किसी पर्वत पर विश्राम करके चलेंगे ।

सौदामिनी—यह मुझे बड़ा प्रिय है ।

(दोनों उतरते है)

समुद्र से घिरी हुई यह पृथ्वी मेघमालाओं से निकल कर वेग से समीप आ रही है । क्रमशः स्पष्टता को प्राप्त होते हुए ये वृक्ष मेघों की तरह मालम होते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवति ! अयं पर्वतः समर्थ इवास्माकं मुहूर्तमातिथ्यं कर्तुम् । तस्माद् विश्रान्तौ गमिष्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! एवं करेम्ह । [आर्य ! एवं कुर्वः ।]

विद्याधरः—सौदामनि ! पुष्पितानां नगानां षड्भागग्रहणमस्माकं धर्मः तस्मादनृणान् वृक्षान् करिष्यावः ।

सौदामनी—अय्य ! तह । [आर्य । तथा ।]

(पुष्पावचयं नाटयतः)

विद्याधरः—(अविमारकं विलोक्य) अये को नु खल्वयम् । आ ज्ञातम् । विद्याधरः खलु मन्त्रभ्रष्टः । कुतः, रूपमीदृशं हि नान्येषाम् । दिष्टया यदयं दृष्टः । भवत्वहमपि विस्मृतं पृच्छामि ।

तामापद्यमाना नगाः = पर्वता जलदसमयतोयदा इव = वर्षाकालजलधरा इव, भृशम् = अतिवेलम् अभिभान्ति=शोभन्ते । स्वभावोक्तिः । मालिनी छन्दः ।१२।

अयम् = मलयपर्वतः, आतिथ्यम् = अतिथिसत्कारम्, विश्रान्तौ = विनोदितपरिश्रमौ ।

नगानाम् = वृक्षाणाम् षड्भागग्रहणम् = षष्ठस्यांशस्य स्वीकारः, धर्मः= विहितः । अनृणान् = ऋणरहितान् अपाकृतर्णान् । मन्त्रच्युतः = मन्त्रिसिद्धि-

---

भद्रे ! यह पर्वत कुछ काल तक हम लोगों का अतिथि-सत्कार करने में समर्थ है ।

सौदामिनी—ऐसा ही करेंगे ।

विद्याधर—इन फूले वृक्षों से छठा भाग लेना मेरा धर्म है, अतः इन वृक्षों को ऋण मुक्त कर दें ।

सौदामिनी—आर्य ! अच्छी बात है ।

(फूल तोड़ता है)

विद्याधर—(अविमारक को देखकर) अरे यह कौन हैं ? ओह । समझ गया कोई मन्त्रभ्रष्ट विद्याधर ही होगा । ऐसा रूप दूसरों का कैसे होगा । भाग्यवश यह मिल गया । मैं विस्तार से इसका वृत्तान्त पूछूंगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—भवतु कृतं देवकार्यम् । प्रपतामि। (पार्श्वतो विलोक्य, विद्याधरं दृष्ट्वा) भोः ! को नु खल्वयम् । अथवा, स्वप्नोऽयं भवेत् । न ह्यहं सुप्तः । आ अन्तकाले मनुष्याः किमपि पश्यन्ति । तदेतत् स्यात् । तदपि संमूढानां खलु । अहं तु सर्वं जानामि। भवतु पृच्छाम्येनम् । भोः ! कतरकुलान्वयो भवतालङ्क्रियते ।

विद्याधरः—श्रूयताम्—'अहं मेघनादो नाम विद्याधरः । इयं तावदस्मत्कुटुम्बिनी सौदामनी नाम । अद्य भगवन्तमगस्त्यमाराधयितुं मलयपर्वते विद्याधरैरुत्सवः प्रारब्धः । तत्र वयमपि सङ्केतिताः । इह मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्याव इत्यवतीर्णाः । एषोऽस्माकं वृत्तान्तः । अथ किमर्थमिदानीं भवान् क्षितितलं देवलोकीकरोति ।

अविमारकः—(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्तव्यम् । वर्तमाने ममान्तकालेऽनृतं न वक्तव्यम् । (प्रकाशम्) भोः ! सौवीरराजपुत्रोऽविमारको नाम्नास्मि ।

रहितः विस्मृतम् = अस्मर्यमाणस्वस्वरूपम् । प्रपतामि = शैलशिखरात्पतित्वात्मानम् व्यापादयामि । संमूढानाम् = अज्ञानाम्, कतरकुलान्वयः = कः वंशः, अलङ्क्रियते = स्वजन्मना विभूष्यते । कुटुम्बिनी = स्त्री-सहचारिणी, सकेतिता = आगन्तुं कृतसंकेता, क्षितितलं देवलोकीक्रियते = देवसमो भवान्

अविमारक—देव कार्य्य कर लिया अब गिरता हूँ । (बगल की ओर विद्याधर को देखकर) अरे यह कौन है । अथवा यह स्वप्न होगा । मैं सोया तो नहीं हूँ । मरण-काल में मनुष्य जो कुछ देखते हैं यही कुछ होगा । यह तो वेहोश लोगों की बात है, मैं तो होश में हूँ । अच्छा इससे पूछता हूँ । आप किस वंश को अलङ्कृत करते हैं ।

विद्याधर—सुनिये मैं मेघनाद नाम का विद्याधर हूँ ? और यह मेरी स्त्री सौदामिनी है । आज भगवान् अगस्त्य की आराधना के लिये विद्याधरों ने उत्सव का आयोजन किया है । उसमें हमें भी बुलाया है । यहाँ क्षण भर विश्राम करके आगे बढ़ूंगा । यही वृत्तान्त है । अब आप यह बताइये कि आप इस धरातल को क्यों देव-लोक बना रहे हैं ।

अविमारक—(स्वगत) क्या कहूँ मरण काल में झूठ तो नहीं बोलूँगा (प्रकट) मैं अविमारक नाम का सौवीर राज का पुत्र हूँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्याधरः—(आत्मगतम्) एतदनृतम् । नेयमाकृतिर्मानुषी । (प्रकाशम्) अथ किमर्थमेकाकी भवानिहागतः ।

अविमारकः—(आत्मगतम्) किन्नु खलु वक्ष्यामि । (अधोमुखस्तिष्ठति)।

विद्याधरः—(आत्मगतम्) भवत्वहमेव ज्ञास्यामि । (विद्यामावर्तयति) भोः कष्टम् । अयं खलु भगवतोऽग्नेः पुत्र आत्मानं न जानाति, कुन्तिभोजदुहितरं कुरङ्गीमभिलषमाणो रममाणश्च तत्र विदिते सति निर्गतः, पुनः प्रवेशोपायमलभमानः प्राणपरित्यागाभिलाषी मरुत्प्रपातं कर्तुमिहारूढः । सापि च तत्र जीवन्मरणमनुभवति । अहमस्यास्मिन् कार्ये सहायो भविष्यामि । (प्रकाशम्) भो अविमारक ! अच्छलं मित्रत्वं नाम । न शक्नोषि मया विदितमर्थं प्रच्छादयितुम् ।

अविमारकः—उच्यताम् ।

स्याश्रयात् भूतलं देवलोकमिव करोति । अन्तकाले = मृत्युसमये, एकाकी = राजपुत्रेणं नैकाकिना भाव्यम् । सहायरहितः कथम् विद्यामावर्तयति = यया विद्यया परमनोगतं जानाति तां विद्या स्मरति । अभिलषमाणः = कामयमानः, विदिते = कन्यापुरं प्रच्छन्नभावेनेत्य तया सह रमणवृत्तान्ते अवगते

विद्याधर—(स्वगत) झूठी बात है । यह मनुष्य की आकृति नहीं हो सकती है । (प्रकट) आप अकेले यहाँ क्या करने आये हैं ।

अविमारक—(स्वगत) क्या कहूँगा (मुख नीचे कर बैठा रहता है) ।

विद्याधर—(स्वगत) अच्छा मैं स्वयं जान लूँगा । (विद्या की आवृत्ति करता है) अहा ! बड़ा कष्ट है, यह व्यक्ति यह नहीं जानता है । मैं अग्निदेव का पुत्र हूँ, इसे कुन्तिभोज की लड़की कुरङ्गी से प्रेम हो गया है । उसके साथ विहार करता रहा । भेद खुल जाने पर वहाँ से निकल भागा । फिर वहाँ प्रवेश का उपाय न जानकर प्राण-त्याग की इच्छा से पर्वत पर चढ़ा है । इसकी प्रेयसी भी वहाँ जीते ही मरण का अनुभव कर रही है । मैं इसके इस कार्य में सहायक बनूँगा (प्रकट) अजी अविमारक ! मित्रता में छल नहीं । मैं जिस बात को जानता हूँ उसको छिपा नहीं सकते ।

अविमारक—कहिये ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्याधरः—अद्यप्रभृत्यावयोः सख्यमस्तु । सकला च भवतोऽस्माभिरवस्था विदिता । प्राणपरित्यागार्थमिहारूढो भवान् ननु ।

अविमारकः—वयस्य ! एवमेतत् ।

विद्याधरः—भोः ! प्रीतोऽस्म्यनेन विस्रम्भेण यदि तत्राज्ञातमेव-प्रवेष्टुं स्यादुपायः, किं करिष्यति भवान् ।

अविमारकः—(सहर्षम्) किमन्यत् । अनुप्रवेक्ष्यामि तदर्थो हि व्याक्षेपः ।

विद्याधरः—तेन हि सखे ! दृश्यतामङ्गुलीयम् । (इत्यङ्गुलीयकं दर्शयति)

अविमारकः—वयस्य ! किमनेन प्रयोजनम् ।

विद्याधरः—एतदङ्गुलीयकं दक्षिणाङ्गुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थः ।

प्रवेशोपायम् = कन्यापुरे पुनर्गमनोपायम्, मरुत्प्रपातम् = पर्वतशिखरात् पतित्वा प्राणत्यागम्, जीवन्मरणम्=जीवनकाल एव मरणदुःखम्, अच्छलम्=

विद्याधर—आज से हम दोनों की मित्रता हुई । मैंने तुम्हारी सारी अवस्था जान ली है । तुम प्राण देने के लिये इस पर्वत पर चढ़ आये हो ।

अविमारक—मित्र ! ऐसी ही बात है ।

विद्याधर—मैं तुम्हारे इस विश्वास-भाव से प्रसन्न हूँ । यदि तुम छिपे-छिपे वहाँ पर प्रवेश का कोई उपाय जान लोगे तो क्या करोगे ?

अविमारक—(सहर्ष) और क्या ? वहाँ जाऊँगा । इसीलिये न पागल हो गया हूँ ।

विद्याधर—अच्छा तो यह अँगूठी देखो (अँगूठी दिखलाता है) ।

अविमारक—मित्र ! इससे क्या कार्य होगा ।

विद्याधर—इस अँगूठी को दाहिने हाथ की अँगुली में धारण करने से अदृश्य हो जाओगे, और बायें हाथ की अँगुली में धारण करने पर पुनः दिखाई देने लगोगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—वयस्य ! एतदप्यस्ति ।

विद्याधरः—अयं ते प्रत्ययं करिष्यामि । वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—एवम् ।

विद्याधरः—अवहितो भव ।

अविमारकः—अवहितोऽस्मि ।

विद्याधरः—(दक्षिणाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य) वयस्य ! किं मां पश्यसि ।

अविमारकः—वयस्य ! छायापि न दृश्यते, किं पुनः शरीरम् । एते खलु लोके सुखिनो नाम ।

ये सञ्चरन्ति गगने वनितासहायाः
क्रीडन्ति पर्वततटेषु कृतोपदेशाः ।

छलरहितम्, प्रच्छादयितुम् = निह्नोतुम् । विश्रम्भणे=विश्वस्य स्वरहस्योक्त्या तत्र = कुन्तिभोजस्य कन्यान्तःपुरे, तदर्थो हि व्याक्षेपः = तत्र प्रवेशार्थमेवाऽयं तवोन्मादः । अदृश्यः = अन्येनानवलोकनीयः, प्रकृतिस्थः = पुनर्दृश्यरूपः ।

अन्वयः—ये वनितासहायाः गगने सञ्चरन्ति, कृतोपदेशाः पर्वततटेषु क्रीडन्ति, मन्त्रकृतैः प्रभावैः सर्वम् विदन्ति च अन्तर्हिताः विवृताः च सुखम् भ्रमन्ति ।

व्याख्या—य इति—ये वनितासहायाः = प्रियासहिताः, गगने = आकाशे सञ्चरन्ति = भ्रमन्ति, कृतोपदेशाः = विहितेष्टस्थलाः, पर्वततटेषु = शिखरि-

---

अविमारक—मित्र ! ऐसा भी है ।

विद्याधर—अभी-अभी मैं तुमको विश्वास दिला देता हूँ, मित्र क्या मुझे देख रहे हो ।

अविमारक—हाँ ।

विद्याधर—सावधान हो जाओ ।

अविमारक—सावधान हूँ ।

विद्याधर—(दक्षिण अँगुलि में पहिन कर) मित्र मुझे देख रहे हो ।

अविमारक—छाया भी नहीं देख रहा हूँ, शरीर की क्या बात । यही लोग संसार में सुखी है ।

जो स्त्रियों के साथ आकाश में भ्रमण करते रहते हैं, पर्वतों पर क्रीडा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वं विदन्त्यपि च मन्त्रकृतैः प्रभावै-
रन्तर्हिताश्च विवृताश्च सुखं भ्रमन्ति ॥ १३ ॥

भवतु, प्रविष्ट एवास्म्यनेन ।

विद्याधरः—(वामाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य) तेन हि गृह्यतामाङ्गुलीयकम् ।

अविमारकः--(प्रतिगृह्य) अनुगृहीतोऽस्मि ।

विद्याधरः—न न, अहमेवानुगृहीतः । कुतः,

न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकाङ्क्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति ॥ १४ ॥

भागेषु क्रीडन्ति = विलसन्ति, मन्त्रकृतैः = मन्त्रजनितैः, प्रभावैः = सामर्थ्यातिशयैः, सर्वम् = अखिलम् प्रत्यक्षम् परोक्षञ्च विदन्ति=जानन्ति, अन्तर्हिताः= प्रच्छन्नाः, विवृताः = प्रकटाश्च सर्वत्र सुखम् = सानन्दम् भ्रमन्ति = अटन्ति । एतादृशाः विलक्षणप्रभावाः विद्याधराः अतिसुखिनो धन्याः ॥ १३ ॥

अन्वयः—सुजनः रत्नम् आसाद्य तथा न परितुष्यति, यथा तद्गताकाङ्क्षे तत् पात्रे दत्वा प्रहृष्यति ।

व्याख्या—न तथेति–सुजनः = सज्जनः, रत्नम् आसाद्य = प्राप्य तथा तेन प्रकारेण न परितुष्यति = आनन्दमनुभवति, यथा = येन प्रकारेण तद्गताकाङ्क्षे = तदभिलाषिणि तद् = रत्नम् दत्त्वा = प्रदाय, प्रसीदति = प्रसन्नो भवति ॥ १४ ॥

करते हैं मन्त्र के प्रभाव से सब प्रत्यक्ष-परोक्ष को जान जाते हैं। छिपकर तथा प्रकट होकर सब जगह विचरते हैं ॥ १३ ॥

इस अँगुठी से (राजमहल में) प्रवेश तो हो ही गया ।

विद्याधर—(बायें हाथ में पहन कर) तो इस अँगुठी को ले लो ।

अविमारक—(लेकर) आप ने बड़ी कृपा की ।

विद्याधर—नहीं-नहीं मैं ही अनुगृहीत हुआ क्योंकि—

सुजन लोग रत्न पाकर उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जिस प्रकार उसको चाहने वाले को देकर प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—एकस्तु मे संशयः। मम शरीरे परीक्षितुमिति वक्तुमसदृशमिव।

विद्याधरः—तेन हि प्रक्षिप दक्षिणाङ्गुल्याम्।

अविमारकः—बाढम्। (तथा करोति)

विद्याधरः—वयस्य ! गृह्यतामसिः।

अविमारकः—बाढम्। (खड्गं गृहीत्वा सविस्मयम्) अहो खड्गस्य प्रभावः।

प्रच्छन्नरूपस्त्वशनिः कथञ्चित्
खड्गीकृतः स्यात्तु तडित्कलापः।
निर्भर्त्संयन् सूर्यकृतां प्रदीप्तिं
वनं दवाग्निः सहसाभ्युपैति॥ १५॥

अन्वयः—प्रच्छन्नरूपः अशनिः स्यात् कथञ्चिद् खड्गीकृतः तडित्कलापः स्यात्सूर्यकृताम् प्रदीप्तिम् निर्भर्त्सयन् दवाग्निः सहसा वनम् अभ्युपैति।

व्याख्या—प्रच्छन्नेति–प्रच्छन्नरूपः = प्रच्छन्नं रूपं यस्य सः तिरोहिताकारः, अशनिः = वज्रम्, स्यात् = भवेत्, कथंचित् केनापि प्रकारेण खड्गीकृतः = खड्गरूपं प्रापितः, तडित्कलापः = विद्युत्प्रभा, स्यात् सूर्यकृताम् = रविजनिताम्, दीप्तिम्=प्रभाम् निर्भर्त्संयन् = पराभवन्, दवाग्निः = वनवह्निः सहसा = अकस्मात् वनम् = अरण्यम्, अभ्युपैति=प्राप्नोति। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

अहो अग्निपुत्रस्य वीर्यम् = अग्निपुत्रत्वेनावतीर्णस्यास्य महान् प्रभावः।

अविमारक—मुझे एक सन्देह है, मैं भी अपने शरीर पर इसकी परीक्षा कर लेता यद्यपि यह कहना अनुचित के समान है।

विद्याधर—तो तुम अपने दाहिने हाथ की अँगुली में पहन लो।

अविमारक—अच्छा (पहनता है)।

विद्याधर—वयस्य (मित्र) ! इस खड्ग को धारण करो।

अविमारक—अच्छा (खड्ग लेकर साश्चर्य) खड्ग का कैसा अद्भुत प्रभाव है।

यह छिपा हुआ वज्र है, किसी प्रकार खड्ग का रूप धारण कर लिया है। विद्युतों का समूह है, सूर्य्य के प्रभा को अभिभूत करता हुआ दावानल सहसा वन में आरहा है॥ १५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्याधरः—अहो वीर्यमग्निपुत्रस्य। अस्य खड्गस्य प्रभावं विद्याधरेष्वपि कतिचित् सहन्ते। अग्निः खलु भगवानिमं रक्षति।

अविमारकः—(खड्गं दृष्ट्वा) अहो भगवतीनां विद्यानां प्रभावः।

दिव्यं स्वभावं समुपागतोऽस्मि
स एव नामास्मि गुणैर्विशिष्टः।
इदं यदा निर्गुणमर्त्यवृन्दै-
र्न ज्ञायते चास्ति च मे शरीरम्॥ १६॥

वयस्य! कृतमस्मत्कार्यम्। गृह्यतामसिः।

अन्वयः—दिव्यम् स्वभावम् समुपागतः अस्मि स एव नामगुणैः विशिष्टः अस्मि यदा इदम् मे शरीरम् निर्गुणमर्त्यवृन्दैः न ज्ञायते अस्ति च।

व्याख्या—दिव्यमिति–दिव्यम् = अलौकिकम्, स्वभावम् = प्रकृतिं समुपागतः = सम्प्राप्तः अस्मि, स एव नाम = प्राकृत एवाऽहम्, गुणैः विशिष्टः = समधिकगुणवान् अस्मि, यदा मे = मम इदम् वर्तमानम्, शरीरम् = देहः, निर्गुणमर्त्यवृन्दैः = गुणहीनमानवसमूहैः न ज्ञायते = न प्रतीयते अस्ति च वर्तमानोऽपि साधारणजनैर्न ज्ञायते॥ १६॥

अन्तर्हितः = योऽङ्गुलीयकं धृत्वाऽन्तर्धानं गतः तत् स्पृष्टः = तेनान्तर्हितेन स्पृष्टः कृतस्पर्शः, तत्स्पृष्टः = तेनान्तर्हितस्पृष्टस्पृष्टश्चेति त्रयोऽप्यन्तर्हिता भवन्ति। इति निश्चयः। अयमभ्युदयादभ्युदयः = त्रिकपरम्परान्तर्धानम्

विद्याधर—अहो! अग्नि-पुत्र का कैसा अद्‌भुत प्रभाव है, विद्याधरों में भी कोई ही इस खड्ग के प्रभाव को सहन करते हैं। मेरा विचार है भगवान् अग्नि इसकी रक्षा करते हैं।

अविमारक—अहो विद्याओं का कैसा अद्‌भुत प्रभाव है।

इस समय मैं दिव्य प्रभाव को प्राप्त हो गया हूँ, मैं वही हूँ किन्तु मेरे में अद्‌भुत गुण हो गया है, क्योंकि यह मेरा शरीर वर्तमान होता हुआ भी गुणहीन मनुष्यों से दिखाई नहीं देता है॥ १६॥

आपने मेरा कार्य्य कर दिया, इस खड्ग को लीजिये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्याधरः—यदिष्टं भवतः। वयस्य ! अन्तर्हितश्चान्तर्हितस्पृष्टश्च तत्स्पृष्टश्चान्तर्हिता भवन्तीति निश्चयः।

अविमारकः—सखे ! प्रीतोऽस्मि। अयमभ्युदयादभ्युदयः। सखे ! अस्मदपेक्षया विलम्बितमिति तर्कयामि। मा भूदिदानीं वेलातिक्रमः।

विद्याधरः—प्रविष्टोऽस्मि, यद्यापृष्टो भवान्।

अविमारकः—किं बहुना भाषितेन।

विद्यावशानां तु भवद्विधानां
कोऽस्मद्विधः स्यात् प्रतिकर्तुकामः।
क्रीतोऽस्म्यहं जीवितसम्प्रदानात्
प्रशाधि मां किं करवाणि भृत्यः॥ १७॥

महाभ्युदयः अस्मदपेक्षया = मम कार्य्यसाधनपरतया विलम्बितम् = कृतसमयातिक्रमो भवान्। वेलातिक्रमः = नियतसमयातिक्रमः।

अन्वयः—विद्यावशानाम् भवद्विधानाम, अस्मद्विधः कः प्रतिकर्तुकामः स्यात् जीवितसम्प्रदानात् अहम् क्रीतः अस्मि अहम् भृत्यः किं करवाणि प्रशाधि।

व्याख्या—विद्येति–विद्यावशे येषां ते विद्यावशास्तेषां विद्यावशानाम्=

विद्याधर—मित्र ! जैसी तुम्हारी इच्छा। मित्र ! अँगूठी पहनने पर तुम स्वयं अदृश्य हो जाओगे जिसको छूते रहोगे तब तक वह भी अदृश्य रहेगा और उस व्यक्ति के स्पर्श से युक्त व्यक्ति भी अदृश्य रहेगा, यह निश्चित जानो।

अविमारक—सखे ! मैं प्रसन्न हूँ, अभ्युदय पर अभ्युदय हो गया है। मित्र ! हमारे कारण आपको बहुत देर हो गई अब देर मत करिये।

विद्याधर—आपने अनुमति दे दी, मुझे पहुँचा ही समझिये।

अविमारक—अधिक क्या कहूँ।

आप ने विद्या सिद्ध की है। मेरे जैसा व्यक्ति आपका क्या प्रत्युपकार कर सकता है, आपने हमको जीवनदान देकर खरीद लिया, आज्ञा दीजिये मैं भृत्य आपका क्या प्रत्युपकार करूँ॥ १७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्याधरः—जानाम्यहं भवतोऽच्छलां बुद्धिम् । यदि च भवानस्मद्वचनमनुवर्तते,

सख्यै मम प्रतिनिवेदय मामिमां च
त्वं मामनुस्मर सखे ! गतिरीक्ष्यतां मे ।
क्रीडारसैः प्रतिविलोभय राजपुत्रीं
कार्यान्तरेषु पुनरप्यहमस्मि पार्श्वे ॥ १८ ॥

अन्तर्धानाद्यनेकविद्यावशवताम्, भवद्विधानाम् = भवादृशाम्, अस्मद्विधः = अस्मादृशः, कः प्रतिकर्तुकामः = प्रत्युपकारं कर्तुं समर्थः, स्यात्, जीवितसम्प्रदानात् = जीवनदानात्, अहम् क्रीतः = निष्क्रयेण गृहीतः स्वकीयः कृतः, अस्मि, अहम् = अविमारकः ते भृत्यः = अनुचरः, किम् करवाणि = विदधानि इति प्रशाधि = आदिश ! प्राणत्यागार्थं कृतसंकल्पोऽहम् भवतैव रक्षितः प्रियासङ्गमोपायं प्रदाय रक्षित इति जीवनदाता भवान् । जीवनप्रतिदानं कर्तुमसमर्थोऽस्मि ॥ १७ ॥

अच्छलाम् = छलरहिताम्, मद्ववचनमनुवर्तते = मद्वचनं पालयति ।

अन्वयः—माम् इमाम् च मम सख्यै निवेदय त्वम् माम् अनुस्मर सखे मे गतिः, ईक्ष्यताम् क्रीडारसैः राजपुत्रीम् प्रतिविलोभय कार्य्यान्तरेषु पुनः अहम् तव पार्श्वे अस्मि ।

व्याख्या—सख्या इति–माम् = विद्याधरम् इमाम् = मम प्रियाम् सौदामिनीम् च सख्यै = मम सख्यै कुरङ्ग्यै निवेदय = कथय तां प्रति मम चर्चा कुरु सखे = मित्र त्वम्, माम् = मित्रम् अनुस्मर = मा विस्मार्षीः । मे = मम गतिः गमनम् ईक्षताम्=दृश्यताम्, क्रीडारसैः = विलाससौख्यैः, राजपुत्रीम् = कुरङ्गीम् प्रतिविलोभय = मोदय, कार्य्यान्तरेषु = इतरकार्य्येषु पुनरपि =

विद्याधर—मैं आपकी निश्छल बुद्धि को जानता हूँ, यदि आप मेरे वचन को मानते हैं तो–आप अपनी प्रियतमा से मेरी और मेरी प्रिया सौदामिनी की चर्चा करें। मेरी गति देखें। अपनी क्रीडाओं से राजकुमारी को सन्तुष्ट करें, फिसी अन्य अवसर पर भी मैं आपके पास आ जाऊँगा ॥ १८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अहो पुरुषसारो हि नाम नेच्छति विसर्जयितुं मे मनः। वयस्य ! गच्छामस्तावत्।

अविमारकः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

विद्याधरः—बाढम्।

(उत्थितो विद्याधरः सह प्रियया)

अविमारकः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष हि तत्रभवान् मेघनादो गगनार्णवमवगाढः। य एषः,

वातोद्धूताग्रकेशः सलिलधरदरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः
सम्यग्बद्धासिकक्ष्यः प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः।

भूयोऽपि = अहम् पार्श्वे = ते समीपे, अस्मि, चिन्तनकाल एव त्वामुपस्थास्यामि ॥ १८ ॥

पुरुषसारः = पुरुषश्रेष्ठः। 'अतो मम मनः विसर्जयितुं नेच्छति'। पुनर्दर्शनाय=भूयोपि दर्शनाय।

गगनार्णवम् = आकाशसागरम्, अवगाढः = प्रविष्टः।

अन्वयः—वातोद्धूताग्रकेशः ललिताधरदरीभृष्टदृष्टाङ्गरागः सम्यग् बद्धासिकक्ष्यः, प्रिययुवतिकरस्पृष्टसङ्गूढमध्यः, वातोद्धूतोत्तरीयः मुकुटमणिगणैः तारकाः संप्रमृद्नन् श्रीमान् असौ विद्याधरः उपरिगतिजवैः क्षीयमाणः प्रयाति।

व्याख्या—वातोद्धूतेति–वातेनोद्धूतः उत्तरीयो यस्य स तथोक्तः =

(स्वगत) यह कैसा पुरुष है इसको छोड़कर जाने की इच्छा नहीं हो रही है। मित्र ! मैं जा रहा हूँ।

अविमारक—आप जाँय, फिर दर्शन दीजियेगा।

विद्याधर—अच्छा।

(अपनी प्रियतमा के साथ उठता है)

अविमारक—यह मेघनाद आकाश सागर में बैठ गया। इसके आगे के बाल हवा में हिल रहे हैं, मेघ की गुफा में इसकी देह कभी छिप जाती है एवं कभी दिखाई देती है, कमर में तलवार अच्छी तरह बँधी है, प्रियतमा के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वातोद्धूतोत्तरीयो मुकुटमणिगणैस्तारकाः सम्प्रमृद्नन् ।
श्रीमान् विद्याधरोऽसावुपरिगतिजवैः क्षीयमाणः प्रयाति ॥१९॥

इयमपि विद्याबलेन प्रियमनुवर्तते । यैषा,

जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी
स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या ।

वायुवेगकम्पितप्रावारः सलिलधरा एव दर्यः ताभिर्मृष्टः प्लुष्टः अङ्गरागो-यस्य स तथोक्तः = मेघकन्दरानिह्नुतावलोकितकृष्णवर्णः, सम्यग्बद्धोऽसि-र्यत्र तादृशी कक्ष्या यस्य स तादृशः = सम्यग्बद्धखड्गकक्ष्यः, प्रियया युवत्या करेण स्पृष्टं सम्यग् गूढं मध्यं यस्य स तथोक्तः = प्रिययुवतिसंगूढा-वलम्बितमध्यभागः, वाताद्धूतोत्तरीयः = वायुवेगकम्पितोत्तरासङ्गः मुकुट-मणिजनैः = मुकुटजटितरत्नसमूहैः, तारकाः = नक्षत्राणि समीपवर्तीनि, संप्रमृद्नन् = घर्षयन् । श्रीमान् = शोभायुक्तः, असौ विद्याधरः = मेघनादः, उपरिगतिजवैः = ऊर्ध्वगतिवेगैः, क्षीयमाणः=क्रमशः स्वल्पदर्शनः याति = गच्छति ॥ १९ ॥

इयमपि = तत्प्रियतमापि विद्याबलेन = विद्याप्रभावेण तमनुसरति = विद्याधरमनुगच्छति ।

अन्वयः—जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी, स्तनतटवल्गनखिन्नसन्नमध्या वियति दयितदत्तपूर्वकाया तोयधरेषु तडित् इव दृष्टनष्टा (अनुसरति) ।

व्याख्या—जवशिथिलेति–जवेन शिथिलः विमुक्तपार्श्वकेशो यस्या सा तथोक्ता = वेगश्लथन्निर्मुक्तपार्श्वशिरोरुहा, स्तनतटयोर्वल्गनेन खिन्नः सन्नो मध्यभागो यस्याः सा तथोक्ता स्तनतटसञ्चलनखेदवच्छून्यमध्यभागा,

---

हाथों से इसकी कमर पकड़ी गई है, इसकी चादर हवा से उड़ रही है, मुकुट की मणियों से तारों को घिस रहा है, इस प्रकार यह विद्याधर गति की तीव्रता से क्रमशः अदृश्य होता जा रहा है ॥ १९ ॥

यह सौदामिनी भी अपनी विद्या के प्रभाव से इसका अनुसरण कर रही है । वेग के कारण इसके पार्श्व के केश खुल गये हैं, स्तन तट के कम्पित रहने के कारण इसका मध्य भाग खिन्न हो रहा है, आकाश में जाकर इसने अपने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वियति दयितदत्तपूर्वकाया
तडिदिव तोयधरेषु दृष्टनष्टा ॥ २० ॥

गतस्तत्रभवान् मेघनादः। अहमप्यद्यैव नागराभिमुखो भविष्यामि। यावदवतरामि। (अवतीर्य) परिश्रान्त इवास्मि। भवतु, एतस्मिन् शिलातले मुहूर्तं विश्रम्य गमिष्यामि। (उपविशति।)

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—अहो तत्तहोदो सुगहीदणामहेअस्स सोवीरराअस्स अधण्णदा, जाए चिरं अपुत्तो भविअ अत्तणो णिअमविसेसेण देव्वप्पसादेण अ माणुसलोअदुल्लभं सुपुत्तं लभिअ पुणो वि तादिसो एव संवुत्तो।

वियति = आकाशे दयितेन दत्तः पूर्वं कायो यया सा तथोक्ता = प्रियावलम्बिताग्रदेहा, तोयधरेषु = मेघेषु-तडिदिव = विद्युदिव, दृष्टनष्टा = दृश्यादृश्या, प्रियमनुसरति।

तत्र भवतः = माननीयस्य, सुगृहीतनामधेयस्य=प्रसिद्धनाम्नः, अधन्यता= अश्रेष्ठता, नियमविशेषेण = तपःप्रभावेण, देवप्रसादेन = देवताप्रीत्या, मानुषलोकदुर्लभम् = मानुष्यदुर्लभम्, तादृशः = पूर्ववदपुत्रः, जातः। समाप्तजीविततया = जीवनावसानेन, अधन्यतया = अभाग्यतया, परिभ्रष्टः = अदर्शनं गतः क्षेमेण गतः = सकुशलं निर्गतः, मन्मथेनाभिताड्यमानः =

शरीर के पूर्वभाग को प्रियतम से अवलम्बित कर दिया है। अतः वह मेघ में बिजली के समान दृश्यादृश्य प्रतीत हो रही है ॥ २० ॥

माननीय मेघनाद चले गये, मैं भी आज ही नगर की ओर प्रस्थान करूँगा (उतर कर) थक गया हूँ इसी शिला पर थोड़ा विश्राम करके जाऊँगा (बैठता है)।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—हमारे माननीय प्रसिद्ध नाम वाले सौवीरराज का अभाग्य है। बहुत दिनों तक पुत्रहीन रहने पर अपने तपस्या एवं देवताओं की कृपा से मनुष्य लोक में दुर्लभ वैसे पुत्र को प्राप्त करके भी फिर अपुत्र हो गये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सव्वहा मम अ समत्तजीविददाए बन्धुजणस्स अघण्णदाए परिब्भट्ठो कुमारो। (परिक्रम्य) अज्ज खु तत्तहोदीए भणिदं—खेमेण गदो कुमारो त्ति। अहव को एत्थ जाणादि अदिसुउमारो राअउमारो एआई वम्महेण अभिताडिअमाणो परिब्भट्ठो कुसलो होदि त्ति। अहं वि कुमारं वा कुमारस्स सरीरं वा पेक्खिस्सामि दाव सव्वलोअं परिब्भमिअ। जदि ण पेक्खामि, तत्तहोदो परत्त सहाओ होमि। परिस्सन्तो खु अहं। भोदु, एदस्सिं पादपिच्छाआअं मुहुत्तअं विस्समिअ गमिस्सं। (स्वपिति) [अहो तत्रभवतः सुगृहीतनामधेयस्य सौवीरराजस्याधन्यता, यया चिरमपुत्रो भूत्वात्मनो नियमविशेषेण दैवप्रसादेन च मानुषलोकदुर्लभं सुपुत्रं लब्ध्वा पुनरपि तादृश एव संवृत्तः। सर्वथा मम च समाप्तजीविततया बन्धुजनस्याधन्यतया परिभ्रष्टः कुमारः। अद्य खलु तत्रभवत्या भणितं—क्षेमेण गतः कुमार इति। अथवा कोऽत्र जानाति अतिसुकुमारं राजकुमार एकाकी मन्मथेनाभिताड्यमानः परिभ्रष्टः कुशलो भवतीति। अहमपि कुमारं वा कुमारस्य शरीरं वा प्रेक्षिष्ये तावत् सर्वलोकं परिभ्रम्य। यदि न प्रेक्षे, तत्रभवतः परत्र सहायो भवामि। परिश्रान्तः खल्वहम्। भवतु, एतस्यां पादपच्छायायां मुहूर्तकं विश्रम्य गमिष्यामि।]

अविमारकः—का नु खलु सन्तुष्टस्यावस्था। सुष्ठु भवेद् यदि मे

कामेन नितान्तं कदर्थितः, कुमारस्य शरीरम् = प्राणनाशेऽपि तस्य देहम्—परत्र = स्वर्गे पादपच्छायायाम् = वृक्षतले, विपत्स्ये = जीवनं त्यक्ष्यामि।

सर्वथा हमारे जीवन के समाप्त हो जाने तथा बन्धुजनों के अभाग्य से वह राजकुमार खो गये हैं। अथवा कौन जानता है कि अतिसुकुमार राजकुमार असहाय अवस्था में कामातुर होकर सकुशल होंगे। मैंने भी प्रतिज्ञा कर ली है कि सारी पृथ्वी कुमार को या उसकी देह को अवश्य देखूँगा। यदि नहीं देख सका तो परलोक जाकर उसका सहायक बनूँगा। थक गया हूँ, इस वृक्ष की छाया में बैठकर तब जाऊँगा। (सोता है)

अविमारक—सन्तुष्ट हुये मेरी क्या अवस्था है, अच्छा होता कि उसको भी सकुशल निकल आने की खबर मिल जाती, यदि वह समाचार नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निर्गमनं तेन श्रुतं, न श्रुतं चेद् विपत्स्यते स ब्राह्मणः। अथवा किं मम सर्वारम्भैस्तेन विना। स हि,

गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः
शोके गुरुः साहसिकः परेषु।
महोत्सवो मे हृदि किं प्रलापै-
र्द्विधा विभक्तं खलु मे शरीरम्॥ २१॥

(सर्वतो विलोक्य) अये को नु खलु च्छायायामध्वगः प्रसुप्तः। (उपेत्य) अभ्युदयो मे हृदयस्य यदृच्छयागतः। त्वरते मे मनः परिष्वक्तुमेनम्।

विदूषकः—(बुद्ध्वा) चिरं खु सुत्तम्हि। जाव गच्छामि। को विस्समो णाम विब्भट्ठमणोरहाणं। (परिक्रम्याविमारकं विलोक्य) कहं

अन्वयः—गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योद्धा, शोके गुरुः परेषु साहसिकः, मे हृदि महोत्सवः प्रलापैः किम् द्विधा विभक्तम् मे शरीरम् खलु।

व्याख्या—गोष्ठीषु इति–गोष्ठीषु = सभासु हास्यः = हासकर्ता, समरेषु = संग्रामेषु, योद्धा = वीरः, शोके = मनःखेदे, गुरुः = उपदेष्टा, परेषु = शत्रुष्वागतेषु साहसिकः = साहसकरः, मे = मम हृदि = हृदये,

---

ज्ञात होगा तो वह ब्राह्मण मर जायगा। तो उसके न रहने पर मेरे इन प्रयासों का क्या फल है ? वह—

सभा में हँसी करने वाला, समर में योद्धा, शोक में सदुपदेश देने वाला, शत्रुओं के आने पर साहस करने वाला और मेरे हृदय में महोत्सव है। विशेष क्या कहूँ। दूसरे आकार में वह मेरा शरीर ही है॥ २१॥

(चारो तरफ देखकर)

अरे छाया में यह कौन यात्री सो रहा है।

(समीप जाकर)

यह तो मेरे हृदय का उत्सव स्वयं आ गया है। इसे गले लगाने के लिये मेरा हृदय उत्सुक हो रहा है।

विदूषक—(जाग कर) ओ ! बहुत देर तक सोया रह गया। अब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तत्तभवं अविमारओ। [चिरं खलु सुप्तोऽस्मि। यावद् गच्छामि। को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम्। कथं तत्रभवान् अविमारकः।]

अविमारकः—अये वयस्यः सन्तुष्टः।

(उभौ परिष्वजेते)

विदूषकः—(उच्चैर्विहस्य) भो वअस्स ! कहेहि कहेहि एत्तिअं कालं किं तुए किदं [भो वयस्य ! कथय कथयैतावन्तं कालं किं त्वया कृतम्।]

अविमारकः—वयस्य ! एतत् कृतम्। (अङ्गुलीयकं दक्षिणाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य तिरस्कृतः)

विदूषकः—हा हा कहिं कहिं तत्तभवं। कहं ण दिस्सदि। आ तस्सिं गदाए चिन्ताए तं विअ पेक्खामि। अहव फुडीकरिस्सं। भो वअस्स ! सावेण साविदो सि, जदि अत्ताणं छादेसि। [हा हा क्व क्व तत्रभवान्। कथं न दृश्यते। आ तस्मिन् गतया चिन्तया तमिव पश्यामि अथवा स्फुटीकरिष्यामि। भो वयस्य ! शापेन शापितोऽसि, यद्यात्मानं छादयसि।]

अविमारकः—वयस्य ! अयमस्मि।

महोत्सवः = महान् उत्सवस्वरूपः प्रलापैः=बहुकथनैः किम् द्विधा विभक्तम् = द्विरूपेणावस्थितं मे शरीरम् मम = देहः।

जाता हूँ, जिसके नमोरथ नष्ट हो गये उसको क्या विश्राम ? (चलकर अविमारक को देखकर) यह मेरे अविमारक हैं।

अविमारक—अरे यह तो मेरा मित्र सन्तुष्ट है (दोनों आलिङ्गन करते हैं)।

विदूषक—मित्र ! कहो-कहो इतने काल तक तुमने क्या किया है ?

अविमारक—(जोरों से हँसकर) हे मित्र ! यह किया है (अँगूठी को दाहिने हाथ की अँगुली में पहन कर)

विदूषक—हाय-हाय ! कहाँ गया मेरा मित्र ? दिखाई नहीं देता क्यों। उसी की चिन्ता करते रहने के कारण सर्वत्र उसी की छाया देखा करता हूँ, मित्र ! मैं शाप दे दूँगा यदि छिपे रहे।

अविमारक—मित्र यहीं तो हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—कहिं कहिं सि। [क्व क्वासि।]

अविमारकः—(वामाङ्गुल्यामङ्गुलीयकं प्रक्षिप्य) वयस्य! अयमस्मि।

विदूषकः—पुढमं सुद्धो अविमारओ, दाणिं माआविमारओ संवुत्तो। एवं माआवित्तअ! किस्स तुवं कण्याउरे पच्छण्णरूवो ण चरसि। [प्रथमं शुद्धोऽविमारकः, इदानीं मायाविमारकः संवृत्तः, एवं मायावित्तक! कस्मात् त्वं कन्यापुरे प्रच्छन्नरूपो न चरसि!]

अविमारकः—वयस्य! इदानीं खल्वेतदुपलब्धम्।

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं। कुदो दाणिं एदस्स आगमो। [आश्चर्यमाश्चर्यम्। कुत इदानीमेतस्यागमः]

अविमारकः—सर्वमन्तःपुरे कथयिष्यामि।

विदूषकः—सम्पदि बुभुक्खिदो सि। [संप्रति बुभुक्षितोऽसि।]

अविमारकः—वैधेय! शीघ्रमागच्छ प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय। नो वामं हस्तो मोचयितव्यः।

मायाविमारकः = मायया विख्यातोऽविमारकः मायाविमारकः मध्यमपदलोपी समासः, मायावित्तकः = मायाकुशलः। एतद् अङ्गुलीयकम् यस्य

विदूषक—कहाँ हो, कहाँ हो।

अविमारक—(बायीं अँगुली में अँगूठी पहन कर) मित्र यहाँ हूँ।

विदूषक—पहले तुम केवल अविमारक थे, अब मायाविमारक हो गये हो। अरे माया प्रवीण! क्यों नहीं अब तुम छिपकर कन्यापुर में भ्रमण करते हो।

अविमारक—अभी तो यह मिला है।

विदूषक—आश्चर्य है आश्चर्य है! यह कहाँ मिला?

अविमारक—सारी बातें अन्तःपुर में कहूँगा।

विदूषक—अभी भूख लगी है।

अविमारक—मूर्ख! शीघ्र ही अन्तर्धान हो जा, इस हाथ को छोड़ना नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—अच्छरीअं अच्छरीअं । अहं पि दाव अदिस्सो । मम सरीरं अत्थि वा णत्थि वा । उच्छिट्ठं करिस्सं । थु थु । [आश्चर्यं-माश्चर्यम् । अहमपि तावददृश्यः । मम शरीरमस्ति वा नास्ति वा । उच्छिष्टं करिष्यामि । थु थु ।]

अविमारकः—मूर्ख ! अलमलं विलंवितेन । त्वरते मे मनः कान्ता दर्शनाय । (आकर्षति)

विदूषकः—ण मे सद्धा । [न मे श्रद्धा ।]

अविमारकः—हन्त भोजनवेलां प्रतिपालयामि ।

विदूषकः—कञ्चि कालं विस्समिअ गमिस्सामा । [कंचित् कालं विश्रम्य गमिष्यावः ।]

अविमारकः—किं न स्मरति मां कुरङ्गी ।

धारणेनान्तर्हितो भवामि । कुत एतस्यागमः=आश्चर्यजनकस्यास्य कुतो लाभः । वैधेय=मूर्ख, प्रक्षेपभूमिप्रवेशाय=माययान्तर्धानप्राप्तये । उच्छिष्टं करिष्यामि= येन स्वशरीरस्य सत्ता प्रतीयेत । कान्तादर्शनाय = प्रियामवलोकनाय ।

नग्नान्धश्रवणिका = अत्यन्तशोचनीया तपस्विनी किन्नु खलु जीवति यदि जीवति तदा स्मरति । तस्या जीवने सन्देहः । कृतसमावर्त्तः वटुक इव, यथा चिरं गुरुकुले स्थितः समावर्तनसंस्कारानन्तरं वटुः गृहं गन्तुं त्वरते ।

विदूषक—आश्चर्य्यं आश्चर्यं मैं भी अदृश्य हो गया हूँ । मेरी देह है कि नहीं उच्छिष्ट करता हूँ थूंकता है ।

अविमारक—मूर्ख ! देर मतकर कान्ता को देखने के लिये मेरा मन उद्विग्न हो रहा है ।

(खींचता है)

विदूषक—मुझे श्रद्धा नहीं हो रही है ।

अविमारक—खाने के समय की प्रतीक्षा करता हूँ ।

विदूषक—थोड़ा विश्राम करके चलूंगा ।

अविमारक—क्या कुरङ्गी हमको याद करती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—किण्णु खु जीवदि णग्गन्धस्समणिआ। [किं नु खलु जीवति नग्नान्धश्रमणिका।]

अविमारकः—वयस्य! याचे भवन्तं, शीघ्रमागम्यताम्।

विदूषकः—किस्स तुवं किदसमावुत्तो वडुओ विअ तुवरसि। [कस्मात् त्वं कृतसमावर्तो बटुक इव त्वरसे।]

अविमारकः—मूर्ख! इतस्तावत्।

विदूषकः—मा कड्ढेहि, अअं अणुधावामि। [मा कर्ष, अयमनुधावामि।]

अविमारकः—(परिक्रम्य) एतन्नगरम्।

विदूषकः- पेक्खामि दाव णअरस्स सोहं। [पश्यामि तावन्नगरस्य शोभाम्]

अविमारकः—इदं राजकुलम्।

एतन्नरेन्द्रभवनं निशि जातशङ्को
यत् साहसं समुपलभ्य तथा प्रविष्टः।

अन्वयः—एतत् नरेन्द्रभवनम् यत् अहम् निशि जातशङ्कः तथा साहसम् उपलभ्य प्रविष्टः, भूयः तदेव दिवसे सुसहायमायः सताम् वृन्दमिव पटुः अशङ्कः प्रविशामि।

विदूषक—क्या वह तपस्विनी जीवित है।

अविमारक—मैं प्रार्थना करता हूँ मित्र! शीघ्र चलो।

विदूषक—क्यों तुम समावर्तन किये गये वटु की तरह शीघ्रता करते हो।

अविमारक—मूर्ख! इधर चलो।

विदूषक—खींचो मत, चल ही रहा हूँ।

अविमारक—(चलकर) यह नगर है।

विदूषक—तब तक नगर की शोभा देखता हूँ।

अविमारक—यही राजकुल है।

यही वह राजभवन है जहाँ मैंने रात में डरते-डरते प्रवेश किया था,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूयस्तदेव दिवसे सुसहायमायो
वृन्दं सतामिव पटुः प्रविशाम्यशङ्कः ॥ २२ ॥

(परिक्रम्य) इदानीं प्रसादे स्नातयाभ्यन्तरस्थया कुरङ्गया भवितव्यम् ।

विदूषकः—जहिं वा तहिं वा पविसामो। अदिक्कमदि भिक्खवेला। (यत्र वा तत्र वा प्रविशावः । अतिक्रामति भिक्षावेला ।)

अविमारकः—एहि तावदभ्यन्तरमेव प्रविशावः (प्रविश्य) इह हि,

पुरे गृहे वापि पुरा सुखोषितै-
र्मनस्विभिर्दुर्लभचिन्तयागतैः ।

व्याख्या—एतदिति–एतन्नरेन्द्रभवनम् = तदेतत् सौवीराजभवनम्, यत्= भवनम् अहम्, निशि = रात्रौ, जातशङ्कः = अन्यदर्शनभयाच्छङ्कितः तथा = तेन प्रकारेण साहसम् = चौरचरितम्, उपलभ्य = स्वीकृत्य, प्रविष्टः = मध्यंगतः । तदेव = नृपभवनम् दिवसे = दिने सुसहायमायः = तिरोधानमाया-सहकारेण, सताम् = सज्जनानाम् वृन्दम् = समूहम् इव पटुः = चतुरजन इव अशङ्कः = निर्भयः प्रविशामि = प्रवेशं करोमि ।

भावः—चौर इव यत्र सभयः रात्रौ पूर्वं प्रविष्टोऽहम् ।
मायाबलेन दिवसे निःशङ्कस्तत्र गच्छामि ॥

अन्वयः—पुरे गृहे वा अपि पुरा सुखोषितैः दुर्लभचिन्तया आगतैः मनस्विभिः पुनः कृतार्थैः मुदितान्तरात्मभिः सविशेषकर्मभिः प्रवेष्टुम् सुखम् ।

व्याख्या—पुरे गृह इति–पुरे = नगरे, गृहे = सद्मनि वापि, पुरा = प्रथमम्, सुखोषितैः = सानन्दं कृतनिवासैः, दुर्लभस्य = दुष्प्रापस्य वस्तुनः

आज उसी राजभवन में दिन में ही माया के प्रभाव से वैसा प्रवेश कर रहा हूँ जैसे सज्जनों के समाज में कोई चतुर व्यक्ति निर्भय प्रवेश करता है ॥२२॥

(घूमकर) इस समय राजकुमारी छतपर नहाकर भीतर बैठी होगी ।

विदूषक—जहाँ तहाँ बैठ जाओ । भिक्षा का समय बीत रहा है ।

अविमारक—चलो भीतर चलें (जाकर) यहाँ—

जहाँ नगर या घर में किसी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति की आशा से आकर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुनः कृतार्थैर्मुदितान्तरात्मभिः
सुखं प्रवेष्टुं सविशेषकर्मभिः ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्तौ)

चतुर्थोऽङ्कः

चिन्तया आशया, आगतैः = समायातैः, मनस्विभिः = धीरैः, पुनः, भूयः, कृतार्थैः = समधिगताभीप्सितैः मुदितान्तरात्मभिः = प्रसन्नचेतोभिः सविशेषाकर्मभिः = कार्यविशेषमुद्दिश्यागतैः प्रवेष्टुम् = अन्तर्गन्तुं सुखम् ।

धीर लोग सुख से रह चुके हैं, कृतार्थ होकर प्रसन्न चित्त वाले वे ही कार्य विशेष के लिये पुनः वहां आकर सुख से प्रवेश कर सकते हैं ॥ २३ ॥

(दोनों का प्रस्थान)

चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कुरङ्गी नलिनिका च)

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं सन्दावेण । कण्णाउरप्पासादं आलुहिअ दिट्ठिविलोभणं करिस्सामो । [भर्तृदारिके ! अलं सन्तापेन । कन्यापुरप्रासादमारुह्य दृष्टिविलोभनं करिष्यावः ।]

कुरङ्गी—हला ! किं तुए मम हिअअं परिण्णादं । एत्थ हि अजाणन्तेण परिजणेण मम परितोसणिमित्तं बउलसरलसज्जज्जुण-कदम्बणीवणिउलप्पहुदीणि मेहकालवल्लहाणि परमसुरहीणि आणी-अमाणाणि मं उम्मादअन्ति । अह अ इमे मोरा अम्हाअ राअउल-

---

अलं सन्तापेन = सन्तापो न कार्य्यः, दृष्टिविलोभनम्=रमणीयावलोकनेन मनोविनोदम् । अजानता = मनोव्यथानभिज्ञेन, परितोषनिमित्तम् = मम-घनसोऽनुरञ्जनार्थम्, वकुलः = केशरः, सरलः = देवदारुः, अर्जुनः = कुब्जः, कदम्बः = नीपः, वञ्जुलः = वेतसस्ते प्रभृतयो येषां तानि, वर्षाकालजानि = मेघकालसम्भवानि, परमसुरभीणि=अतिसुगन्धीनि, आनीयमानानि उपह्रिय-मानानि, उन्मादयन्ति = उन्मत्तीकुर्वन्ति । राजकुलमानसे = राजगृहवर्तिनां चित्ते, मयूराः = वर्हिणः, पीठमर्दभावम् = विरहवेदनोपबृंहणम् कुर्वन्ति=विद-धति । अदेशकालज्ञतया=परिस्थितिपरिचयाभावात्, सततलालिता=आत्मीया

(नलिनिका और कुरङ्गी का प्रवेश)

नलिनिका—राजकुमारी सन्ताप न करे, चलिये कन्यापुर के प्रासाद पर चलकर आँखों का अनुरञ्जन करें ।

कुरङ्गी—सखि ! तुमने हमारा हृदय क्या समझा है ? अनभिज्ञ परिजनों द्वारा वरसात में सुखकर अति सुगन्धित वकुल, सरल सर्ज, अर्जुन कदम्ब आदि फूल लाये जाते हैं । उनसे मेरा सन्ताप बढ़ता ही है । ये मयूर इस कन्यापुर में पीठमर्द का काम करते हैं । मैंने इनको पाला है, ये अनभिज्ञ हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

माणसे अदिपीठयद्दभावं करन्ति। अम्हेहि सददलालिदा वि अदेसकालञ्ञदाए अत्तणो अहिकञ्ञभावं दंसेदि। सुअसारिआ वि वक्खाणं एव कहेदुं आरद्धा। मम णिव्वेदभावं अजाणन्ती भूदिअसारिआ वि सव्वलोअवुत्तन्तं कहइस्सामि त्ति आअदा। मम रोआवत्थं पुच्छिदुं आअदो परिजणो मं णिव्वन्धिअ णिवेदेदि। ता इच्छामि मुहुत्तअं पासादे अच्छिदुं। [हला! किं त्वया मम हृदयं परिज्ञातम्। अत्र ह्यजानता परिजनेन मम परितोषनिमित्तं बकुलसरलसर्जार्जुनकदम्बनीपनिचुलप्रभृतीनि मेघकालवल्लभानि परमसुरभीण्यानीयमानानि मामुन्मादयन्ति। अथ चेमे मयूरा अस्माकं राजकुलमानसे अतिपीठगर्दभावं कुर्वन्ति। अस्माभिः सततलालिता अप्यदेशकालज्ञतयात्मनोऽधिकज्ञभावं दर्शयति। शुकसारिकापि व्याख्यानमेव कथयितुमारब्धा। मम निर्वेदभावमजानन्ती भूतिकसारिकापि सर्वलोकवृत्तान्तं कथयिष्यामीत्यागता। मम रोगावस्थां प्रष्टुमागतः परिजनो मां निर्बध्य निवेदयति। तदिच्छामि मुहूर्तकं प्रासादे आसितुम्।]

नलिनिका—ज भट्टिदारिआए रुइदं। होदु। [यद् भर्तृदारिकायै रुचितम्। भवतु।]

अपि, अधिकज्ञभावम् = अनभिज्ञताम्। शुक्यः सारिकाश्च निर्वेदभावम् = मनोव्यथाम्।

विद्युत्प्रदीपं गृहीत्वा = मामन्विष्यमाण इव कालमेघः = कामोद्दीपकतया काल इव कृष्णो मेघः। तेनात्रापि च मे मनः शान्तिमनुभवति।

किन्तु अपनी विशेषज्ञता को प्रकट करते हैं। ये शुकी और सारिकायें अपना व्याख्यान प्रारम्भ कर देती हैं। भूतिक वाली सारिका भी कथा ही करने आई है। मेरी रोगावस्था को जानने के लिये जो दासी आती है, वह हठ करके हमसे कुछ कहलवाना चाहती है। अतः मैं चाहती हूँ कि कुछ काल तक (एकान्त में) कोठे पर बैठूँ।

नलिनिका—आपको जो अच्छा लगे वही हो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(उभे आरोहतः)

कुरङ्गी—हला एत्थ वि महन्ता अणत्थो उट्ठिदो विज्जुप्पदीवं घारिअ कालमेहो । [हला ! अत्रापि महाननर्थं उत्थितो विद्युत्प्रदीपं धृत्वा कालमेघः ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! अलं उक्कण्ठिदेण पेक्ख पेक्ख णवसलिलधररुद्धसुय्यं पविरलजलणिवाददस्सणीअ गअणअलं । [भर्तृदारिके अलमुत्कण्ठितेन । पश्य पश्य नवसलिलधररुद्धसूर्यं प्रविरलजलनिपातदर्शनीयं गगनतलम् ।]

कुरङ्गी—पेक्खामि अ रमणीअं आआसं । [पश्यामि च रमणीयमाकाशम् ।]

(ततः प्रविशत्यविमारको विदूषकश्च)

अविमारकः—वयस्य ! दृष्टा सा कुरङ्गी । यैषा,

रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा
विमुक्तभूषा गतहावभावा ।

नवैः सलिलधरैः = मेघैः, रुद्धसूर्य्यम् = आच्छादितरविम् प्रविरलेन = सततेन जननिपातेन जलपातेन, दर्शनीयम् = रमणीयम् ।

अन्वयः—रोगात् अकालागुरुचन्दनार्द्रा विमुक्तभूषा गतहावभावा निर्व्याजमनोहराङ्गी, हेतुविर्वजिता श्रुतिः = इव विभाति ।

(दोनों प्रासाद पर जाती हैं) ।

कुरङ्गी—यहाँ भी महान् अनर्थ करने वाला विजली रूप दीप लिये काला मेघ उपस्थित है ।

नलिनिका—राजकुमारि ! उत्कण्ठा न करें । देखो-देखो नवीव मेघों ने सूर्य को छिपा लिया, मन्द-मन्द बूदें पड़ रहीं है । आकाश कैसा सुन्दर लग रहा है ।

कुरंङ्गी—रमणीय आकाश को देख रही हूँ ।

(अविमारक और विदूषक का प्रवेश)

अविमारक—मित्र ! देखा तुमने कुरङ्गी को ।

विरहातुरा होने के कारय इसने बिना गुग्गुल के ही चन्दन का लेप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विभाति निर्व्याजमनोहराङ्गी
वेदश्रुतिर्हेतुविवर्जितेव ॥ १ ॥

विदूषकः—भो ! तुट्टो म्हि । तुवं खु सव्वलोए अहं सुरूवो त्ति अत्ताणं आअरसि । जिदो दाणि तत्तहोदीए सहावरमणीएण रूवेण । चिन्तेमि भवदो विओएण इअ तणुआ जादा । एवं पि एसा बालचन्द-लेहा विअ दिट्ठिं तोसेदि । [भोः ! तुष्टोऽस्मि ! त्वं खलु सर्वलोकेऽहं सुरूप इत्यात्मानमाचरसि । जित इदानीं तत्रभवत्याः स्वभावरमणीयेन रूपेण ।

व्याख्या—रोगादिति–रोगात् = विरहातुरत्वात्, अकालागुरुचन्दनार्द्रा = कालागुरुरहितचन्दनपङ्कलिप्ता कालागुरोरुष्णत्वात् त्यागः । विमुक्तभूषा = भूषणरहिता, गतहावभावा = विलासरहिता निर्व्याजमनोहराङ्गी=अनाहार्य सहजसुन्दरी । हेतुविवर्जिता = तर्करहिता वेदश्रुतिः=निगमवाणीव विभाति = शोभते ।

तुष्टोऽस्मि = प्रसन्नोऽस्मि; सर्वलोके = अखिले लोके, अहं सुरूपः = सुभगं-मन्यः । तत्र भवत्याः = माननीया राजकुमार्य्या जितः = पराजितः । भवतो वियोगेन = त्वद्विरहेण तनुका = कृशाङ्गी एवमप्येषा=एवं विधापि सा बालचन्द्रलेखेव = शिशुशशिशकल इव दृष्टिम् रञ्जयति=नयनासेचनं करोति ।

अतिपण्डित इव = पण्डितप्रकाण्ड इव ।

नित्यपरिचयेन=अतिपरिचिततया तथा च जनाः कथयन्ति 'अतिपरिचया-दवज्ञा' इति, अपूर्वो जनः = प्रथमदर्शने लोकः मम बुद्धिमजानन् = अविदित मद्बुद्धिवैभवः । अधिकतरम् प्रशंसति = यथेष्टं ब्रवीति । तज्ज्ञात्वा = अति-परिचयादवज्ञेति जानन् विश्रम्भम् = अतिपरिचयम् ।

किया है । भूषण नहीं पहना है, हाव-भावादि विलासों से रहित है, कल्पित भूषणों के बिना ही सहज सुन्दरी यह तर्क-रहित वेद वाणी के समान शोभा दे रही है ॥ १ ॥

विदूषक—हे जी ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ । सारे संसार में तुम अपने को बड़ा सुन्दर समझते हो । इसने अपनी स्वाभाविक सुन्दरता से तुमको पराजित कर दिया है । मेरा विचार है यह तुमारे वियोग से दुर्बल हो गई है तथापि द्वितीया के चन्द्र की तरह बड़ी भली ज्ञात होती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिन्तयामि भवतो वियोगेनेयं तनुका जाता । एवमप्येषा बालचन्द्रलेखेव दृष्टिं तोषयति]।

अविमारकः—सखे ! अतिपण्डित इव किमेतत् ।

विदूषकः—भो ! णिच्चपरिचएण मं परिहससि । अपुव्वो जणो मम बुद्धि अजाणन्तो अहिअदरं पसंसेदि । अहं पि तं जाणि अ एदस्सिं णअरे केण वि विस्सम्भं ण करेमि । [भोः ! नित्यपरिचयेन मां परिहससि । अपूर्वो जनो मम बुद्धिमजानन्नधिकतरं प्रशंसति । अहमपि तद् ज्ञात्वैतस्मिन्नगरे केनापि विस्रम्भं न करोमि ।]

अविमारकः—अलमौदासीन्येन । बहुजनपरिवारतया न लब्धः क्षणः कान्तां प्रबोधयितुम् । तदिदानीं प्रासादगत मपि तत्रैव तां बोधयिष्यावः ।

विदूषकः—सुट्ठु भवं भणादि । पासादं आलुहामो । [सुष्ठु भवान् भणति । प्रासादमारोहावः ।]

अलमौदासीन्येन=एतादृशीं दुःखितां दृष्ट्वा समाश्वासयितव्या । बहुजनपरिवारतया = परिजनमध्यस्थतया । क्षणः=अवसरः, प्रबोधयितुम् = आश्वासयितुम्, प्रासादगताम् = हर्म्यस्थाम् । प्रासादशब्दः = सोपानारोहणे चरणपातशब्दः ।

उच्छिष्टमकुर्वन्भोक्तुम्=यथोच्छिष्टमविधाय भोक्तुं न शक्यं तथा पादध्वनिमकुर्वतारोहणं दुःशकम् ।

यदि विमुञ्चे दृश्यते भवान् = भवदन्तर्धानत्वं मत्स्पर्शताधीनत्वात् ।

अविमारक—मित्र ! आज महापण्डित लग रहे हो । यह क्या ?

विदूषक—अजी ! अतिपरिचय के कारण तुम मेरा उपहास करते हो, नये लोग जो मेरी बुद्धि को नहीं जानते वे मेरी प्रशंसा करते हैं । इसीलिये ही तो मैं इस नगर में किसी से अधिक परिचय नहीं करता ।

अविमारक—उदासीन होना उचित नहीं हैं । बहुत लोगों के बीच में रहने के कारण मैं प्रियतमा को नहीं समझा सका । इस समय वह प्रासाद पर गयी है वहीं पर उसे समझा दूंगा ।

विदूषक—चलो प्रासाद पर चलें ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—सखे ! प्रयत्नादारोढव्यं यथा तथा न प्रवर्तते प्रासाद-शब्दः ।

विदूषकः— भो ! ण सक्कं एदं । को सकदि उच्छिट्ठं ण करन्तो भुञ्जिदुं । अहं एत्थ चिट्ठामि । तुवं एव आलुह । [भोः ! न शक्य-मेतत् । कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् । अहमत्र तिष्ठामि । त्वमेवारोह ।]

अविमारकः— यदि विमुञ्चे, दृश्यते भवान् ।

विदूषकः—भो ! विस्मरिदं खु मए एदं । पुणो पुणो कहेहि । [भोः ! विस्मृतं खलु मयैतत् । पुनः पुनः कथय ।]

अविमारकः— इतस्तावत् । (आरुह्यावलोक्य) सखे ! इयमस्मत्कान्ता शिलातले नलिनिकया सहास्ते । यैषा,

सव्ये करे समुपवेश्य मुखं सुदीनं
कालं मनोभवसहायममृष्यमाणा ।

अन्वयः—सुदीनम् मुखं सव्ये करे समुपवेश्य मनोभवसहायम् कालम् अमृष्यमाणा अलोलदृष्टिः वाष्पम् निवारयितुम् ऊर्ध्वम् अवेक्षमाणा व्यग्रा किञ्चिद् विचिन्तयति ।

व्याख्या—सव्य इति–सुदीनम् = अतिदीनम्, मुखम् = आननम्, सव्ये = वामे, करे = हस्ते, समुपवेश्य = संस्थाप्य, मनोभवसहायम् = कामसहचरम्

अविमारक—मित्र ! इस प्रकार प्रयास करके चलो कि पैर की आवाज न हो ।

विदूषक—यह सम्भव नहीं है । विना जूठा किये कोई नहीं खा सकता है । मैं यहीं रहता हूँ । तुम चढ़ो ।

अविमारक—यदि मैं छोड़ दूंगा तो तुम दीखने लगोगे ।

विदूषक—अजी यह बात तो मैं भूल ही गया था फिर कहो ।

अविमारक—इधर आओ (चढ़कर तथा देखकर) यही हमारी प्रिया नलिनिका के साथ बैठी है ।

उदास मुख को वायें हाथ पर रखकर काम के सहायक इस वर्षा काल को सहन करने में असमर्थ होती हुई व्यग्रभाव से निश्चल दृष्टि करके कुछ सोच

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

व्यग्रा विचिन्तयति किञ्चिदलोलदृष्टि-
वाष्पं निवारयितुमूर्ध्वमवेक्षमाणा ॥ २ ॥

कुरङ्गी—(स्वगतम्) किं एदेण जीवन्मरणेण। (प्रकाशम्) णलिणिए ! गच्छ माअधिअं आणेहि उवण्हाणेण। [किमेतेन जीवन्मरणेन। नलिनिके ! गच्छ मागधिकामानयोपस्नानेन।]

नलिनिका—एआइणि भट्टदारिअं उज्झिअ कह गमिस्सं। ण हु एत्थ को वि जणो। [एकाकिनीं भर्तृदारिकामुज्झित्वा कथं गमिष्यामि। न खल्वत्र कोऽपि जनः।]

(प्रविश्य)

हरिणिका—जेदु भट्टिदारिआ। भट्टिदारिए। भट्टिणी भणादि—सम्पदि कीदिसी सीसवेदणत्ति। एदं वि ओसधं लिम्पेहि किल। [जयतु भर्तृदारिका। भर्तृदारिके ! भट्टिनी भणति—सम्प्रति कीदृशी शीर्षवेदनेति। एतदप्यौषधं लिम्प किल।]

कुरङ्गी—णलिणिए ! गच्छ दाणि तुवं। तक्केमि देवो वरिसिदुं आरद्धो। अहं इच्छामि अहिणवेण आआसतोएण ण्हादुं। ता तुवारेहि

कालम् = वर्षाकालम्, असहमाना = सोढुमसमर्था अलोलदृष्टिः = स्थिरनयना, वाष्पम् = अश्रु, निवारयितुम् = नियन्तुम्, ऊर्ध्वम् = उपरि अवेक्ष-

---

रही है और आँखों के अश्रु को रोकने के लिये ऊपर की ओर देख रही है।

कुरङ्गी—(स्वगत) इस जीते जी मरने से क्या लाभ ? (प्रकट) नलिनिके ! आओ स्नानोपकरण के साथ मागधिका को बुला लाओ।

नलिनिका—अकेली राजकुमारी को छोडकर कैसे चला जाऊँ ?

(प्रवेश कर)

हरिणिका—जय हो राजकुमारी की ! महारानी ने पूछा है कि इस समय शिर का दर्द कैसा है ? यह दवा भी लगा लेने को कही है।

कुरङ्गी—नलिनिके ! अब तुम जाओ मैं समझती हूँ अब देव बरसने लगे। चाहती हूँ कि इस नये वर्षा-जल से स्नान करूँ। अतः स्नानोपकरण शीघ्र लाओ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उवण्हाणं । [नलिनिके ! गच्छेदानीं त्वम् । तर्कयामि देवो वर्षितुमारब्धः । अहमिच्छाम्यभिनवेनाकाशतोयेन स्नातुम् । तत् त्वरयोपस्नानम् ।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम् ।

कुरङ्गी—हला ! एहि दाव ! [हला ! एहि तावत् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! इअम्हि । [भर्तृदारिके ! इयमस्मि ।]

कुरङ्गी—हला ! णं सीदलं दे सरीरं । [हला ! ननु शीतलं ते शरीरम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! ण जाणामि । [भर्तृदारिके! न जानामि ।]

कुरङ्गी—हला ! एहि परिस्सजेहि मं । [हल ! एहि परिष्वजस्व माम् ।]

नलिनिका—भट्टिदारिए ! तह (परिष्वजते) [भर्तृदारिके ! तथा ।]

कुरङ्गी—हला ! अदिसीदलं मणोहरं च दे सरीरं । [हला ! अतिशीतलं मनोहरं च ते शरीरम् ।]

माणा = पश्यन्ती व्यग्रा = उद्विग्ना किञ्चिद् = किमपि, विचिन्तयति = विचारयति ।

किन्नु खल्वनया व्यवसितम् = इयं किं कर्तुमिच्छति ।

नलिनिका—जो राजकुमारी की आज्ञा ।

अविमारक—यह इस समय क्या करना चाहती है ।

कुरङ्गी—सखि ! इधर आओ ।

नलिनिका—राजकुमारी यह हूँ ।

कुरङ्गी—सखि ! तुम्हारा शरीर शीतल है ।

नलिनिका—राजकुमारी मैं नहीं जानती हूँ ।

कुरङ्गी—आओ मेरा आलिङ्गन करो ।

नलिनिका—राजकुमारी ! अच्छी बात है ।

(आलिङ्गन करती है)

कुरङ्गी—सखि ! तेरा शरीर अत्यन्त शीतल और मनोहर है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—अणुग्गहीदम्हि । [अनुगृहीतास्मि ।]

कुरङ्गी—हला ! सम्पदि णस्सदि विअ मे सरीरदाहो । (स्वगतम्) हन्त किदो सहिप्पणओ । समत्तो अ अज्ज एदाए सरीरससग्गा । (प्रकाशम्) गच्छ दाणि तुवं । [हला ! सम्प्रति नश्यतीव मे शरीरदाहः । हन्त कृतः सखीप्रणयः । समाप्तश्चाद्यैतस्याः शरीरसंसर्गः गच्छेदानीं त्वम् ।]

नलिनिका—जं भट्टिदारिआ आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

हरिणिका—भट्टिदारिए । भट्टिणीए किं णिवेदेमि । [भर्तृदारिके ! भट्टिन्यै किं निवेदयामि ।]

कुरङ्गी—अज्ज विअदरोआ सोत्था होदि त्ति । [अद्य विगतरोगा स्वस्था भवतीति ।]

हरिणिका—कहं तुए विञ्ञादं त्ति पुच्छिदा किं विण्णवेमि । [कथं त्वया विज्ञातमिति पृष्टा किं विज्ञापयामि ।]

कुरङ्गी—सुट्ठु तुए विञ्ञादं । एदेण ओसधविसेसेण त्ति भणेहि । [सुष्ठु त्वया विज्ञातम् । एतेनौषधिविशेषेणेति भण ।]

अद्य निवृत्तरोगा भवतीति—अद्य मृताहं सर्वेभ्यो रोगेभ्यो निवृत्ता भविष्यामीति तात्पर्य्यम् ।

नलिनिका—अनुगृहीत हूँ ।

कुरङ्गी—अब मेरे शरीर का दाह समाप्त हो गया (स्वगत) हाय सखी के प्रति स्नेह कर लिया, अब इसके शरीर का संसर्ग नहीं होगा । (प्रकट) अब तुम आओ ।

नलिनिका—जो राजकुमारी की आज्ञा (जाती है) ।

हरिणिका—महारानी को क्या कहूँगी ।

कुरङ्गी—कह देना अब स्वस्थ एवं निरोग हो गई है ।

हरिणिका—रानी पूछेंगी तुमने कैसे जाना । तो क्या कहूँगी ?

कुरङ्गी—तुमने ठीक समझा है । कह दे इस औषध से ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरिणिका— जं भट्टिदारिआ आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्तृदारिकाज्ञापयति ।]

अविमारकः—किन्नु खल्वनया व्यवसितम् ।

उष्णं श्वसिति तन्वङ्गी सर्वतः प्रेक्षते मुहुः ।
नेत्राभ्यां बाष्पपूर्णाभ्यां किन्नु कर्तुं व्यवस्थिता ॥ ३ ॥

कुरङ्गी - होदु, उत्तरीअवासेण अत्ताणं उब्बन्धिअ वावादइस्सं । (उत्थाय तथा कुर्वती मेघस्तनितं श्रुत्वा) हं परित्ताआहि परित्ताआहि मं । [भवतु, उत्तरीयवाससात्मानमुद्बध्य व्यापादयिष्यामि । हं परित्रायस्व परित्रायस्व माम् ।]

अविमारकः—सखे ! न शक्यमतः परमुपेक्षितुम् । (अङ्गुलीयकं

किन्नु खल्वनया व्यवसितम् = अधुना किमियं विधातुमिच्छति ।

अन्वयः—इयम् तन्वङ्गी उष्णम् श्वसिति मुहुः सर्वतः बाष्पपूर्णाभ्याम् नेत्राभ्याम् प्रेक्षते किन्नु कर्तुम् व्यवस्थिता ।

व्याख्या—उष्णमिति—इयम् तन्वङ्गी = कृशाङ्गी, उष्णम्, श्वसिति= निःश्वासं त्यजति मुहुः = वारंवारम् = सर्वतः = अभितः बाष्पपूर्णाभ्याम् = अश्रुपूर्णाभ्याम् नेत्राभ्याम् = नयनाभ्याम् प्रेक्षते = पश्यति किन्नु कर्तुं व्यवस्थितां = किं कर्तुमिच्छति ॥ ३ ॥

उत्तरीयवाससा = उत्तरीयवसनेन, उद्बध्य = गलमूर्ध्वं बध्वा । आत्मानम् व्यापादयिष्यामि = स्वप्राणान् त्यक्ष्यामि ।

हरिणिका—राजकुमारी की जैसी आज्ञा (जाती है)

अविमारक—यह क्या करना चाहती है—

यह कृशाङ्गी गरम श्वास ले रही है, वारवार चारो तरफ अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखती है, क्या करना चाहती है ॥ ३ ॥

कुरङ्गी—अच्छा इसी उत्तरीय से फाँसी लगाकर अपना प्राणत्याग दूंगी (उठकर फाँसी लगाकर मेघ का शब्द सुनकर) मुझे बचाओ बचाओ ।

अविमारक—मित्र ! इसके बाद उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वामाङ्गुल्यां प्रक्षिप्य) कान्ते ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । (इति कुरङ्गी-मुत्थापयति)

कुरङ्गी—(सहर्षम्) किण्णु खु सच्चं एदं । मूढा विअ जादा । [किन्नु खलु सत्यमेतत् । मूढेव जाता ।]

अविमारकः—कान्ते । व्यपनीयतां शङ्का । (परिष्वजते)

कुरङ्गी—अच्छरीअं एक्कक्खणेण णस्सदि विअ मे सरीरदाहो । [आश्चर्यम् । एकक्षणेन नश्यतीव मे शरीरदाहः]

अविमारकः—अयं खल्वस्याः परिष्वङ्गः,

सततपरिचितो मनोभियोगा-
दधिकरसः प्रथमात् समागमात् ।

अन्वयः—मनोऽभियोगात् सततपरिचितः (अपि) प्रथमात् समागमात् अधिकरसः यः अद्य नृपेण रणशिरसि साहसात् विजय इव मया अनुभूयते ।

व्याख्या—सततेति–मनसोभियोगस्तस्मात् = गाढचित्तासङ्गात् सततपरिचितः=निरन्तरं पूर्वानुभूतः, प्रथमात्=पूर्वकालजातात् समागमात्=संसर्गात् अधिको रसो यत्र तथाभूतः = अत्यन्तसुखजनकः अज्ञातविषयगतवैशिष्ठ्यस्य पूर्वरागपुरःसरसंयोगात् लब्धविषयगतविशेषानुभूतेः विप्रलम्भपुरःसर-सम्भोगस्याधिकसुखकरत्वात् । उक्तं हि-न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टि-मश्नुते, कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागः प्रवर्धते इति । यः=संयोगः अद्य= अस्मिन् काले, नृपेण=राज्ञा, रणशिरसि = समरमूर्ध्नि साहसात् = अवहेलिता-

---

(अँगूठी बायें हाथ में पहनकर) प्रिये ! मत डरो मत डरो । (कुरङ्गी को उठाता है) ।

कुरङ्गी—(सहर्ष) क्या सत्य है, मैं मूर्छित सी हो रही हूँ ।

अविमारक—शङ्का दूर करो (आलिङ्गन करता है) ।

कुरङ्गी—एक ही क्षण में मेरा शरीर का दाह दूर हो गया ।

अविमारक—इसका यह आलिङ्गन ।

मन की विशेष आसक्ति के कारण पूर्व काल में निरन्तर परिचित भी यह आलिङ्गन आज विशेष सुखदायी प्रतीत हो रहा है जैसे कोई राजा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रणशिरसि नृपेण साहसाद्यो
विजय इवाद्य मयानुभूयते ॥ ४ ॥

विदूषकः—कहं रोदिदुं आरद्धा। अलं अदिमत्तं सन्दावेण। अहव अहं वि रोदामि। एक्कं पि तहिं दुल्लहं मम णअणादो बप्फं ण णिग्गच्छइ। जदा मे पिदा उवरदो, तद वि महन्तेण आरम्भेण रोदिदुं आरद्धो। बप्फं ण णिग्गच्छइ किं पुण अण्णसन्दावस्स। तह वि अणुस्सुओ रोदामि। [कथं रोदितुमारब्धा। अलमतिमात्रं सन्तापेन। अथवा अहमपि रोदिमि। एकमपि तत्र दुर्लभं मम नयनाद् वाष्पं न निर्गच्छति। यदा मे पितोपरतस्तदापि महतारम्भेण रोदितुमारब्धः। बाष्पं न निर्गच्छति। किं पुनरन्यसन्तापस्य। तथाप्यनुत्सुको रोदिमि।]

अविमारकः—अलमुत्प्रहसितेन। अच्छलो हि स्नेहो नाम।

रमविपत्पूर्वकाक्रमणात्, विजयः=शत्रुपराजयः इव, अनुभूयते=अधिकसौख्यकरप्रतीयते ॥ ४ ॥

आरब्धा—प्राक्रमत्, अलमतिमात्रे सन्तापेन=सन्तापो न कर्तव्यः, उपरतः=मृतः, महता संरम्भेण=अत्यन्तेन प्रयत्नेन, रोदितुं प्रारब्धः=रोदनं प्रारब्धवान्, किं पुरन्यसन्तापस्य = महाकष्टप्रदे पितृमरणेऽपि यो न रोदितुमशकत् सोऽन्यकष्टे कथं रुदियात्।

उत्प्रहसितेत = साभिप्रायहास्येन।

युद्ध क्षेत्र में साहस पूर्वक (आक्रमण के बाद) विजय प्राप्त करने पर विशेष आनन्द को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

विदूषक—यह रोने क्यों लगी ? सन्ताप नहीं करो; अथवा मैं भी रोता हूँ। मेरी आँखों में आँसू आते ही नहीं, जब हमारे पिता मरे थे तब भी मैंने रोने का प्रयास किया था परन्तु रो नहीं सका तो दूसरे सन्ताप में कैसे रोऊँ।

अविमारक—मन में कुछ रखकर हँसने की आवश्यकता नहीं। प्रेम में छल नहीं किया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न ते न बुद्धिर्मम दूषणीया
येन प्रकामं भवितास्मि हास्यः।
प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ॥ ५ ॥

(प्रविश्य)

नलिनिका—हरिणिए ! हरिणिए ! । कहं दुवारं रुद्धं । हद्धि दुवारणिरोहेण अवअदसन्दावं अत्ताणं करिस्सदि त्ति तक्केमि । हरिणिए ! हरिणिए ! हद्धि तं एव संवुत्तं । [हरिणिके ! हरिणिके ! कथं द्वारं रुद्धम् । हा धिग् द्वारनिरोधेनापगतसन्तापमात्मानं करिष्यतीति तर्कयामि । हरिणिके ! हरिणिके ! हा धिग् तदेव संवृत्तम् ।]

अन्वयः—न ते न मम बुद्धिः दूषणीया येन प्रकामम् हास्यः भवितास्मि, कार्ययोगे प्राज्ञस्य मूर्खस्य च तनुः समत्वम् अभ्येति न बुद्धिः ।

व्याख्या—न ते इति–न ते=तव न, मम=मे, बुद्धिः = मतिः, दूषणीया= दूषयितुम् योग्या = अर्हा । येन = कारणेन प्रकामम् = अत्यन्तम् हास्यः = उपहसनीयः, भवितास्मि = भविष्यामि, कार्ययोगे = अर्थस्य साधने, प्राज्ञस्य = अभिज्ञस्य, मूर्खस्य = मूढस्य, तनुः = शरीरम्, समत्वम् = तुल्यताम् अभ्येति = प्राप्नोति, बुद्धिः = मतिर्न समत्वमेति । कस्मिन्नपि कार्य्ये शरीरव्यापारसमत्वेऽपि विचारे महान् भेदः पण्डितस्य मूर्खस्य च ।

तदुक्तं भगवता गीतायाम्,

सक्ता कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्य्याद् विद्वान् तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

द्वारनिरोधेन = द्वारि कपाटसंघटनेन, अपगतसन्तामात्मानं = प्राणत्यागेन

यहाँ पर न तुम्हारी और न मेरी बुद्धि दूषित करने योग्य है जिससे मैं अत्यन्त उपहास के योग्य हूँ । कार्य्य सिद्धि में प्राज्ञ और मूर्ख का शरीर का योग समान होता है किन्तु विचार भिन्न-भिन्न होते हैं ॥ ५ ॥

नलिनिका—हरिणिके ! हरिणिके ! हाय क्यों द्वार बन्द है, द्वार बन्द करने से ज्ञात होता है कि यह द्वार बन्द करने से अपने को विरह-सन्ताप से रहित करना चाहती है ! हाय ! आखिर वही हुआ जिसकी आशंका थी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—नलिनिकाया इव स्वरः ! वयस्य ! विघाटचतां द्वारम् ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (विघाटच) एदु एदु भोदी । [यद् भवानाज्ञापयति । एत्वेतु भवती ।]

नलिनिका—हं की दाणिं एसो पुरिसो। [हम् ! क इदानीमेष पुरुषः ।]

विदूषकः—सुट्ठु विञ्ञादं तुए । अहो राअउलस्स विसेसो । को अण्णो जणो मं पेक्खिअ पुरिसो त्ति भणादि । इत्थिआ खु अहं । [सुष्ठु विज्ञातं त्वया । अहो राजकुलस्य विशेषः । कोऽन्यो जनो मां प्रेक्ष्य पुरुष इति भणति । स्त्री खल्वहम् ।]

अविमारकः—नलिनिके ! प्रविशेदानीम् ।

नलिनिका--कहं भट्टिदारओ। भट्टिदारअ ! वन्दामि । भट्टिदारअ ! को एसो पुरिसो । [कथं भर्तृदारकः ! भर्तृदारक ! वन्दे । भर्तृदारक ! क एष पुरुषः ।]

विदूषकः—अहूं पुक्खरिणी णाम । [अहं पुष्करिणी नाम चेटी ।]

व्यपगतविरहवेदनम्, विपाटचताम् = विव्रियताम् । राजकुलस्य विशेषः= अन्यत्रासदृशो व्यवहारः ।

अविमारक—नलिनिका की आवाज ज्ञात हो रही है। मित्र ! द्वार खोल दो ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा । (खोलकर) आप आइये ।

नलिनिका—हैं ! इस समय यह कौन पुरुष है ।

विदूषक—आपने खूब पहचाना ? राजकुल की यह विशेषता है। दूसरा कौन आदमी मुझे देखकर पुरुष कह सकता हैं । मैं तो औरत हूँ ।

अविमारक—नलिनिके ! इस समय भीतर आओ ।

नलिनिका—क्या राजकुमार ! राजकुमार को नमस्कार, यह कौन पुरुष है ।

विदूषक—मैं पुष्करिणी नाम की दासी हूँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—योऽस्माभिः सदा कथ्यते सन्तुष्ट इति, सोऽयं ब्राह्मणः।

नलिनिका—आ दिट्ठपुरुवो णअरापणालिन्दे अअं बम्हणो। [आ दृष्टपूर्वो नगरापणालिन्देऽयं ब्राह्मणः।]

विदूषकः—आम भोदि। जण्णोपवीदेण बम्हणो, चीवरेण रत्तपडो। जदि वत्थं अवणेमि, समणओ होमि। भोदि! किं एदं। [आम भवति! यज्ञोपवीतेन ब्राह्मणः, चीवरेण रक्तपटः यदि वस्त्रमपनयामि श्रमणको भवामि। भवति! किमेतत्।]

नलिनिका—भट्टिदारिआए उवण्हाणं [भर्तृदारिकाया उपस्नानम्]

विदूषकः—किं एदिणा बुभुक्खिदाए रोदन्तीए अत्तहोदीए उवण्हाणेण कय्यं। गच्छ सिग्घं भोअणं आणेहि। अहं अग्गासणीओ होमि। [किमेतेन बुभुक्षिताया रुदन्त्या अत्रभवत्या उपस्नानेन कार्यम्। गच्छ शीघ्रं भोजनमानय। अहमग्राशनीयो भवामि।]

नगरापणालिन्दे = क्वापि नगरापणबहिर्भागे। चीवरेण = कर्पटखण्डेन; उपस्नानम् = स्नानोपकरणम्। बुभुक्षितायाः = क्षुधार्तायाः उपस्नानेन = स्नानोपकरणेन, बुभुक्षितायै भोजनं देयम् न तु स्नानोपकरणम्। ब्राह्मणोऽग्राशनीयः गृहस्थैर्हि भोजनात्पूर्वं ब्राह्मणेभ्यो दीयते ततः पूर्वं मह्यं देयमित्यर्थः। अनेकपुरुषसम्पाते = बहुजनसङ्कुले दिवसे कथं भवान् प्रविष्टः कन्यापुरे कथमायातः। भर्तृदारकः = राजकुमारः।

अविमारक—जिस सन्तुष्ट की सदा चर्चा किया करते थे वही यह ब्राह्मण है।

नलिनिका—इस ब्राह्मण को नगर के बाजार में मैंने देखा था।

विदूषक—हाँ मैं यज्ञोपवीत से ब्राह्मण हूँ, कपड़े से रक्तपटधारी योगी हूँ। यदि कपड़ा उतार दूं तो बौद्ध संन्यासी बन सकता हूँ, यह क्या है।

नलिनिका—यह राजकुमारी के लिये स्नान का उपकरण।

विदूषक—भूख से रोती हुई राजकुमारी को स्नानोपकरण की क्या आवश्यकता है? जाओ शीघ्र भोजन लाओ। पहले मैं उसमें से थोड़ा भोजन कर लूंगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—दुब्बम्हण ! एदं पि भोअनं चिन्तेसि। सव्वं दाव चिट्ठदु। कहं दिअसे अणेअपुरुससम्पादे राअमग्गे भट्टिदारओ पविट्ठो। [दुर्ब्राह्मण ! एतदपि भोजनं चिन्तयसि। सर्वं तावत् तिष्ठतु। कथं दिवसेऽनेकपुरुषसम्पाते राजमार्गे भर्तृदारकः प्रविष्टः]

अविमारकः—सर्वं भवत्यै सन्तुष्टः कथयिष्यति।

नलिनिका—विसज्जिदम्हि इमिणा बहुमाणवअणेण। भोदु, इमं गह्लिअ चउस्सालं पविसिअ गोट्ठीजणेण सह वुत्तन्तं सुणामि। एहि बम्हण ! (इत्याकर्षति।) [विसर्जितास्म्यनेन बहुमानवचनेन। भवतु, इमं गृहीत्वा चतुःशालं प्रविश्य गोष्ठीजनेन सह वृत्तान्तं शृणोमि। एहि ब्राह्मण !।]

विदूषकः—अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं। [अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।]

कुरङ्गी—हस्सो खु अअं बम्हणो। [हास्यः खल्वयं ब्राह्मणः।]

विसर्जिताऽस्मि = स्थानान्तरं गन्तुमाज्ञप्ताऽस्मि। बहुमानवचनेन = आदरसूचकवचनेन, गोष्ठीजनेन = सखीसमूहमध्ये, प्रवेशवृत्तान्तम् = इह प्रवेशरहस्यम्। हास्यः = उपहसनीयः। अश्रद्धेयम् = अविश्वसनीयम्, आत्मनोऽवस्थाम् विरहावस्थाम्, किमपि कर्तुं व्यवसिता = मरणार्थमुद्युक्ता, मेघशब्दं श्रुत्वा=घनगर्जितमाकर्ण्य, तद् विस्मृत्य = अनवधार्य। याचे=प्रार्थये, आगन्तुकस्य = अतिथेः। नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति घृतश्रवणमात्रेण न पित्तं नश्यति किन्तु भोजनेन। मम हस्तेऽर्पयाभरणं न केवलं ब्रूहि।

नलिनिका—अभागा ब्राह्मण यहाँ भी भोजन को ही सोचता है। छोड़ो सारी बातों को। दिन में बहुत लोगों से भरे राजमार्ग में राजकुमार ने किस प्रकार यहाँ प्रवेश किया।

अविमारक—सारा समाचार आपको सन्तुष्ट बतायेगा।

नलिनिका—इस आदर वचन से यह मुझे यहाँ से जाने का सङ्केत कर रहे हैं इसको लेकर चतुःशाल में जाती हूँ। वहाँ सखियों के साथ सारा वृत्तान्त सुनूंगी। चलो ब्राह्मण देवता।

विदूषक—अनर्थ हो गया, अनर्थ हो गया।

कुरङ्गी—यह ब्राह्मण बड़ा हँसमुख है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—वयस्य । हास्यः खलु भवान् ।,

विदूषकः—को एत्थ मम अस्सद्धअं भणादि । अहं ण हस्सो, तत्तहोदी एव हस्सा । जा अत्तणा अवत्थ जाणिअ किं पि कत्तुं ववसिअ मेहसद्दं सुणिअ सव्वं विसुमरिअ पडिदा । [कोऽत्र ममाश्रद्धेयं भणति । अहं न हास्यः, तत्रभवत्येव हास्या । यात्मनोऽवस्थां ज्ञात्वा किमपि कर्तुं व्यवस्य मेघशब्दं श्रुत्वा सर्वं विस्मृत्य पतिता ।]

कुरङ्गी—ह एदं पि इमेहि दिट्ठं । [हम् ! एतदप्याभ्यां दृष्टम् ।]

नलिनिका—याचेमि अहं । इदो एहि बम्हण ! [याचेऽहम् । इत एहि ब्राह्मण ! ।]

विदूषकः—जइ भोअणं देसि, तदो गच्छामि अहं । इट्ठं आअन्तुअस्स भोअणदाणं । [यदि भोजनं ददासि, ततो गच्छाम्यहम् । इष्टमागन्तुकस्य भोजनदानम् ।]

नलिनिका—एहि मे सव्वाभरणं देसि । [एहि मे सर्वाभरणं ददामि ।]

विदूषकः—णहि घिदवअणेण पित्तं णस्सदि । मम हत्थगदं करेहि । [नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति । मम हस्तगतं कुरु ।]

उन्मुच्य = शरीरान्निःसार्य; चतुःशालं गत्वा श्रोष्यामि अतस्तत्रैव गत्वा, गोष्ठीजनेन = सखीसमुदायसमक्षम् भण । तत्रभवतीं = माननीयां राजकुमारीमापृच्छ्य ।

अविमारक—

विदूषक—कौन मुझे अविश्वस्त कहता है, मैं नहीं राजकुमारी हँसी के योग्य है जो अपनी अवस्था को जानकर कुछ करने जा रही थी । मेघ का शब्द सुनकर सब भूलकर गिर पड़ी ।

कुरङ्गी—अरे इन लोगों ने यह भी जान लिया है ।

नलिनिका—ब्राह्मण मैं प्रार्थना करती हूँ इधर आओ ।

विदूषक—यदि मुझे भोजन दोगी तो, मैं चलूँगा । अतिथि को भोजन कराना उचित है ।

नलिनिका—चलो मैं अपना सारा भूषण तुम को दूंगी ।

विदूषक—घी का नाम लेने से पित्त शान्त नहीं होता है, मेरे हाथ में दो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नलिनिका—एवं होदु । [(आभरणान्यवमुच्य ददाति) एवं भवतु ।]

विदूषकः—सुणादि होदी । [शृणोतु भवती ।]

नलिनिका—मूढ ! बम्हण ! चउस्साले उववििसिअ गोट्ठीजणेण सह सुणामि । [मूढ ! ब्राह्मण ! चतुःशाल उपविश्य गोष्ठीजनेन सह शृणोमि ।]

विदूषकः—तत्तहोदीं पुच्छिअ आअच्छामि । [तत्रभवतीं पृष्ट्वा गच्छामि ।]

नलिनिका—कोतुवं, मम सव्वाभरणं गह्णिअ वल्लहो जादो । एहि दाव । (विदूषकं हस्ते गृह्णाति ।) [कस्त्वं, मम सर्वाभरणं गृहीत्वा वल्लभो जातः । एहि तावत् ।]

विदूषकः—भोदि ! मा मा एवं । अदिसुमारो खु अहं । [भवति ! मा मैवम् । अतिसुकुमारः खल्वहम् ।]

नलिनिका—जाणामि जाणामि दे सुउमारत्तणं । जइ सुउमारो, सिग्धं एहि ।[जानामि जानामि ते सुकुमारत्वम् । यदि सुकुमारः शीघ्रमेहि।]

परमदर्शनीयान् = अत्यन्तमनोहरान्, प्रावृट्कालवल्लभान्=वर्षासमयमनोहरान् कालमेघान् = कृष्णजलदान् ।

नलिनिका—अच्छा ऐसा ही हो ।

(अपना भूषण उतार कर देती है ।)

विदूषक—सुनिये ।

नलिनिका—मूर्ख ब्राह्मण ! चतुःशाल में चलकर सखियों के सामने सुनूंगी ।

विदूषक—माननीया राजकुमारी से पूछ लूं ।

नलिनिका—तुम कौन हो राजकुमारी से पूछने वाले, मेरे सारा भूषण लेकर मालिक बन बैठे हो चलो । (विदूषक का हाथ पकड़कर)

विदूषक—ऐसा मत खींचों मैं बहुत सुकुमार हूँ ।

नलिनिका—मैं तुम्हारी सुकुमारता को जानती हूँ । सुकुमार हो तो शीघ्र चलो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विदूषकः—भोदि ; अअं आअच्छामि । [भवति ! अयमागच्छामि ।]

(निष्क्रान्तौ)

अविमारकः—प्रिये ! पश्य पश्य परमदर्शनीयान् प्रावृट्कालवल्लभान् कालमेघान् । इमे हि,

जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजृम्भका वज्रभृद्गृष्टयो
भगणयवनिकास्तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूता नभोमार्गरूढक्षुपाः ।

अन्वयः—जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूपक्रियाजृम्भकाः वज्रभृद्गृष्टयः भगणजवनिकाः तडित्पन्नगीवासवल्मीकभूताः नभोमार्गरूढक्षुपाः मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः गिरिस्नापनाम्भोघटाः उदधिसलिलभैक्षहाराः रवीन्द्वर्गलाः देवयन्त्रप्रपा नीलाम्बुदाः भान्ति ।

व्याख्या—जलदसमयेति—जलदसमयस्य = वर्षाकालस्य घोषणायाः = वर्षाकालः समागत इत्युच्चैर्घुष्टस्य, आडम्बरा सारोपा या अनेकक्रियाः = अनेकविधव्यापारास्तासां जृम्भकाः = वर्धकाः, वज्रभृतः = इन्द्रस्य गृष्टयः = सकृत्प्रसूता गावः, भगणानाम् = नक्षत्रसमूहानाम्, जवनिकाः = तिरस्करिण्यः तिरोधायकाः, तडित एव पन्नग्यस्तासां निवासस्थानवल्मीकरूपाः वालूरसमाः नभोमार्गे = आकाशपथे रूढक्षुपाः = प्ररूढस्वल्पकायभूरुहाः, मदनशरनिशानशैलाः = कामशिलीमुखसन्तेजनशाणप्रस्तराः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपालाः = मानिनीनां मानमपनीय प्रियैः सह सन्धानकारिणः, गिरीणां = पर्वतानां

विदूषक—भद्रे ! अभी आ रहा हूँ ।

(दोनों जाते है)

अविमारक—प्रिये देखो-देखो इन अत्यन्तदर्शनीय वर्षा काल के प्रिय काले मेघों को ये सब—

ए काले मेघ वर्षाकाल के आने की सूचना देने वाली आक्षेपपूर्वक अनेक क्रियाओं को बढ़ा रहे हैं । ये इन्द्र की प्रथम प्रसूता गौ रूप हैं, नक्षत्रों को छिपाने के लिये पर्दा हैं बिजली रूप नागिन के निवास स्थान रूप वामी भी है । आकाश मार्ग में उसे क्षुप वृक्ष हैं; कामवाणों को समुत्तेजित करने के लिये शाण हैं, रुष्ट स्त्री को प्रियतम के साथ सन्धि कराने वाले हैं, पर्वतों को स्नान कराने के लिये जल-घट हैं; समुद्र के जलों की भिक्षाका वाले हैं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मदनशरनिशानशैलाः प्ररुष्टाङ्गनासन्धिपाला गिरिस्नापनाम्भोघटाः
उदधिसलिलभैक्षहारा रवीन्द्वर्गला देवयन्त्रप्रपा भान्ति नीलाम्बुदाः ॥

कुरङ्गी—अय्यउत्त ! दस्सणीआ दाणिं संवुत्ता। [आर्यपुत्र ! दर्शनीया इदानीं संवृत्ताः ।]

अविमारकः—अहो विपुलता विरलता धाराणाम् । तथा हि—

व्योमार्णवोर्मिसदृशा निनदन्ति मेघा
मेघप्ररोहसदृशाः प्रपतन्ति धाराः ।
रक्षोङ्गनाभ्रुकुटिवत् तडितः स्फुरन्ति
प्राप्तोऽग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः ॥ ७ ॥

स्नापने = स्नानविधौ अम्भोघटाः=जलकुम्भाः उदधेः=समुद्रस्य सलिलानि एव भैक्षम् तद्धरन्तीति तथाभूताः = जलधिजलसमादनशीलाः । रवीन्द्वर्गलाः = सूर्य्यस्य चन्द्रमसश्च अर्गलाः पिधानकाः देवस्येन्द्रस्य यन्त्रप्रपाः = यान्त्रिकप्रपारूपाः नीलाम्बुदाः = श्यामघनाः भान्ति = शोभन्ते । रूपकालङ्कारः दण्डकवृत्तम् ।

इदानीं दर्शनीयाः संवृत्ताः त्वद्विरहकाले तु कामोत्तेजकत्वात् महाकष्टदायका आसन् । विपुलता = समधिकता, विरलता = विरम्य भाविता ।

अन्वयः—मेघाः व्योमार्णवोर्मिसदृशाः निपतन्ति, धारा मेघप्ररोहसदृशाः निपतन्ति, तडितः रक्षोऽङ्गनाभ्रुकुटिवत् स्फुरन्ति उग्रयौवनघनस्तनमर्दकालः प्राप्तः ॥ ७ ॥

चन्द्रमा और सूर्य्य को ढाँकने वाले तथा देवनिर्मित यन्त्र के पौसरे के समान शोभ रहे हैं ॥ ६ ॥

कुरङ्गी—अब ये मेघ देखने के लायक लग रहे हैं।

अविमारक—अहो कभी कम कभी जोरों से हो रही यह वर्षा कैसी सुन्दर रात होती है आकाश रूपी सागर के तरङ्ग के समान मेघ गरज रहे हैं, मेघ रूपी वट वृक्ष के प्ररोह के समान धारा गिर रही हैं। राक्षसी की कुटिल दृष्टि के समान बिजली चमक रही है। यह उत्कट यौवन वाली स्त्रियों के स्तनमर्दन का समय आ गया है ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुरङ्गी—अय्यउत्त ! आरद्धो संम्पदि वरिसिदुं देवो । [आर्यपुत्र ! आरब्धः सम्प्रति वर्षितुं देवः ।]

अविमारकः—प्रिये ! एहि अभ्यन्तरमेव प्रविशावः ।

कुरङ्गी—(सहर्षम्) जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्तौ)

पञ्चमोऽङ्कः ।

व्याख्या—व्योमार्णव इति–मेघाः = जलदाः, व्योमार्णवोर्मिसदृशाः = आकशसागरतरङ्गसमाः निनदन्ति = शब्दायन्ते । धाराः = जलासारः मेघप्ररोहसदृशाः = जलदवृक्षप्ररोहाकाराः प्रपतन्ति = अध आगच्छन्ति तडितः = क्षणप्रभा, रक्षोऽङ्गनाभ्रुकुटिवत् = राक्षसीकुटिलदृष्टिवत्, स्फुरन्ति = द्योतन्ते, उग्रयौवनानाम् = गाढतारुण्यानाम्, स्तनयोः = कुचयोः मर्दकालः = गाढपीडनसमयः सम्प्राप्तः = समागतः । अतस्त्वं गेहं प्रविशेति ध्वनिः ।। ७ ।।

देवो वर्षितुमारब्धः = वृष्टिः प्रारब्धा, अभ्यन्तरम् = गृहमध्यम् ।

कुरङ्गी—आर्यपुत्र ! देव अब बरसना आरम्भ कर दिये ।

अविमारक—प्रिये ! आओ हमलोग भीतर चलें ।

कुरङ्गी—आर्यपुत्र की कैसी आज्ञा ।

(दोनों का प्रस्थान)

पञ्चम अङ्क समाप्त हुआ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति धात्री ।)

धात्री—अहो अणवत्था किदन्तस्स, जं राअदारिआ पढमं महाराएण सोवीरराएण तं विह्णुसेणं उद्दिसिअ वरिदा। अज्ज अविदिअसम्भवेण माणुमलोअदुल्लभाकिदिगुणविसेसेण केण वि संओओ जादो। अहम दाणि कासिराअपुत्तो जअवम्भा णाम भट्टिणीए सुदस्सणाए सह अमच्चेण भूदिएण आणीदो सम्पदि राअउलं पविट्ठो। सअं किल कासिराओ जण्णवावारेण ण आअदो। किंणु खु एदं भविस्सदि। [अहो अनवस्था कृतान्तस्य, यद् राजदारिका प्रथमं महाराजेन सौवीरराजेन तं विष्णुसेनमुद्दिश्य वृता। अद्याविदितसम्भवेन मानुषलोकदुर्लभाकृतिगुणविशेषेण केनापि संयोगो जातः। अथ चेदानीं काशिराजपुत्रो जयवर्मा नाम भट्टिन्या सुदर्शनया सहामात्येन भूतिकेनानीतः संप्रति राजकुलं प्रविष्टः। स्वयं किल काशिराजो यज्ञव्यापारेण नागतः किन्नु खल्वेतद् भविष्यति।]

अहो कृतान्तस्य अनवस्था = दैवस्यानिश्चितता आश्चर्यरूपा। विष्णुसेनमुद्दिश्य वृता = स्वपुत्राय विष्णुसेनाय दातुं प्रार्थिता अविदितसम्भवेन = अज्ञातजन्मना, अविदितवृत्तेनेत्यर्थः। मानुषलोकदुर्लभाकृतिगुणविशेषेण = मनुष्यलोके दुर्लभा आकृतिर्गुणविशेषो यस्य तेन = लोकोत्तराकारगुणसम्पत्सम्पन्नेन, केनापि संयोगो जातः अज्ञातेन संयोगो जातः। यज्ञव्यापारेण = यज्ञक्रियानुपक्ततया। किन्नु खल्वेतद् भविष्यति = सौवीरराजपुत्राय, काशीराजपुत्राय राजपुत्र्या सहानन्यभावेनानुरक्तायापरिचिताय वा कस्मै राजपुत्री प्रदेयेति शंसये किं भविष्यतीति तात्पर्यम्।

धात्री—भाग्य कितना अस्थिर होता है, राजकुमारी का विवाह महाराज ने सौवीरराज के पुत्र विष्णुसेन के साथ स्थिर किया था, आज अज्ञात कुल अतिमानव गुण वाले किसी के साथ हो गया है। अब भूतिक अपने साथ काशीराज के पुत्र जयवर्मा को उसकी माता के साथ ले आये हैं। काशीराज यज्ञ में लगे रहने कारण नहीं आ सके हैं। देखें क्या होता है कोई निश्चित नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ततः प्रविशति वसुमित्रा ।)

वसुमित्रा—अहो विसमसीला संवच्छरिआ णाम अत्तणो णक्खत्त-विसेसं एव्वं चिन्तअन्ति, कम्मगोरवं ण जाणन्ति । अज्ज पविट्ठो कुमारो, अज्ज एव विवाहो णिउत्तो । (परिक्रम्य) किण्णु खु जअदा इअं किं वि चिन्तअन्ती अप्पसण्णा विअ उस्सुआ दीसइ । जअदे ! भट्टिणी भणादि—आअच्छेहि त्ति । [अहो विषमशीलाः सांवत्सरिका नामात्मनो नक्षत्रविशेषमेव चिन्तयन्ति, कर्मगौरवं न जानन्ति । अद्य प्रविष्टः कुमारोऽद्यैव विवाहो नियुक्तः । किं नु खलु जयदेयं किमपि चिन्तयन्त्यप्रसन्नेवोत्सुका दृश्यते । जयदे ! भट्टिनी भणति—आगच्छेति ।]

धात्री—हला ! जाणासि किं णिमित्तं त्ति । [हला ! जानासि किं निमित्तमिति ।]

वसुमित्रा—किं अण्णं, एदस्सिं कय्ये कत्तव्वं चिन्तेदुं । [किमन्यत्, एतस्मिन् कार्ये कर्तव्यं चिन्तयितुम् ।]

विषमशीलाः = विपरीतस्वभावाः सांवत्सरिकाः = ज्योतिर्विदः । नक्षत्रविशेषमेव = शुभमुहूर्तमेव, कार्यगौरवम् = कर्तव्यार्थस्य महत्त्वम् , अद्यप्रविष्टः = समायातः, निर्धारितः = निश्चितः, एतावतो विवाहसमारोहस्याल्पकालभाविता कथमिति विचारासमर्थता तेषाम् ।

(वसुमित्रा का प्रवेश)

वसुमित्रा—ज्योतिषी लोग बड़े विचित्र स्वभाव वाले होते हैं, ये लोग अपने मुहूर्त का ही विचार करते हैं, किसी कार्य्य का महत्व नहीं जानते हैं । आज ही राजकुमार आये और आज ही विवाह का मुहूर्त स्थिर कर दिया । क्यों यह जयदा कुछ सोचती सी अप्रसन्न दीख रही है । जयदे ! महारानी की आज्ञा है कि आओ ।

धात्री—सखि जानती हो क्यों महारानी जयदा को बुला रही हैं ।

वसुमित्रा—और क्या हो सकता है इसी विषय में कर्तव्य-निर्णय करने के लिये बुलायी होंगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धात्री—सम्पदि भट्टिणीए को अभिप्पाओ । [संप्रति भट्टिन्याः कोऽभिप्रायः ।]

वसुमित्रा—अत्तणो वंसजादस्स विह्णुसेणस्स अवत्थं अजाणिअ णेच्छदि जअवम्मणो दारिअं दादुं । किन्तु महाराओ सोवीरराअउत्तं अजाणन्तो अज्ज किल अहिअसन्दावो जादो । [आत्मनो वंशजातस्य विष्णुसेनस्यावस्थामज्ञात्वा नेच्छति जयवर्मणे दारिकां दातुम् किन्तु महाराजः सौवीरराजपुत्रमजानन्नद्य किलाधिकसन्तापो जातः ।]

(प्रविश्य)

नलिनिका—अज्ज किदसङ्केदा विअ अम्हाअं सव्वसङ्कडा । (परिक्रम्यावलोक्य) किण्णु हु एसा मम मादा वसुमित्ताए सह किं वि चिन्तेदि । इमं उपसप्पिअ असुहवुत्तन्तं सुणामि । [अद्य कृतसंकेतानीवास्माकं सर्वसंकटानि । किं नु खल्वेषा मम माता वसुमित्रया सह किमपि चिन्तयतिं । इमामुपसर्प्यासुखवृत्तान्तं शृणोमि ?]

भट्टिन्याः कोऽभिप्रायः-कस्मै स्वकन्यां दातुमिच्छति आत्मनो वंशजातस्य= स्ववंशे समुत्पन्नस्य, अवस्थामज्ञात्वा=सम्प्रति का परिस्थितिस्तस्येत्यविचार्याथ कन्यापेक्षयाल्पवयस्कत्वञ्चोपेक्ष्य । सौवीराजपुत्रस्यावस्थामजानन् = स क्वत्र-वर्तत इति तद्विषयां प्रवृत्ति न जानन् इत्यर्थः । सर्वसङ्कटानि कृतसङ्केतानि = सर्वापदः आगन्तुं कृतनिश्चयानि । राजकुलवासेन = निरन्तरराजकुलस्थित्या सर्ववृत्तान्तम् = सर्वविधसमाचारं जानासि । अभिनवो वृत्तान्तः = नूतनः समाचारः । इह ते निवेदयितुं कथयितुमागता ।

धात्री—इस समय महारानी का क्या अभिप्राय है ?

वसुमित्रा—अपने वंश में उत्पन्न विष्णुसेन को स्थिति को विना जाने नहीं चाहती हैं कि जयवर्मा को आपकी कन्या दें । किन्तु महाराज सौवीर-राज के समाचार को न जानकर अतिसन्तप्त हैं । (प्रवेश कर)

नलिनिका—आज हमारे सारे संकट आने वाले है ।

(चलकर देखकर)

क्यों वह हमारी माता के साथ कुछ विचार कर रही हैं उसके पास जाकर कुछ असुखकर समाचार जानूं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वसुमित्रा—हला णलिणिए। एहि दाव। तुमं कञ्चुइसहवासेण राअउलवुत्तन्तं जाणासि। [हला नलिनिके ! एहि तावत्। त्वं कञ्चुकि-सहवासेन राजकुलवृत्तान्तं जानासि।]

नलिनिका—अभिणवो वुत्तन्तो। णं तं णिवेदिउं आअदम्हि। [अभिनवो वृत्तान्तः। ननु तं निवेदयितुमागतास्मि।]

वसुमित्रा—भाणाहि जादे !। [भण जाते !।]

नलिनिका—पेसिदो खु सोवीररराअस्स अमच्चेहि दूदो—अम्हाअं सामी तुम्हाणं णअरे सपुत्तकलत्तो पच्छण्णो पडिवसि त्ति अम्हाअं गूढपुरुसेहि वुत्तन्तो जाणिअदु सामिणेत्ति। [प्रेषितः खलु सौवीर-राजस्यामात्यैर्दूतः—अस्माकं स्वामी युष्माकं नगरे सपुत्रकलत्रः प्रच्छन्नः प्रतिवसतीत्यस्माकं गूढपुरुषैर्वृत्तान्तो ज्ञायतां स्वामिनेति।]

उभे—कहं पच्छण्णवेसो वत्तदित्ति। तदो तदो। [कथं प्रच्छन्नवेषो वर्तत इति। ततस्ततः।]

नलिनिका— तदो एवं सव्वं सुणिअ तस्स लेहस्स अवसाणं पेक्खिअ

सौवीरराजामात्यैः = सौवीराजसचिवैः। प्रच्छन्नः = गुप्तः। गूढपुरुषैः = गुप्तचरैः वृत्तान्तः = समाचारः। तस्य लेखस्य = सौवीरराजेन लिखितपत्रस्य, अवसानम = अभिप्रायम्, तम् = सौवीरराजम्, अन्वेष्टुम = विचेतुम्।

वसुमित्रा—आओ नलिका कञ्चुकी के साथ रहने के कारण तुम राजकुल का वृत्तान्त जानती होगी।

नलिनिका—हाँ नया वृत्तान्त है जिसको सुनाने आई हूँ।

वसुमित्रा—कहो बेटी—

नलिनिका—सौवीरराज के मन्त्रियों ने मेरे महाराज के यहाँ दूत भेजा है। उसके द्वारा सूचित किया है कि मेरे राजा स्त्री-पुत्र के साथ छिपकर आपके नगर में वस रहे हैं हमारे गुप्तचरों ने ऐसा पता लगाया है, आप भी इसको जान लें।

दोनों—क्यों छिपकर रहते हैं, आगे कहो।

नलिनिका—इसके बाद सारे समाचार को जानकर लेख का तात्पर्य समझकर महाराज भूतिक के साथ उनको खोजने गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अय्यभूदिएण सह गओ किल महाराओ तं अण्णेसिदुं। [तत् एतत् सर्वं श्रुत्वा तस्य लेखस्यावसानं प्रेक्ष्यार्यभूतिकेन सह गतः किल महाराजस्त-मन्वेषितुम्।]

धात्री—किण्णु खु भवे। [किन्तु खलु भवेत्!]

वसुमित्रा—णलिणिए!। तुवं दाव अब्भन्तरं पविस। [नलिनिके! त्वं तावदभ्यन्तरं प्रविश।]

नलिनिका—जं अय्या भणादि। (निष्क्रान्ता) [यदार्या भणति।]

वसुमित्रा—एहि दाव वअं भट्टिणीं पेक्खामो। [एहि तावत्। आवां भट्टिनीं पश्यावः।]

धात्री—एवं करेम्ह। [एवं कुर्वः।]

(निष्क्रान्ते)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति कुन्तिभोजः सौवीरराजभूतिकाभ्याम्)।

कुन्तिभोजः—वयस्य !

किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकालदृष्टो
गाढं परिष्वज सखे! स्मर बालभावम्।

अन्वयः—सखे चिरकालदृष्टः (त्वम्) मे मुखम् किम् प्रेक्षसे सखे गाढम् परिष्वज बालभावम् स्मर। प्रीत्या अनिमेषम् भवन्तम् अवेक्षितुं मे वयस्यभावः स्नेहात् अद्य नवीकृतः।

धात्री—देखें क्या होता है।

वसुमित्रा—नलिनिका तुम अन्दर चलो।

नलिनिका—जो आपकी आज्ञा।

(जाती है)

वसुमित्रा—आओ हम दोनों महारानी के यहाँ चलें।

धात्री—ऐसा ही करें। (दोनों जाती है)

(प्रवेशक)

(कुन्तिभोज, भूतिक और सौवीरराज का प्रवेश)

कुन्तिभोज—मित्र! बहुत दिनों पर आपके दर्शन हुए हैं, मेरा मुख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रीत्या भवन्तमनिमेषमवेक्षितुं मे
स्नेहान्नवीकृत इवाद्य वयस्यभावः ॥ १ ॥

सौवीरराजः—यदिष्टं भवतः ।

(उभौ परिष्वजेते)

कुन्तिभोजः—

चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव बुद्धि-
र्वाक्यं च बाष्पाहतगद्गदं च ।

व्याख्या—किं प्रेक्षस इति—हे सखे = हे मित्र, चिरकालदृष्टः = बहुकालात् अवलोकितः त्वम् मम मुखम् = आननम् किम् = किमर्थम् प्रेक्षसे = पश्यसि, गाढम् = अशिथिलम्, परिष्वज = आलिङ्ग्य बालभावम् = बालकत्वम् स्मर = अनुस्मर तत्कालकृतान नानाविधक्रियाकलापान् स्मर । प्रीत्या = प्रेम्णा, अनिमेषम् = निमेषरहितम्, भवन्तं = त्वाम्, अवेक्षितुं = प्रेक्षितुम् मे = मम, वयस्यभावः = सौहार्दम्, स्नेहात् = दर्शनोद्बुद्धस्नेहवशात् नवीकृतः = नूतनतां जातः अस्तीति शेषः । वसन्ततिलकावृत्तम् ।

भावः—चिरान्निरीक्षितो भवान् किमद्य मां निरीक्षते
दृढं परिष्वजस्व मां स्मरावयोः सुबालताम् ।
असीमहार्दसागरस्तवेक्षणादुदञ्चति,
न तृप्तिमेति दर्शनान्मदीयमक्षियुग्मकम् ॥

अन्वयः—ते बुद्धिः चिन्ताकुलत्वम् व्रजति इव वाक्यम् च बाष्पाहतगद्गदम्, नेत्रे सबाष्पे मुखम् अप्रसन्नम् हर्षकाले विषादः किं क्रियते ।

क्या देख रहे हैं ! आइये हृदय से लिपट जाइये । बालकपन का याद करिये । प्रेम से देखने के लिये मेरा मित्रभाव आज नवीनता को धारण कर रहा है ॥ १ ॥

सौवीरराज—जैसी आपकी इच्छा ।

(दोनों मिलते है)

कुन्तिभोज—आपकी बुद्धि चिन्ताकुल हो रही है, वचन भी बाष्प से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेत्रे सबाष्पे मुखमप्रसन्नं
किं हर्षकाले क्रियते विकारः ॥ २ ॥

सौवीरराजः—न खल्वहमप्रहृष्टो भवत्सङ्गमेन । किन्तु बलवान् पुत्रस्नेहो नाम ।

यो मे पुत्रगतः शोको हृदयस्थो विजृम्भते ।
सोऽद्य लब्ध्वा सहायं त्वां वाष्परूपेण निर्गतः ॥ ३ ॥

व्याख्या—चिन्तेति–ते = तव, बुद्धिः = मतिः चिन्ताकुलत्वम् = चिन्तया दुःखविशेषं स्मरन्तीवाकुलत्वम् = व्यग्रताम् व्रजति = याति इव । वाक्यम् = वचनम् च वाष्पाहतम् = अन्तरुष्मावरुद्धम् गद्गदम् स्खलद्वर्णम्, नेत्रे = नयने, सबाष्पे = साश्रुणी मुखम् = आननम् अप्रसन्नम् = प्रसादरहितम्, हर्षकाले = चिरान्मित्रसमागमरूपे विषादः = खेदः किम् = किमर्थम् क्रियते । को भवतो विषादहेतुः ॥ २ ॥

भावः—चिरान्मित्रसमासक्तिः परा हर्षप्रदा ननु ।
हर्षकाले भवानद्य कथं चिन्ताकुलो वद ॥ २ ॥

अप्रहिष्टः = अप्रसन्नः, भवत्समागमेन = भवदीयसंमेलनेन पुत्रस्नेहः = तनयप्रेम, बलवान् इतोप्यधिकः ।

अन्वयः—पुत्रगतः मे हृदयस्थः यः शोकः विजृम्भते सः अद्य त्वां सहायम् लब्ध्वा वाष्परूपेण निर्गतः ॥ ३ ॥

व्याख्या—यो इति–पुत्रगतः = तनयनिष्ठः मे = मम हृदयस्थः = हृदये वर्तमानः यः शोकः विजृम्भते = परिवर्धतेः सः अद्य=इदानीम् त्वाम् = भवन्तम् सहायम् = मित्रम् लब्ध्वा = प्राप्य वाष्परूपेण=अश्रुरूपतया निर्गतः । तदेतदुक्तं कालिदासेन "स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।"

अवरुद्ध होकर गद्गद हो रहा है । आँखे अश्रुपूर्ण हैं इस मित्रमिलन रूप हर्ष के समय आप क्यों विषाद कर रहे हैं ॥ २ ॥

सौरवीरराज—आपसे मिलकर मैं अप्रसन्न नहीं हूँ, किन्तु पुत्र का प्रेम बलवान् है यो मेरा पुत्रशोक अन्तःकरण में बढ़ रहा है वह आज आप सहायक को प्राप्त करके अश्रुरूप से निकल रहा है ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—कथं पुत्रगतः शोक इति ।

भूतिकः—विदितमस्तु स्वामिना । न दृश्यते किलास्मिन् संवत्सरे कुमारः ।

सौवीरराजः—बलवान् पुत्रस्नेहो नाम । पश्यतु भवान्

अनुपमबलवीर्यरूपवन्तं
सुतमविमारकमद्य चिन्तयामि ।
तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशो
यदि स भवेदिह को नु मद्विशिष्टः ॥ ४ ॥

भावः—हृदयनिगूढः पुत्रशोको भवतः समागमेनाद्य ।
अमान् समुद्वेल्य हृदो वाष्पव्याजाद्बहिर्याति ॥ ३ ॥

अन्वयः—अनुपमबलवीर्यरूपवन्तम् अविमारकम् सुतम् अद्य चिन्तयामि यदि स तव चरणरजोऽञ्चिताग्रकेशः भवेत् इह कः नु मद्विशिष्टः भवेत् ।

व्याख्या—अनुपमेति = बलञ्च वीर्य्यञ्च रूपञ्चेति तान्यनुपमानि सन्ति यस्मिन् तम् अनुपमबलवीर्य्यरूपवन्तम् = अनन्योजःशौर्यकान्तिमन्तम् अविमारकम् = मेषाकारराक्षसहन्तारम् तन्नामकं सुतम् = पुत्रम्-अद्य = प्रियसुहृदो भवतः समागमकाले स्मरामि = चिन्तयामि, यदि = चेत् सः = सुतः तव = भवतः, चरणरजसा = पादधूल्याऽञ्चिताः शोभिता अग्रकेशाः शिरोरुहाग्रभागा यस्य तथाभूतः भवेत्=स्यात्, इह जगति मद्विशिष्टः मदधिकः कः स्यादिति शेषः । तादृशानुपमपुत्रसम्पन्नं स्वं सकललोकाधिकं जानीयाम् ॥ ४ ॥

भावः—अमानवौजोबलकान्तिसंयुतम् तमद्य पुत्रं ह्यविमारकं स्मरे ।
त्वदङ्घ्रिधूल्यञ्चितमग्रमूर्धजमीक्षेत्ततो मेऽत्र समो हि कः स्यात् ॥४॥

कुन्तिभोज—कैसा पुत्रशोक यह है ?

भूतिक—महाराज को ज्ञात हो कि इस वर्ष कुमार कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं ।

सौवीरराज—पुत्र-स्नेह बहुत प्रबल होता है, देखें आप—

आज मैं अलौकिक बलवीर्य्य कान्ति वाले अविमारक का स्मरण कर रहा हूँ यदि यह आज आपके चरण की धूलि से विभूषित शिरोरुह (केश) वाला होता तो मेरे समान इस संसार में कौन धन्य होता ? ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूतिकः—(आत्मगतम्) महान् खल्वयं सन्तापो वर्धत एव हि कुमारमन्तरेण। विलोपयाम्येनम्। (प्रकाशम्) कथं स्वामिनोऽभ्यागता व्यापत्।

कुन्तिभोजः—अहमप्यनेन व्याक्षेपेण विस्मृतवानेतत् प्रष्टुम्।

सौवीरराजः—श्रूयताम्। अथवा भूतिकस्तु विजानाति। अप्यस्मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छति।

कुन्तिभोजः—वयमवहिताः स्मः।

सौवीरराजः—अपि ज्ञायते चण्डभार्गवो नामात्यन्तरोषी ब्रह्मर्षिः।

कुन्तिभोजः—श्रूयते तत्रभवांस्तपोनिधिः।

अयं सन्तापः=पुत्रशोकः, कुमारमन्तरेण=कुमारस्यादर्शनेन, विलोपयामि=शोकसमारम्भमेनम्, कथान्तरेणान्तरयामि। व्याक्षेपेण=व्याक्षिप्तचित्ततया, एतत्प्रष्टुम्=एतादृशदुःखकारणमनुवक्तुम्। अस्मन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छति मया कथ्यमानमाकर्णयितुमिच्छति। अवहिताः=सावधानाः, अत्यन्तरोषी=अतिक्रोधी। तपोनिधिः=महातपस्वी। अस्मद् विषयम्=मम देशम्, आगतः=समायातः। कान्तारे=वने, व्याघ्रेण=सिंहेन, अभिभूय=आक्रम्य, मृगयावशात्=आखेटकारणात् यदृच्छयैव=आकस्मिकरूपेण। तं देशम्=तदाश्रितं स्थानम् अभ्युपगतः=समागतः।

भूतिक—(स्वगत) कुमार के बिना इनका यह सन्ताप बढ़ता ही जाता है। इनको दूसरी ओर ले जाता हूँ। (प्रकट) श्रीमान् पर यह आपत्ति आई कैसे ?

कुन्तिभोज—मैं भी इसी सन्ताप के कारण आप से यह पूछना भूल गया।

सौवीरराज—सुनिये, अथवा भूतिक तो सब जानते ही हैं, आप मेरे मुख से सुनना चाहते हैं।

कुन्तिभोज—हम सावधान हैं।

सौवीरराज—क्या आप चण्डभार्गव नामक अत्यन्त क्रोधी महर्षि को जानते हैं।

कुन्तिभोज—हाँ मैंने उनका नाम सुना है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौवीरराजः—सोऽस्मद्विषयमभ्यागतः। कान्तारे तस्य शिष्यो व्याघ्रेणाभिभूय मारितः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—ततोऽहमपि तस्मिन् काले मृगयावशात् यदृच्छयैव तं देशमभ्युपगतः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

सौवीरराजः—अथ मां दृष्ट्वा विजृम्भमाणरोषभ्रुकुटीपुटविषमीकृतवदनः प्रलम्बजटाभारः शिष्ये स न्यस्तकरः क्रुद्धो दहन्निव क्रोधाग्निना मद्वचनमश्रोतुकामः संरम्भस्खलितवचनो मां वहुधा क्षेप्तुमारब्धः।

विजृम्भमाणेन = वर्धमानेन क्रोधेन या "भ्रुकुटीपुटयोः = भ्रुवोः कौटिल्यं तेनाविषमितम् विषमं संजातं मुखं यस्यैवं भूतः।

प्रलम्वो जटाभारो यस्य स तथोक्तः=प्रलम्बमानजटाजूटः। न्यस्तकरः= स्थापितहस्तः, क्रोधाग्निना = अमर्षज्वलनेन संरम्भस्खलितवचनः क्रोधावेशत्रुटिताक्षरवाचं, क्षेप्तुम् = आक्रोष्टुम्। भवितव्यस्यार्थस्य = अवश्यंभाविनोऽनर्थस्य, प्रावल्येन = प्रवलतया, अधृतिः = धैर्यहीनः अकारणम् = कारणं विनैव क्षिपसि = आक्रोशसि, संक्रुद्धवान् = क्रुद्धः।

सौवीरराज—एक वार वे मेरे देश में आये। जङ्गल में उनके किसी शिष्य को व्याघ्र ने मार डाला।

कुन्तिभोज—इसके वाद।

सौवीरराज—संयोगवश मैं भी शिकार खेलता वहीं पहुँच गया।

कुन्तिभोज—उसके वाद क्या हुआ।

सौवीरराज—वे हमको देखकर क्रोधित हो गये बढ़ते हुये क्रोध से भौंहे के कुटिल हो जाने के कारण उनका मुखमण्डल विषम हो गया उनकी जटायें लटक रहीं थी, शिष्य के ऊपर हाथ रखे क्रोधाग्नि से जलाते हुए मेरी वातों को अनसुनी करके क्रोध से त्रुटित अक्षर वाले वचनों से मुझे फटकारने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिराजः—ततस्ततः ।

सौवीरराजः—ततोऽहमपि भवितव्यस्यार्थस्य प्राबल्येनाधृतिः 'वृत्तान्तं न ब्रवीषि, निष्कारणं क्षिपसि' इति संक्रुद्धवानस्मि ।

न भाषसे वृत्तमुपैषि रोषं
निष्कारणं प्रक्षिपसि प्रकामम् ।
अभाजनं त्वं तपसां प्रकोपाद्
ब्रह्मर्षिरूपेण भवाञ्छ्वपाकः ॥ ५ ॥

कुन्तिभोजः—असदृशमुक्तं भवता ।

अन्वयः—वृत्तम् न भाषसे रोषम् उपैषि, निष्कारणम् प्रकामं प्रक्षिपसि, प्रकोपात् त्वम् तपसाम् अभाजनमसि, भवान् ब्रह्मर्षिरूपेण श्वपाकः ।

व्याख्या—वृत्तमिति-वृत्तम् = समाचारम् न भाषसे = ब्रवीषि । रोषम् = क्रोधम् उपैषि = धारयसि, निष्कारणम् = हेतुं विनैव प्रकामम् = अत्यर्थम्, क्षिपसि = आक्रोशसि, प्रकोपात् = क्रोधात् । हेतोः, त्वम् = भवान्, तपसाम् = तपश्चर्य्याणां अभाजनम् नाश्रयं तपस्विन एवंविधाकारण-क्रोधविकृतिः न भवति यतो भवान् तपस्वीत्यर्थः । तपस्विरूपेण = तपोरूपा-कारवान् श्वपाकः = चाण्डालो भवान् अस्तीति शेषः ।

आज्यधारावसिक्तः = घृतधारया अवसिक्तः सम्पादितसेकः अग्निरिव ज्वलितनेत्रः = जाज्वल्यमाननेत्रः बहुशः = अनेकवारम्, शिरः कम्पयन् = मूर्धानं विधुन्वन् ।

कुन्तिभोज—उसके बाद क्या हुआ—

सौवीरराज—भवितव्य के प्रबल होने के कारण मैं भी धैर्य रहित हो गया आप समाचार को नहीं कहते निष्कारण आक्षेप कर रहे हैं, ऐसा क्रोध से कहा । क्रोध कर रहे हैं। बिना कारण ही हमको अत्यन्त फटकार रहे हैं । क्रोध के कारण आप तपस्या के पात्र नहीं है । आप ब्रह्मर्षि के रूप में चाण्डाल हैं ॥ ५ ॥

कुन्तिभोज—आप ने अनुचित कहा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौवीरराजः—ततस्तच्छ्रुत्वैवाज्यधारावसिक्तो भगवान् हुताशन इव प्रज्वलितनेत्रो बहुशः शिरः कम्पयन् 'कथं कथम्' इत्युक्त्वा मां शप्तुमारब्धवान् ।

यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं श्वपाक इति भाषितः ।
तस्मात् सपुत्रदारस्त्वं श्वपाकत्वमवाप्स्यसि ॥ ६ ॥

इति ।

कुन्तिभोजः—अहो ! अल्पमूलत्वं महतां चानर्थस्य ।

भूतिकः—सभाग्यं सौवीराजकुलम् । कुतः,

ब्रह्मर्षिणा प्ररुष्टेन श्वपाकत्वं तदा कृतम् ।
तस्मात् तेनैव रूपेण न सर्वं भस्मसात् कृतम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यस्मात् ब्रह्मर्षिमुख्यः अहम् (त्वया) श्वपाक इति भाषितः तस्मात् त्वम् सपुत्रदारः श्वपाकत्वम् अवाप्स्यसि ॥ ६ ॥

व्याख्या—यस्मादिति—यस्मात् = कारणात्, ब्रह्मर्षिषु मुख्यः ब्रह्मर्षि-मुख्यः = ब्रह्मर्षिप्रधानः अहम् = भार्गवः, त्वया श्वपाकः = चाण्डाल इति भाषितः = कथितः तस्मात्=कारणीभूतादपराधात् त्वम्, सपुत्रदारः=सतनय-स्त्रीकः श्वपाकत्वम्=चाण्डालत्वम्, अवाप्स्यसि = अधिगमिष्यसि ॥ ६ ॥

अल्पमूलत्वम् = तुच्छकारणजन्यत्वम् , सभाग्यम् = भाग्यशालि, अन्य-थाऽसौ चण्डभार्गवः स्वतपोबलेन सकलं कुलं भस्मसादपि कर्तुं क्षमः ।

अन्वयः—तदा रुष्टेन ब्रह्मर्षिणा श्वपाकत्वं कृतम् तस्मात् तेनैव रूपेण सर्वम् भस्मसात् न कृतम् ॥ ७ ॥

सौवीरराज—इतना सुनते ही वह घी की धारा से सिंची आग के समान रक्त नेत्र होकर बार-बार शिर हिलाते हुए, 'क्या कहा ?' क्या कहा यह कहकर मुझे शाप देना आरम्भ किया ।

मुझ ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ को तुमने चाण्डाल कह दिया इसलिये तुम पुत्र और स्त्री के साथ चाण्डाल हो जाओगे ॥ ६ ॥

कुन्तिभोज—साधारण कारण से महान् अनर्थ हुआ ।

भूतिक—सौवीराज का कुल भाग्यशाली है । क्योंकि—

जिस क्रोध से उन्होंने उस समय चाण्डाल बनाया उस क्रोध से उसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—युक्तमभिहितं भवता । ततस्ततः ।

सौवीरराजः—ततस्तच्छापप्रक्षुब्धमनसा मया सुचिरमनुनीयमानः शनैः शनैः प्रकृतिस्थो भूत्वानुग्रहं कृतवान्—

तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सरं व्रजेः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥ ८ ॥

इति । एवमुक्त्वा प्रसन्नचित्तेन एहि भोः काश्यप ! इत्याह्वयत, स

व्याख्या—ब्रह्मर्षिणेति प्ररुष्टेन = क्रुद्धेन, ब्रह्मर्षिणा = चण्डभार्गवेन श्वपाकत्वम् = चाण्डालभावमात्रं कृतम्, तस्मात् = तस्य कोपात् तेनैव रूपेण = तेनैवप्रकारेण सर्वम् = सकलम्-कुलम् = वंशम् भस्मसात् = भस्मीभूतं न कृतम् = न विहितम्, अतो भाग्यं भवतः कुलस्य ॥ ७ ॥

तच्छापक्षुब्धमनसा = तच्छापव्याकुलहृदयेन, सुचिरम् = बहुकालम् अनुनीयमानेन = आराधयता, प्रकृतिस्थः = स्वाभाविकीं स्थितिं प्राप्तः

अन्वयः—तावत् प्रच्छन्नरूपेण यावत् संवत्सरम् व्रजेः, ततः संवत्सरे पूर्णे मुक्तशापो भविष्यसि ॥ ८ ॥

व्याख्या—तावदिति-तावत् = प्रथमम् प्रच्छन्नरूपेण = गुप्तरूपेण संवत्सरमभिव्याप्येति यावत्संवत्सरम् = वर्षपर्यन्तम्, व्रजेः = स्वस्थानादन्यत्र गत्वा निवस, ततः = पश्चात् संवत्सरे पूर्णे = वर्षे समाप्ते मुक्तशापः = तीर्णशापः भविष्यसि = सम्पत्स्यते ॥ ८ ॥

प्रसन्नचित्तेन = सन्तुष्टहृदयेन आह्वयत = आह्वास्त, मृतं स्वशिष्य-

---

प्रकार वे सौवीरराजवंश को भस्म भी कर सकते थे । नहीं (किये अतः भाग्यशाली) हैं ॥ ७ ॥

कुन्तिभोज—आप ठीक कहते हैं, उसके बाद ।

सौवीरराज—शाप सुनकर मैं दुःखित हो गया, मेरे बहुत अनुनय करने पर धीरे-धीरे वे स्वाभाविक स्थिति में आकर कृपा किये—

पहले श्वपाक के रूप में अन्यत्र छिपकर एक वर्ष बिताओ । एक वर्ष पूरा होने पर उसके बाद शाप से मुक्त हो जाओगे ॥ ८ ॥

हमसे ऐसा कहकर प्रसन्न चित्त उस मुनि ने 'हे कश्यप इधर आओ'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तमनुगतो व्याघ्रेण मारितो वटुः, चरितं च मया संवत्सरं श्वपाक-व्रतम् । अद्यास्मि शापान्मुक्तः ।

कुन्तिभोजः—अहो व्यापदः प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च । दिष्टया भवान् वर्धते ।

भूतिकः—जयतु स्वामी ।

कुन्तिभोजः—ननु विष्णुसेनमाता सपरिवारमन्तःपुरं प्रविष्टा ।

भूतिकः—तत्रभवती प्रविश्याभ्यन्तरं चिरकालप्रसुप्तं प्रणयमुद्बोधयति ।

कुन्तिभोजः—अथेदानीं विष्णुसेनः कथमविमारको जातः ।

मित्यर्थः, तमनुगतो व्याघ्रेण मारितः तदाह्वानमात्रेण पुनरुज्जीवितः स वटुः तमनुससारं, व्यापदः=विपत्तेः, समागमो निवृत्तिश्चाश्चर्यमयमित्यर्थः तत्र भवती माननीया चिरकालप्रसुप्तम् = बहुकालात् विलुप्तव्यवहारम् प्रणयम् स्नेहम् उद्बोधयति = प्रकटयति । विष्णुसेनः कथमविमारको जातः = नामान्तराधिगमस्य किं कारणम् ।

उत्सादयितुम् = नाशयितुम् । अपूर्वाः = अप्रस्तुतपूर्वाः सर्वप्रजानाम् = सर्वंजनानाम्, आर्तिम् = पीडाम्, तस्य = असुरस्य प्रतिक्रियाम् = निवारणोपायम् अनवेक्षमाणः = स्वसामर्थ्यमननुभवन् । क्षितिरेणुपरुषगात्रः = क्षितेः =

इस तरह पुकारा गया वह व्याघ्र से मारा गया शिष्य सुप्त की तरह उठकर उनका अनुसरण करने लगा । मैंने भी एक वर्ष तक श्वपाक व्रत किया अब शाप से मुक्त हो गया हूँ ।

कुन्तिभोज—आपके ऊपर आपत्ति आई और निवृत्त हो गई आप बड़े भाग्यशाली हैं ।

भूतिक—जय हो महाराज की—

कुन्तिभोज—क्या विष्णुसेन की माता अपने परिवार के साथ अन्तःपुर में आईं ।

भूतिक—वह अन्तःपुर में आकर चिरसुप्त स्नेह को प्रबुद्ध कर रही है ।

कुन्तिभोज—आप यह बताइये कि विष्णुसेन गया अविमारक नाम का कैसे हो जाय ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूतिकः—शृणोतु स्वामी—अस्ति धूमकेतुर्नामासुरः। सर्वलोकमारणाय परिभ्रमन् स कदाचित् सौवीरराष्ट्रमुत्सादयितुं प्रवृत्तः।

कुन्तिभोजः—अपूर्वा खलु कथा। ततस्ततः।

भूतिकः—ततः स्वदेशे सर्वप्रजानामार्तिं दृष्ट्वा तस्य राक्षसस्य च प्रतिक्रियामनवेक्षमाणः स्वामी क्लेशमुपगतः।

कुन्तिभोजः—ततस्ततः।

भूतिकः—ततस्तत् सर्वं बुद्ध्वा कुमारो विष्णुसेनः क्षितिरेणुपुरुषगात्रः प्रलम्बमानकाकपक्षः शिशुभिस्तुल्यवयोभिः प्रक्रीडमानो दैवयोगात् प्रमत्तेषु सर्वरक्षिपुरुषेषु सहसैव तं देशमभ्युपगतो यत्रासौ राक्षसः।

कुन्तिभोजः—अहो आश्चर्यमाश्चर्यम्। ततस्ततः।

पृथिव्याः रेणुभिः = धूलिभिः परुषगात्रः = रुक्षशरीरः, क्षितिरेणुक्रीडासक्तः तुल्यवयोभिः = समवयस्कैः, दैवयोगात् = दैवप्रभावात्-प्रमत्तेषु = असावधानेषु, रक्षिपुरुषेषु=वालरक्षाधिकृतेषु। सुमम्पनम् = अतिरुचिरं, नवत्वात् स्वादिष्टमांसम्, समीक्ष्य = दृष्ट्वा स्वकर्मकर्तुम् = भक्षितुम्। नृशंसता = क्रूरता।

भूतिक—सुनिये महाराज, धूमकेतु नाम का एक महान् असुर था, सर्व लोगों को मारने के लिये घूमता हुआ वह एक समय सौवीर देश में आया और सौवीर राष्ट्र को नष्ट करने लगा।

कुन्तिभोज—यह कथा अनसुनी है, तब क्या हुआ।

भूतिक—तब अपने प्रजावर्ग के कष्ट को देखकर एवं उस राक्षस के प्रतीकार को न देखकर महाराज क्लेश को प्राप्त हुये।

कुन्तिभोज—उसके बाद क्या हुआ ?

भूतिक—तब यह सब जान कर कुमार विष्णुसेन जिसका शरीर भूमि की धूलि से रुक्ष था और केश लटक रहे थे और बहुत से स्ववयस्क बालकों के साथ खेल रहे थे दैवयोग से रक्षकों की असावधानी के कारण एकाएक जहाँ वह राक्षस था वहाँ चला आया।

कुन्तिभोज—ओह आश्चर्य है तब क्या हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूतिकः—ततः स राक्षसः प्रीत्या सुसम्पन्नमिवाहारं कुमारमभिसमीक्ष्य स्वकर्म कर्तुमारब्धः।

कुन्तिभोजः—अहो नृशंसता राक्षसस्य। ततस्ततः।

भूतिकः—अथ कुमारेण किञ्चित् प्रहस्य,

प्रपतदशनिना यथा गिरीन्द्रो
दवदहनेन यथा वनप्रदेशः।
युधि ललितमनायुधेन तेन
क्षितिपसुतेन तदा हतः स नीचः॥ ९॥

कुन्तिभोजः— प्रथममेव हस्तिसम्भ्रमे मयोक्तं—दैवादुत्पादितोऽयं केवलो मानुषो न भवतीति।

अन्वयः—प्रपतदशनिना यथा गिरीन्द्रः दवदहनेन यथा वनप्रदेशः (तथा) अनायुधेन तेन क्षितिसुतेन युधि स नीचः ललितम्, तदा हतः॥ ९॥

व्याख्या—प्रपतदिति = प्रपतताऽशनिना = पतता वज्रेण यथा येन प्रकारेण गिरीन्द्रः, निपात्यते, दवदहनेन = वनाग्निना, यथा वनप्रदेशः = वनभागः, दह्यते, तथा अनायुधेन = आयुधरहितेन, तेन = विष्णुसेनेन। युधि = संग्रामे, तदा = तस्मिन् काले स नीचः = अधमो रासक्षः ललितम् सविलासम् अनायासेनैव हतः = मारितः॥ ९॥

भूतिक—उसके बाद बहुत रुचिकर आहार को देखकर वह राक्षस अपना काम करना आरम्भ कर दिया।

कुन्तिभोज—अहो! राक्षस की क्रूरता—तब क्या हुआ।

भूतिक—इसके बाद कुमार ने कुछ हँसकर—

जैसे गिरते हुए वज्र से पर्वत और दावाग्नि से वन नष्ट हो जाता है उसी प्रकार बिना आयुध के उस राजकुमार ने खेल में ही उस नीच राक्षस को मार डाला।

कुन्तिभोजः—मैंने पहले ही हाथी के उत्पात के दिन कहा था कि वह दैववशात् उत्पन्न है साधारण मनुष्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौवीरराजः—भवान् सहस्रनेत्रश्चरैः कथं चिन्तयत्यविमारकं प्रति।

भूतिकः—स्वामिन् !

गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे
न दृश्यते क्वापि चरैः कुमारः ।
परीक्षितुं तं मनसोऽस्ति शक्ति-
र्नूनं हि मायामनुगच्छतीति ॥ १० ॥

(ततः प्रविशति नारदः)

दैवादुत्पादितः = भाग्यवशादुत्पन्नः, केवलमानुष्यः = मनुष्यमात्रं न भवति । सहस्रनेत्रश्चरैः = सहस्रनेत्रतुल्यः 'राजानश्चारचक्षुष' इति वचनात् । गुप्तचरैः कथं न वेत्ति ।

अन्वयः—गम्याः देशाः तु मया सुपरीक्षिताः चरैः क्वापि कुमारः न दृश्यते तम् परीक्षितुम् मनसः शक्तिः अस्ति हि नूनम् मायाम् अनुगच्छति इति ।

व्याख्या—गम्यास्त्विति गम्याः = गन्तुं शक्ताः देशाः = विषयाः, परीक्षिताः = विचिताः, क्वापि = कस्मिन्नपि स्थाने कुमारः = विष्णुसेनः चरैः = गुप्तचरैः = न दृश्यते । तं परीक्षितुम् = गवेषयितुम् मनसः = चेतसः शक्तिः = सामर्थ्यम् अस्ति = न हि चक्षुषा स दृष्टुं शक्यते हि = यतः स मायामनुगच्छति=विद्यादिप्रभावेणान्तर्हितः इति । मायावी चक्षुषा कथं दृश्यते स तु ध्यानेनैव मनसा ज्ञातुं शक्यः ॥ १० ॥

सौवीरराज—आपके हजारों गुप्तचर नेत्र हैं उनके द्वारा कुमार के विषय में क्यों नहीं जानते हैं ?

भूतिकः—महाराज ! जाने योग्य देशों में अच्छी तरह खोज लिया मेरे गुप्तचरों द्वारा कुमार कहीं नहीं देखे जाते हैं। उनको खोजने के लिये केवल मन की ही शक्ति हैं, क्योंकि कि वे माया का अनुसरण कर रहे हैं ॥ १० ॥

(इसके बाद नारद का प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नारदः—

वेदैः पितामहमहं परितोषयामि
गीतैः करोमि हरिमुद्गतरोमहर्षम् ।
उत्पादयाम्यहरहर्विविधैरुपायै-
स्तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके ॥ ११ ॥

भोः ! कुन्तिभोजस्य पित्रा दुर्योधनेन वयं सुचिरमाराधिताः । तस्मिन् मानुषस्वभावमुपगते कुन्तिभोजश्चास्मासु भृत्यत्वमाचरति ! अद्य कुन्तिभोजस्य सौवीरराजस्य च महानविमारकादर्शनेन कार्य-

---

अन्वयः—अहम् वेदैः पितामहम् परितोषयामि, गीतैः हरिम् उद्गत-रोमहर्षम् करोमि अहरहः विविधैः उपायैः तन्त्रीषु स्वरगणान् लोके च कलहान् उत्पादयामि ॥ ११ ॥

व्याख्या—वेदैरिति–अहम्–वेदैः = श्रुतिभिः पितामहम् = विरञ्चिम्, ब्रह्माणम्, परितोषयामि = तर्पयामि, गीतैः = गानैः, हरिम् = श्रीविष्णुम्, उद्गतो रोमहर्षो यस्य तं तथोक्तम्=उदञ्चद्रोमाणम् करोमि = सम्पादयामि, विविधैरुपायैः = अनेकाभिर्विधाभिर् तन्त्रीषु = वीणासु, स्वरगणान् = षड्-जातीन् स्वरान्, लोके = जनेषु च कलहान् = मिथः वैराणि, उत्पादयामि = जनयामि ॥ ११ ॥

भावः—वेदान्निशम्य मम तुष्यति स स्वयम्भु-
र्गानैश्च कैटभरिपुः परितोषमेति ।
कर्तुं क्षमोऽस्म्यहमनेकविधैरुपायैः
वीणास्वरान् कलिमथापि जनेषु नित्यम् ॥

नारद—मैं अपने वेदाध्ययन से पितामह को प्रसन्न कर देता हूँ तथा मेरे गाने को सुनकर भगवान् श्रीविष्णु रोमाञ्चित हो जाते हैं, मैं अनेक उपायों से वीणा में विविध स्वरों तथा लोक में कलह को पैदा करने में कुशल हूँ ॥ ११ ॥

कुन्तिभोज के पिता ने मेरी बहुत दिनों तक आराधना की थी । उनके मर जाने पर कुन्तिभोज भी मेरे प्रति सेवक-सा भाव रखते हैं । इस समय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सङ्कटो वर्तते। तदिदानीमहमविमारकप्रदर्शनेन तयोर्व्याक्षेपं समाक्षिपामीत्यवतीर्णोऽस्मि भूम्याम् (इति कुन्तिभोजसौवीराजयोः पुरतः स्थितः।)

कुन्तिभोजः—अये भगवान् देवर्षिर्नारदः। भगवन्! अभिवादये।

नारदः—स्वस्ति भवते।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि।

सौवीरराजः—भगवन्! अभिवादये।

नारदः—शान्तिरस्तु ते।

सौवीरराजः—अनुगृहीतोऽस्मि।

कुन्तिभोजः—(कर्णे) भूतिक! एवं क्रियताम्।

भूतिकः—यदाज्ञापयति स्वामी। (निष्क्रम्य प्रविश्य) इदमर्घ्यं पाद्यं च।

आराधिताः = सेविताः, मनुष्यभावम् = मनुष्यगतिम् मृत्युमिति यावत् गते = प्राप्ते, भृत्यवदाचरति = सेवां करोति। अविमारकादर्शनेन =

अविमारक के गुप्त हो जाने से कुन्तिभोज और सौवीरराज पर बड़ा सङ्कट आगया है, इसमें अविमारक को दिखाकर इन दोनों की आपत्ति को दूर कर दूँ।

(कुन्तिभोज और सौवीरराज के बीच में नारद का प्राकट्य)

कुन्तिभोज—अहा भगवान् देवर्षि नारद जी आये हैं, भगवन् मैं नमस्कार करता हूँ।

नारद—आपका कल्याण हो।

कुन्तिभोज—मैं अनुगृहीत हुआ।

सौवीरराज—भगवन्, मैं प्रणाम करता हूँ।

नारद—शान्ति हो।

सौवीरराज—मैं अनुगृहीत हुआ।

कुन्तिभोज—(कान में) भूतिक! ऐसा करो।

भूतिक—जो महाराज की आज्ञा (बाहर जाकर और पैठकर) महाराज यह पाद्य और अर्घ्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—भगवन् ! क्रियतामनुग्रहः ।

नारदः—एवमस्तु ।

कुन्तिभोजः—(अभ्यर्च्य) भगवन् ! अस्मद्गृहं परिपूतं भवदवतरणेन ।

सौवीरराजः—इदानीं मुक्तशापोऽस्मि देवर्षिदर्शनेन ।

नारदः—नाहं साम्प्रतं युष्मद्दर्शनार्थमेवागतोऽत्र । अविमारकादर्शनेन सम्भूतं दुःखं भवतोर्ज्ञात्वावतीर्णोऽस्मि ।

उभौ—यद्येवं, विमुक्तसन्तापौ स्वः ।

नारदः—भूतिक ! सुदर्शनामानय ।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान् (निष्क्रम्य सुदर्शनया सार्धं प्रविष्टः)

सुदर्शना—अब्भाअदो देवरिसी । [अभ्यागतो देवर्षिः] ।

भूतिकः—एवम् ।

गन्धर्वाङ्गुलीयकेनान्तर्धानेन, कार्यसंकटम्=करणीयकष्टम्, व्याक्षेपम्=कष्टम्, समाक्षिपामि = संहरामि = समापयामीति यावत् ।

कुन्तिभोज—भगवन् कृपा करें ।

नारद—ऐसा ही हो ।

कुन्तिभोज—(पूजा करके) भगवन् आपके आने से मेरा घर पवित्र हो गया ।

सौवीररस—आज देवर्षि के दर्शन से मैं शाप से मुक्त हो गया ।

नारद—मैं आप लोगों को केवल दर्शन देने ही नहीं आया हूँ ।

किन्तु अविमारक के अदर्शन से दूर आप लोगों के कष्ट को दूर करने भी आया हूँ ।

दोनो—यदि ऐसा है तो हम दोनों शाप रहित हो गये ।

नारद—भूतिक, सुदर्शना को ले आओ ।

भूतिक—आपकी जैसी आज्ञा ।

(जाकर पुनः सुदर्शना के साथ प्रवेश)

सुदर्शना—देवर्षि नारद पधारे हैं ।

भूतिक—हाँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुदर्शना—सणाहो दाणि मे पुत्तअस्स विवाहो संवुत्तो । (उपगम्य) भअवं वन्दामि । [सनाथ इदानीं मे पुत्रकस्य विवाहः संवृत्तः । भगवन् ! वन्दे ।]

नारदः—

एवमेव महाभागे ! नित्यं प्रीतिमवाप्नुहि ।
कुन्तिभोजश्च भूपालो नित्यं स्यात् प्रीतिपीडितः ॥ १२ ॥

सुदर्शना—अणुग्गहीदम्हि । [अनुगृहीतोऽस्मि ।]

नारदः—इदानीं पृच्छतां भवन्तौ प्रष्टव्यम् ।

उभौ—अनुगृहीतौ स्वः ।

कुन्तिभोजः—भगवन् ! किं जीवति सौवीराजपुत्रः ।

नारदः—बाढम् ।

सौवीरराजः—केन कारणेन न दृश्यते ।

अन्वयः—हे महाभागे ! एवम् एत्रनित्यम् प्रीतिम् अवाप्नुहि । कुन्तिभोजः भूपालश्च नित्यम् प्रीतिपीडितः स्यात् ।

व्याख्या—हे महाभागे=सौभाग्यशालिनि ! एवम् = इत्थमेव नित्यम् = सदा, प्रीतिम् = प्रसन्नताम् अवाप्नुहि = अधिगच्छः, कुन्तिभोजः भूपालः = क्षितीश्वरश्च नित्यं=सदैव, प्रीतिपीडितः=तवानुरागनियन्त्रितः स्यात् ॥१२॥

सुदर्शना—अब हमारे पुत्री का विवाह सनाथ हो गया । भगवन्, नमस्कार करती हूँ ।

नारद—हे महाभागे ! इसी प्रकार सदा तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ती रहे राज कुन्तिभोज भी सदा तुमारे प्रेम से युक्त रहें ॥ १२ ॥

सुदर्शना—मैं अनुगृहीत हुई ।

नारद—इसे जो पूछना चाहते हो तुम दोनो पूछ लो ।

दोनों—आपने बड़ा अनुग्रह किया ।

कुन्तिभोज—क्या सौवीर राजा का पुत्र अविमारक जीता है ।

नारद—अवश्य ।

सौवीरराज—फिर दीखता क्यों नहीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नारदः—विवाहव्याक्षेपात् ।

सौवीरराजः—कथं निर्विष्टः कुमारः ? ।

कुन्तिभोज—कुत्र ?

नारदः—नगरे वैरन्त्ये ।

कुन्तिभोजः—वैरन्त्यं नाम नगरमप्यस्तीति । भवतु, कस्य जामातृत्वमुपगतः ।

नारदः—कुन्तिभोजस्य ।

कुन्तिभोजः—कः सः

नारदः—

पिता कुरङ्ग्या भूपालो वैरन्त्यनगरेश्वरः ।
दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजो भवान् ननु ॥ १२ ॥

विवाहव्याक्षेपात् = विवाहसंलग्नत्वात्, निर्विष्टः=गृहस्थो जातः विवाहं कृतवान् , वैरन्त्यं नामनगरम् = मन्नगरादन्यदपि वैरन्त्यं नाम नगरमस्ति किम्, भवतु=नगरचर्चादूरेऽस्तु कस्य जामातृत्वमुपगतः=कस्य जामाता जातः ।

अन्वयः—कुरङ्ग्या पिता भूपालः वैरन्त्यनगराधिपः दुर्योधनस्य तनयः कुन्तिभोजः भवान् ननु ।

व्याख्या—पितेति–कुरङ्ग्याः पिता = जनकः, भूपालः = क्षितीश्वरः

नारद—विवाह में आसक्त होने के कारण ।

सौवीरराज—क्यों कुमार ने विवाह कर लिया ।

कुन्तिभोज—कहाँ विवाह किया ?

नारद—वैरन्त्य नगर में ।

कुन्तिभोज—वैरन्त्य नामक कोई दूसरा नगर भी है क्या ? नगर की बात छोड़िये किसका जामाता हुआ ?

नारद—कुन्तिभोज का ।

कुन्तिभोज—वह कौन है ?

नारद—वैरन्त्यनगर का शासक भूपाल कुरङ्गी का पिता है, दुर्योधन के पुत्र = कुन्तिभोज आप हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—किं बहुभिः प्रश्नैः ? मत्सुतायां कुरङ्ग्यां निर्विष्ट इत्युच्यते भगवता ।

नारदः—एवमेतत् ।

कुन्तिभोजः—लज्जित इवास्मि । केन दत्ता, कथं वा, कथं चायं प्रविष्टः कन्यापुरम् ।

नारदः—

दत्ता सा विधिना पूर्वं दृष्टा सा गजसम्भ्रमे ।
पूर्वं पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टो मायया पुनः ॥ १४ ॥

वैरन्त्यनगरेश्वरः = वैरन्त्यनगरस्वामी, दुर्योधनस्य = एतन्नाम्नः, तनयः = पुत्रः कुन्तिभोजः भवान् ननु = भवानेव नान्यः ॥ १३ ॥

निर्विष्टः = विवाहपूर्वकमागतः ।

अन्वयः—पूर्वम् विधिना दत्ता सा हस्तिसम्भ्रमे दृष्टा । पूर्वम् पौरुषमाश्रित्य प्रविष्टः अधुना मायया (प्रविष्टः) ।

व्याख्या—दत्तासेति–पूर्वम् = विवाहात् प्राक्काले, विधिना = ब्रह्मणा-दत्ता = अर्पिता, सा कुरङ्गी, हस्तिसम्भ्रमे = गजोपद्रवे, अविमारकेन दृष्टा पूर्वम् = प्रथमम् पौरुषम् = पराक्रमम्, आश्रित्य प्रविष्टः = कन्यापुरमिति शेषः, अधुना = इदानीम् , मायया = विद्यारप्रक्ताङ्गुलीयस्य प्रभावेण—प्रविष्टः ।

कुन्तिभोज—अधिक क्या कहा जाय, आपके कहने का तात्पर्य है कि कन्या कुरङ्गी का विवाह अविमारक के साथ हो गया है ।

नारद—हाँ यही यथार्थ है ।

कुन्तिभोज—मैं लज्जित-सा हो रहा हूँ, उसको किसने दिया, कैसे दिया, कन्यापुर वह कैसे प्रविष्ट हुआ ।

नारद—विवाह के पहले ही विधाता ने कुरङ्गी को अविमारक को दे दिया उसके बाद हाथी के उपद्रव के समय कुमार ने उसको देखा । प्रथम बार वह कन्यापुर में पराक्रम से घुसा दूसरी बार माया से गया ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—भवत्वेवं तावन्निष्प्रतिवचनमृषिवचनम्। भगवन्! इदानीं किं प्राप्तकालं कुमारस्य कुरङ्ग्याश्च। विवाहः पूर्वमारब्धव्यः?

नारदः—इदानीम् निष्ठितो विवाहो ननु गान्धर्वः स्वसमय एव।

कुन्तिभोजः—अग्निसाक्षिकमिच्छामि।

नारदः—नित्यमग्निः साक्ष्येव। तथापि स्वजनपरितोषणार्थमभ्यन्तरसमयमात्रमुपाध्यायेन कारयित्वा शीघ्रमानीयतामिह कुमारः सह भार्यया।

कुन्तिभोजः—भगवन्! एष गच्छामि :

नारदः—तिष्ठतु भवान्। भूतिक! गच्छ त्वम्।

भूतिकः—यदाज्ञापयति भगवान्। (निष्क्रान्तः।)

कुन्तिभोजः—भगवन्! विज्ञाप्यमस्ति।

नारदः—इतस्तावत्। स्वैरमभिधीयताम्।

निष्प्रतिवचनम् = निरुत्तरम्, प्राप्तकालम् = समयानुसारं करणीयम् निष्ठितः = संयातः, अग्निसाक्षिकम् = विधिपूर्वकमग्निं साक्षीकृत्य। स्वजनपरितोषणार्थम्, स्वजनानां परितोषणं तदर्थम्=आत्मीयलोकानां प्रीत्यर्थम्।

कुन्तिभोज—इस अवसर पर देवर्षि का वचन निरुत्तर है, अब कुमार और कुरङ्गी का विवाह करना है।

नारद—गान्धर्व विवाह समय पर स्वयं हो गया है।

कुन्तिभोज—विधिपूर्वक अग्नि साक्षिक करना चाहता हूँ।

नारद—अग्नि तो सदा साक्षी रहा है, तथापि आप अपने बान्धवों के सन्तोषार्थ पुरोहित द्वारा अपनी प्रथा के अनुसार करवा कर शीघ्र कुमार दम्पती को यहाँ लाइये।

कुन्तिभोज—अभी जारहा हूँ।

नारद—आप यहाँ रहें, भूतिक तुम जाओ।

भूतिक—जो आपकी आज्ञा (जाता है)।

कुन्तिभोज—भगवन्, आप से कुछ निवेदन करना है।

नारद—अब तुम स्वच्छन्द रूप से कहो।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—भगवन् सुदर्शनायाः पुत्राय जयवर्मणे कुरङ्गी दास्यामीति मयानीता सा पूर्वं सनाथा। किं कर्त्तव्यमिदानीम्, अभिधीयताम्।

नारदः—एवं करोमि। मुहूर्तमेकान्ते तिष्ठ।

कुन्तिभोजः—तथास्तु। (तथा करोति)।

नारदः—सुदर्शने! इतस्तावत्।

सुदर्शना—भअवं! इहम्हि। (भगवन् इयमस्मि।)

नारदः—ननु श्रुतमस्मद्वचनम्।

सुदर्शना—सुदं सोवीरराअउत्तस्स गुणसंकोत्तणं। [श्रुतं सौवीरराजपुत्रस्य गुणसङ्कीर्तनम्।]

नारदः—मा मैवम्। भवत्या विस्मृतोऽग्निदेवादुत्पन्नोऽग्रजस्ते पुत्रः।

सुदर्शना—हं, एदं पि भअवं जाणादि। [हम्, एतदपि भगवान् जानाति।]

अभ्यन्तरसमयमात्रं = अन्तःपुरसिद्धान्तानुसारं उपाध्यायेन = पुरोहितेन, कारयित्वा = सम्पाद्य।

कुन्तिभोज—भगवन्, पहले मैंने सुदर्शन के पुत्र से कुरङ्गी का विवाह करूँगा इस विचार से पुत्र सहित सुदर्शना को यहाँ बुलवाया हूँ अब मैं क्या करूँ आप आदेश दें।

नारद—ऐसा करूँगा, थोड़ी देर एकान्त में बैठो।

कुन्तिभोज—जो आपकी आज्ञा (वैसा ही करता है)

नारद—सुदर्शने इधर आओ।

सुदर्शना—यह आई (आती है)।

नारद—तुमने हर बातें सुनी।

सुदर्शना—मैंने सौवीरराज पुत्र का सारा प्रशंसा वचन सुना है।

नारद—ऐसा तुम मत कहो, क्या तुमने अग्निदेव से उत्पन्न अपने जेठे पुत्र को भुला दिया है?

सुदर्शना—हूँ, आप इस बात को भी जानते हैं क्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नारदः—ममैवमाज्ञां कुरुष्व तावत् ।

सुदर्शना—एवं करोमि । भअवं भणादु । [एवं करोमि । भगवान् भणतु ।]

नारदः—तवायं पुत्रोऽग्नेरुत्पन्नः । त्वद्भगिन्याः सुचेतनायाः प्रसव समकाल एव तत्सुतः स्वर्गं गतः । तवायं पुत्रस्त्वद्भगिन्यै त्वया दत्तः । सौवीरराजश्चासावत्यन्तसन्तुष्टः प्रीतिसदृशीः क्रियाः कृत्वा विष्णुसेन इति संज्ञामकरोत् । अमानुषस्वरूपबलवीर्यपराक्रमेणानेन वर्धमानेन यस्मादविरूपधारी मारितोऽसुरः, तस्मादविमारक इति विष्णु-

मामैवम् = सौवीरराजपुत्रोऽयं विष्णुसेन इति मा वद ? स खलु वह्नेरुत्पन्न इति तात्पर्यम् । प्रसवकाल एव = जन्मसमय एव, स्वर्गं गतः मृतः आमानुष-स्वरूप-बल-वीर्यपराक्रमेण = स्वरूपश्च बलश्च वीर्यश्च पराक्रमश्चेति तथोक्ताः अमानुषा यस्य स तेन तथोक्तेन—अलौकिककान्तिशौर्यबलपराक्रमेण, अविरूपधारी = मेषाकारवान्, अविमारको जातः = अविमारकनाम्ना जगति प्रसिद्धोऽभूत् । ब्रह्मशापपरिभ्रष्टः = चण्डभार्गवशापेन चाण्डालतां गतः । हस्तिसंभ्रमे = गजोपद्रवे समुत्पन्नाभिलाषः = समुत्पन्नः = संज्ञातः अभिलाषः = कामो यस्य तथाभूतः । कुरङ्ग्या संगम्य = तया सह समागमं कृत्वा, दर्शनशङ्कितैः = अग्निपरिवेष्ठितः कोऽयं गच्छतीति भीतैः, परीक्ष्यमाणः = परिदृश्यमानः प्रच्छादितः = पिहितः । तेन निर्वेदेम = पुनस्तत्समागमो न भविष्यतीति संपातदुःखेन मरुत्पातम् = पर्वतान्निपत्य प्राणान् हातुम् । पर्वतमारूढः = शिखरिणमारूढवान् ।

नारद—मेरी आज्ञा मानो ।

सुदर्शना—ऐसा ही करूंगी आप आदेश दें ।

नारद—अविमारक अग्निदेव से उत्पन्न तुम्हारा ही पुत्र है, तुम्हारी बहिन सुचेतना का पुत्र जन्मते ही मर गया था । तुमने अपना पुत्र उसको दे दिया था ! सौवीरराज को पुत्र प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई उन्होंने विधिवत् उस का संस्कार कर के विष्णुसेन ऐसा नाम रखा । अलौकिक रूप-बल-वीर्यशाली उस कुमार ने मेषरूपधारी किसी राक्षस को मार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेनं लोको ब्रवीति । ततः सोऽपि ब्रह्मशापपरिभ्रष्टो हस्तिसम्भ्रम-दिवसे कुरङ्गीं दृष्ट्वा समुत्पन्नाभिलाषः परेण पौरुषेण सङ्गम्य कुरङ्ग्या दर्शनशङ्कितैः कन्यापुररक्षिभिः परीक्ष्यमाणोऽग्निना भगवता प्रच्छादितो निर्गतः तेन निर्वेदेनाग्निं प्रविष्टः पित्रा भगवताग्निना प्रीत्या परिष्वज्यमानो न दहत्यग्निरिति मरुत्प्रपातार्थं कञ्चित् पर्वतमारूढः ।

सुदर्शना—अहो अच्चाहिदं । [अहो अत्याहितम् ।]

नारदः—तत्र केनापि विद्याधरेण तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन प्रीत्यान्तर्धानकार्यमात्रमङ्गुलीयकं दत्तं, यद् दक्षिणाङ्गुल्या धारयन्नदृश्यो भवति, वामेन प्रकृतिस्थश्च ।

सुदर्शना—अच्छरीअं अच्छरीअ । [आश्चर्यमाश्चर्यम् ।]

तद्रूपदर्शनमात्रप्रहृष्टेन=केवलं तदीयरूपमवलोक्य प्रसन्नेन, अन्तर्धानकार्यमात्रम् = तिरोधानकार्यसाधकम्, अङ्गुलीयम् = अङ्गुलिपरिधेयं भूषणम्, यथेष्टम् = यावदिच्छम्, यथासुखम्, रममाणस्तया सहसुरतरतः ।

डाला इस कारण लोग उसको अविमारक कहने लगे । बाद में ब्रह्मर्षि के शाप से नाति च्युत वह बालक हाथी द्वारा किये गये उपद्रव के समय कुरङ्गी को देखकर उसमें आसक्त हो गया । बड़ी बहादुरी से उसने कुरङ्गी से भेंट की । कन्यापुर के रक्षक अग्नि से घिरे उसको देखकर भयभीत हो गये, अग्निदेव सुरक्षित होकर वह कन्यापुर से बाहर चला गया । कुरङ्गी के वियोग से दुःखित होकर उसने अपना प्राण त्यागना चाहा, अग्निदेव ने पुत्र स्नेह से उसको गले लगा लिया । तब उसने पहाड़ से गिर कर अपने प्राणों का त्याग करने के लिये किसी पर्वत पर चढ़ा ।

सुदर्शना—बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ ।

नारद—उस समय किसी विद्याधर ने उसके सुन्दर रूप मात्र को देखकर प्रसन्न होकर उसको अन्तर्धान होने का साधन एक अंगूठी दे दी । जिसको दाहिने हाथ की अंगुली में पहने से अन्तर्धान हो जाय और बायें हाथ की अंगुली में पहनने से पुनः पूर्ववत् दिखाई देने लगे ।

सुदर्शना—अहो आश्चर्य है, आश्चर्य है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नारदः—ततस्तद् दक्षिणाङ्गुल्या धारयन् सन्तुष्टनामधेयेन ब्राह्मणेन सह कुन्तिभोजस्य कन्यापुरं स्वगृहवत् प्रविश्य कुरङ्ग्या यथेष्टमभिरममाणः सुखमास्ते। एष वृत्तान्तः। किमिदानीं कर्तव्यम्।

सुदर्शना—अणन्तरं अय्याए वञ्चिदाए चलदी विअ मे हिअअं, कोदूहलेण तुस्सदि। भअवं! एसु दिअसेसु कुरङ्गी जअवम्मणो भय्यत्ति पुच्छदि। अज्जप्पहुदि तस्स वन्दणीआ संवुत्ता। [अनन्तरमार्यया वञ्चितया चलतीव मे हृदयं, कौतूहलेन तुष्यति। भगवन् एषु दिवसेषु कुरङ्गी जयवर्मणो भार्येति पृच्छयते। अद्य प्रभृति तस्य वन्दनीया संवृत्ता।]

नारदः—अभिजनयुक्तमेवाभिहितं भवत्या। कथमिदानीं ज्येष्ठपत्नी कनीयसे दीयते। सुदर्शने! अभिधीतां काशिराजाय जयवर्मणः कुरङ्गी वयसाधिकेति। नन्वस्ति कुरङ्ग्याः कनीयसी सुमित्रा नाम। सा जयवर्मणो भार्या भविष्यति।

आर्यया वञ्चिततया चलतीव मे हृदयम् = ज्येष्ठभगिन्या सुचेतनया प्रतारितत्वात्, मदेवपुत्रमासाद्य तया मत्पुत्रप्रतिग्राह्या कुरङ्गी स्वपुत्रवधूकृतेति मनश्चलति। कौतूहलेन तुष्यति, अनुरागपुरःसरं तत्समागमं विचार्य

नारद—इसके बाद वह अंगूठी को अपने दाहिने हाथ में पहन कर सन्तुष्ट नामक ब्राह्मण के साथ अपने घर के समान कुन्तिभोज के कन्यापुर में प्रविष्ट हो गया, इस समय वह कुरङ्गी के साथ यथेच्छ विहार करता हुआ वहीं पर रह रहा है। यह वृत्त है, अब क्या करना चाहिये।

सुदर्शना—इस समय मैं अपनी बड़ी बहन से ठगी गयी यह विचारकर मेरा हृदय विचलित सा हो रहा है, कौतूहल से सन्तुष्ट भी हो रहा है। कुरङ्गी जयवर्मा की स्त्री मानी जाने लग गयी थी, अब वह उसकी वन्दनीया हो गयी।

नारद—यह तो तुम ने अपने कुल के समान ही कहा, बड़े की स्त्री छोटे को कैसे दी जायगी। काशीराज से कह देना कि कुरङ्गी जयवर्मा से बड़ी है कुरङ्गी की छोटी बहन से अब जयवर्मा की शादी होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुदर्शना—पडिग्गहिदं इसिवअस । [प्रतिगृहीतमृषिवचनम् ।]

नारदः—गच्छ कुन्तिभोजमनुवर्तस्व ।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि । [यद् भगवानाज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति वरवेषेणाविमारकः कुरङ्गी भूतिकश्च)

अविमारकः—भोः ! लज्जित इवास्म्यनेन वृत्तान्तेन ।

दृष्ट्वा तदानीं गजसम्भ्रमे मां
मद्विक्रमं ये परिकीर्तयन्ति ।
ते किन्नु वृत्तान्तमिमं विदित्वा
चारित्रदोषं मयि पातयन्ति ॥ १५ ॥

सन्तोषमनुभवति । अभिजनोचितम् उदात्तस्वकुलसदृशम्, ज्येष्ठस्य पत्नी कनीयसे जयवर्मणे कथं दीयताम् वयसाधिका । काशीराजाय = स्वपतये अभिधीयताम् = कथ्यताम् ।

अन्वयः—तदानीम् गजसम्भ्रमे माम् दृष्ट्वा ये मद्विक्रमं परिकीर्तयन्ति ते इमम् वृत्तान्तम् विदित्वा मयि चरित्रदोषम् पातयन्ति किम् नु ।

व्याख्या—दृष्ट्वेति-तदानीम् = तस्मिन् काले, गजसम्भ्रमे = हस्तिन उपद्रवे माम् दृष्ट्वा = तथाभूतं पराक्रमवन्तमवलोक्य ये = जनाः मद्विक्रमं = मम पराक्रमम्, परिकीर्तयन्ति = प्रशंसन्ति, ते = प्रशंसितारो जनाः इमम् वृत्तान्तम् मायया कन्यागृहप्रवेशम् विदित्वा ज्ञात्वा मयि = अविमारके, चरित्रदोषम् = दुश्चरित्रताम् पातयन्ति आरोपयन्ति किन्तु = किं स्वित् ।

सुदर्शना—यह ऋषि वचन स्वीकृत है ।

नारद—आओ कुन्तिभोज का अनुसरण करो ।

सुदर्शना—आपकी जैसी आज्ञा ।

(इसके बाद वर के वेष में अविमारक और कुरङ्गी का प्रवेश)

अविमारक—मैं इस घटना से लज्जित सा हो रहा हूँ ।

उस समय हाथी के उपद्रव काल में जिन्होंने मुझे देखकर मेरे पराक्रम की प्रशंसा की थी वे ही आज मेरे इस वृत्तान्त को जानकर मेरे ऊपर चारित्रिक दोष का आरोप कर रहे हैं क्या ॥ १५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(परिक्रम्य दृष्ट्वा) अये अयं खलु भगवान् नारदः य एषः,

शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धि-
वेंदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः ।
स्निग्धेषु वैराण्युपपाद्य यत्ना-
न्नष्टानि कार्याणि समीकरोति ॥ १६ ॥

कुन्तिभोजः—इत इतः कुमारः । अभिवादयस्वात्मकुलदैवतं देवर्षिम् ।

अविमारकः—भगवन् ! अभिवादये ।

नारदः—स्वस्ति भवते सपत्नीकाय ।

भावः—गजोपद्रवकाले ये ममैवासन्प्रशंसकाः ।
मायामयं ते मद्वृत्तं विदित्वा निन्दका अहो ॥

अन्वयः—शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धिः वेदेषु गीतेषु च रक्तकण्ठः स्निग्धेषु यत्नात् वैराणि उपपाद्य नष्टानि कार्याणि समीकरोति ।

व्याख्या—शापे प्रसादेषु चेति—शापे = विरुद्धानुध्याने प्रसादेषु = अभीष्टदानेषु, च=अपि सक्तबुद्धिः=संसक्तचेताः वेदेषु=वेदपाठकर्मणि, गीतेषु = गायनकर्मणि च रक्तकण्ठः = मधुरजलः, स्निग्धेषु = परस्परप्रीतिमत्सु वैराणि=विरोधान् समुत्पाद्य = जनयित्वा नष्टानि = असिद्धानि, कार्याणि = अर्थान् समीकरोति = समानतामानयति ॥ १६ ॥

(चलकर देखकर)

यह तो भगवान् नारद हैं, यह—

शाप तथा वर देने में समान भाव से समर्थ, सभी तरह के गानों में सुरीला कण्ठवाले यह नारद भगवान् परस्पर प्रेमासक्त व्यक्तियों में बल से विरोध कराकर बिगड़े हुए कार्य को सुधार देते हैं ॥ १६ ॥

कुन्तिभोज—कुमार इधर आओ अपने कुल-पूज्य नारद जी का अभिवादन करो ।

अविमारक—भगवन्, अभिवादन करता हूँ ।

नारद—पत्नीयुक्त तुम्हारा कल्याण हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि । मातुल अभिवादये ।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

क्षमया जय विप्रेन्द्रान् दयया जय संश्रितान् ।
तत्त्वबुद्ध्या जयात्मानं तेजसा जय पार्थिवान् ॥ १७ ॥

अविमारकः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

कुन्तिभोजः—वत्स ! इत इतः पितरमभिवादयस्व ।

अविमारकः—भोस्तात ! अभिवादये ।

सौवीरराजः—एह्येहि वत्स !

विरचितवरवेषदर्शनीयो गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः ।

अन्वयः—क्षमया विप्रेन्द्रान् जय दयया संश्रितान् जय तत्त्वबुद्ध्या आत्मानम् जय तेजसा पार्थिवान् जय ॥ १७ ॥

क्षमया = मर्षणेन, नम्रतयेत्यर्थः, विप्रेन्द्रान् = ब्राह्मणान्, जय = स्ववशीकुरु, दयया = कृपया, संश्रितान् = आश्रितजनान्, जय = स्वायत्तीकुरु । तत्त्वबुद्ध्या = यथार्थज्ञानेन आत्मज्ञानेनेत्यर्थ आत्मानं जय, पार्थिवान् = नृपान् तेजसा = स्वबलेनेत्यर्थः, जय=स्ववशीकुरु ॥ १७ ॥

अन्वयः—विरचितवेषदर्शनीयः गुरुजनवन्दनमिश्रशुभ्रवक्त्रः वयमिव त्वमपि भवत्तनयम् समीक्षमाणः इह सहर्षबाष्पनेत्रः भव ॥ १८ ॥

व्याख्या—विरचितेति = विरचितेन=सुसाधितेन वरवेषेण=वरस्वरूपेण

अविमारक—अनुगृहीत हुआ, मामाजी को नमस्कार ।

कुन्तिभोज—आओ आओ पुत्र ।

क्षमा से ब्राह्मणों को जीतो, दया से अपने आश्रितों को जीतो, सद्विचार से आत्मा पर विजय प्राप्त करो और पराक्रम से राजाओं को जीतो ॥ १७ ॥

अविमारक—अनुगृहीत हुआ ।

कुन्तिभोज—इधर इधर-पिता का अभिवादन करो ।

अविमारक—हे पिता, आपको नमस्कार हो ।

सौवीरराज—आओ आओ वत्स –

जैसे मैं आज वरवेष से मनोहर एवं गुरुजनों का नमस्कार करते हुए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वयमिव भव हर्षवाष्पनेत्रस्त्वमिह भवत्तनयं समीक्षमाणः ॥१८॥

पुत्र ! अभिवादयस्व मातुलम् ।

अविमारकः—मातुल ! अभिवादये ।

कुन्तिभोजः—एह्येहि वत्स !

यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः
सत्यैर्दृढैर्दशरथप्रतिमो भव त्वम् ।
नित्यार्पितैः पितृसमो भव सम्प्रदानैः
स्वेनात्मना सुसदृशेन पराक्रमेण ॥ १९ ॥

जामातृरूपेणेत्यर्थः, दर्शनीयः = रमणीयः, सुन्दरः, गुरुजनानाम् = माननीयानाम्—वन्दनेन = नमस्कारेण, शुभ्रम्=मनोहरं, वक्त्रम्=मुखं यस्य सः तथोक्तः, वयमिव = अस्मादृशः, इह त्वमपि भवत्तनयम् = स्वकीयपुत्रम् समीक्षमाणः = अवलोकमानः, हर्षवाष्पं नेत्रयोर्यस्य तथोक्तः = आनन्दाश्रुपूरितनेत्रो भव ।

भावः—

विरचितवरवेषो वन्दमानो वरिष्ठान् नयनयुगं मे वाष्पपूर्णं करोति । त्वमपि तनयमीदृग्वेषवैशिष्टचमेतं नयनविषयमाप्तं वीक्ष्य वाष्पाक्ष एधि ।

अन्वयः —नित्ययुक्तैः शुभैः यज्ञैः हरिसमो भव । दृढैः सत्यैः त्वम् दशरथप्रतिमो भव । नित्यार्पितैः सम्प्रदानैः पितृसमः भव । सुसदृशेन पराक्रमेण आत्मना समः भव ।

व्याख्या—यज्ञैः शुभैरिति—नित्ययुक्तैः = प्रतिदिनं विधीयमानैः शुभैः =

तुम को आनन्दश्रुपूरित नेत्रवाला हो रहा हूँ, उसी प्रकार तुम भी अपने पुत्र को देखकर प्रसन्नता को प्राप्त करो ॥ १८ ॥

पुत्र मामा को नमस्कार करो ।

अविमारक—मामाजी को नमस्कार ।

कुन्तिभोज—वत्स आओ आओ ।

तुम नित्य यज्ञों से इन्द्र के समान हो दशरथ के समान सत्य से अविचल हो अपने पिता के समान नित्य दान देने वाले हो, समुचित पराक्रम से अपने समान हो ॥ १९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सौवीरराजः—पुत्र ! सुदर्शनामभिवादयस्व ।

कुन्तिभोजः—अयुक्तमिव सुचेतनामनभिवाद्य सुदर्शनामभिवादयितुम् ।

नारदः—अस्ति कारणम् । अभिवाद्यतां सुदर्शना ।

उभौ—एवं क्रियताम् ।

अविमारकः—भवति ! अभिवादये ।

सुदर्शना—पुत्र ! चिरं जीव एदाए सह । (परिष्वज्य) चिरेण दिट्ठो सि । अज्ज मए अणुभूदो पुत्तसम्पत्तिरसो । [पुत्र ! चिरं जीवैतया सह । चिरेण दृष्टोऽसि । अद्य मयानुभूतः पुत्रसम्पत्तिरसः] (रोदिति)

शुभफलप्रदैः, यज्ञैः = यागैः, हरिसमः = इन्द्रतुल्यः, भव = एधि, दृढैः = अविचलैः, सत्यैः=सत्यवचनैः, दशरथप्रतिमः = दशरथतुल्यः, भव = भूयाः, नित्यार्पितैः = अहरहः दत्तैः, सम्प्रदानैः = त्यागैः, पितृसमः = यथा तव पिता-तादृग्दाता भव = भूयाः, सुसदृशेन = यथावत्प्रयुक्तेन, पराक्रमेण = विक्रमेण, आत्मना = स्वेन समो भव ।

सुदर्शनाम् सुचेतनामित्यत्र सुदर्शनां मातरमभिवादयस्व । स्वमातरम् = स्वजननीं–अनभिवाद्य = अनमस्कृत्य सुदर्शनाभिवादनमयुक्तम् = अनुचितम् स्वमातुरभ्यर्हितत्वात् ।

अस्तिकारणम् = सुदर्शनैव वास्तविकी माता अतो ज्येष्ठामपि सुचेतनां विहाय सुदर्शनाभिवाद्या 'नास्ति मातृसमो गुरुः' इति वचनात् ।

सौवीरराज—पुत्र ! सुदर्शना को प्रणाम करो ।

कुन्तिभोज—सुचेतना को त्याग कर सुदर्शना को प्रणाम करना उचित नहीं है ।

नारद—इसका कारण है ।

दोनो—ऐसा ही करो ।

अविमारक—भवति नमस्कार करता हूँ ।

सुदर्शना—पुत्र कुरङ्गी के साथ चिरञ्जीवी हो आज ही मैंने पुत्र का सुख प्राप्त किया है । (रोती है)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुन्तिभोजः—

इमां तु बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीं
सम्प्रस्नवद्दुग्धपयोदयुग्माम् ।
अवेक्षितां मातरमप्रकाश्य
धात्रीत्वमेवैति सुचेतना मे ॥ २० ॥

नारदः—अलमतिस्नेहेन । प्रविशतु कन्यापुरं सुचेतना सुचेतना सुदर्शना सुदर्शना च सभार्येण पुत्रेण ।

कुन्तिभोजः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

सुदर्शना—जं भअवं आणवेदि । [यद् भगवानाज्ञापयति ।]

अन्वयः—बाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीम् संप्रस्नवद्दुग्धपयोदयुग्माम् इमाम् मातरम् अवेक्षितां अप्रकाश्य सुचेतना धात्रीत्वमेव इति मूर्त्तिरिति शेषः ।

व्याख्या—इमां त्विति—बाष्पेण = आनन्दाश्रुणा आर्द्रे=पूर्णे, कुतूहले = सकौतुके अक्षिणी यस्याः सा तथोक्ताम्, सम्प्रस्नवद्दुग्धम् = प्रेम्णा प्रस्नवद् दुग्धं प्रक्षरत्पयः यस्मात् तादृशं पयोदयुग्मम् = स्तनयुग्मं यस्याः सा ताम् तथोक्ताम् इमां दृश्यमानां, अवेक्षितां = इदानीं दृष्टिपथमागतां, मातरम् = अविमारकस्य जननीम्, अप्रकाश्य = अप्रकटय्य सुचेत्वियम् धात्रीत्वम् एव एति प्राप्नोति इति तना मे निश्चय इति शेषः ।

भावः—प्रेमप्लुतनेत्रत्वात् प्रस्नुतपयोधरतया चैव ।
सुदर्शनेयं माता त्वं धात्रीति सुचेतने सत्यम् ॥ २० ॥

सुचेतना = सुबुद्धिः, सुदर्शना = सुन्दरी, विशेषणपदार्थः इतरे नामनी । विसृज्यताम् = गन्तुमनुज्ञायताम् । सन्निहितः = विवाहे समुपस्थितः ।

कुन्तिभोज—वाष्पपूर्ण तथा कुतूहलपूर्ण नेत्रवाली एवं दुग्ध टपकाने वाले स्तनों से युक्त इस सुदर्शना को अप्रकाशित करके वस्तुतः सुचेतना धात्री का ही कार्य करनेवाली है ॥ २० ॥

नारद—विशेष स्नेह प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है सुबुद्धि सुचेतना एवं सुन्दरी सुदर्शना स्त्री युक्त पुत्र के साथ कन्यापुर में जायें ।

कुन्तिभोज—आप की जो आज्ञा ।

सुदर्शना—जो आपकी आज्ञा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नारदः—अचिरेण सौवीरराजो विसृज्यतां स्वदेशगमनाय। जयवर्मणे सुमित्रा प्रदीयतां काशिराज्ञे। त्वमपि सन्निहितो भव।

कुन्तिभोजः—अनुगृहीतोऽस्मि।

नारदः—कुन्तिभोज! किमन्यत् ते प्रियमुपहरामि।

कुन्तिभोजः—भगवान् यदि मे प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि।

गोब्राह्मणानां हितमस्तु नित्यं
सर्वप्रजानां सुखमस्तु लोके।

नारदः—सौवीरराज! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि।

सौवीरराजः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि।

इमामुदीर्णार्णवनीलवस्त्रां
नरेश्वरो नः पृथिवीं प्रशास्तु ॥ २१ ॥

(भरतवाक्यम्)

अन्वयः—गोब्राह्मणनां नित्यं हितम् अस्तुः लोके सर्वप्रजानां सुखम् अस्तु। इमाम् उदीर्णार्णवनीलवस्त्रं पृथ्वीं नः राजसिंहः प्रशास्तु।

व्याख्या—गोब्राह्मणानाम्, नित्यम् = सदा हितम् = कल्याणमस्तु। लोके = भुवने सर्वप्रजानाम् = सर्वेषां जनानाम्, सुखम् = आनन्दोऽस्तु — उदीर्णार्णवनीलवस्त्राम् = उद्वेल्लिताः अर्णवाः समुद्रा एव नीलं वस्त्रं

नारद—शीघ्र सौवीरराज को अपने देश में जाने की आज्ञा दो, काशीराज जयवर्मा को सुमित्रा को दो। उस काल में तुम भी रहना।

कुन्तिभोज—अनुगृहीत हुआ।

नारद—कुन्तिभोज! मैं और तुम्हारा क्या प्रिय करूँ।

कुन्तिभोज—यदि आप प्रसन्न हैं तो इससे दूसरा हमको क्या चाहिये। गौओं और ब्राह्मणों का कल्याण हो सभी प्रजाओं को सुख हो गया।

नारद—सौवीरराज! तुम्हारा कौन प्रिय करूँ।

सौवीरराज—यदि आप सन्त हैं तो इससे बढ़कर दूसरा मेरा का प्रिय हो सकता है हमारे नराधिप इस सारी नील समुद्रवसना भूमि का पालन करें ॥ २१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ २२ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

षष्ठोऽङ्कः ।

यस्याः सा तथोक्ताम्, चतुःसागरवेष्टितामित्यर्थः, इमाम् पृथ्वीम् = धरित्रीम्, नः = अस्माकम्, नरेश्वरः = राजा, प्रशास्तु = पालयतु ।

अन्वयः—गावः अरजसः भवन्तु, परचक्रम् प्रशाम्यतु, नः राजसिंहः, इमाम् कृत्स्नां महीम् प्रशास्तु ॥ २२ ॥

व्याख्या—अरजस इति—गावः = इन्द्रियाणि, अरजसः = निरस्तरजसः सत्त्वगुणयुक्ता भवन्तु = सन्तु—परचक्रम् = शत्रुसमूहः, प्रशाम्यतु = वैर-रहितः भवतु, नः=अस्माकम्, राजसिंहः = नरेश्वरः इमाम् = पुरो दृश्यमानां, कृत्स्नां = समग्रां, भुवम् = पृथ्वीं प्रशास्तु = पालयतु ।

इति महाकविभासकृते अविमारके रायोपाह्वेन सांकृत्यायनेन डाक्टरगङ्गा-सागरशर्मणा कृता गङ्गाभिधा टीका संपूर्णा ।

इति षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ।

हमारी इन्द्रियाँ रजोगुण रहित सात्विक हो, शत्रुमण्डल शान्त हो। राजसिंह समस्त भूतल का पालन करें ॥ २२ ॥

इति षष्ठोऽङ्कः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्टम्–१

सूक्तिग्रन्थेषु निर्दिष्टानि भासपद्यानि

सदुक्तिकर्णामृते

दग्धे मनोभवतरौ बालाकुचकुम्भसंभृतैरमृतैः ।
त्रिवलीकृतालवाला जाता रोमावली वल्ली ॥

विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशांपति-
र्गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः ।
अभिनववधूरोषस्वादुः करीषतनूनपा-
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः ॥

प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् ।
उन्मादस्मितरोमलज्जितरसैर्गौर्या कथञ्चिच्चिराद्-
बद्धः स्त्रीवचनात्प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥

शार्ङ्गधरपद्धतौ

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं
ग्राह्यः स्वभावललितो विकटश्च वेषः ।
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः ॥

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः
शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवा कृतज्ञः ।
तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥

कपोले मार्जारः पय इति करांल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी सङ्कलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा ।
आपाण्डुरक्षामकपोलभित्तावनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ॥
दयिताबाहुपाशस्य कुतोऽयमपरो विधिः ।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ॥

सुभाषितावल्याम्

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः ।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने
हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ॥
कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुखप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि ।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे ।
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे रतम् ॥
कृतककृतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं नेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥
दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ।
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ॥

सूक्तिमुक्तावल्याम्

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
तदपि सकलं चारुस्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्टम्–२

नाटकीयविशिष्टवस्तुलक्षणानि

१ नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचक्राब्जकोशकैरवशंसिनी
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

जिसमें देवताओं, द्विजों, राजादि की अशीर्वचन युक्त स्तुति हो वह नान्दी होती है। यह बारह या आठ पदों की होती है और मङ्गलवाची शङ्ख, चक्र, पद्म का उल्लेख होता है।

२ प्रस्तावना—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥

जब नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ नाटकीय कथानक के निर्देश से संबद्ध विचित्र कथनोपकथनों को करते हैं तो वह आमुख होता है और उसी की प्रस्तावना भी संज्ञा है।

३ सूत्रधार—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुना ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इवोदितः ॥

तथा—

नाट्यस्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः ॥

नाट्योपकरण–वस्तु, नेता तथा रस ये सूत्र कहे जाते हैं उस नाट्योपकरण को धारण करनेवाले को सूत्रधार कहते हैं। दूसरे लक्षणानुसार नेता अथवा कवि के गुणों को वस्तु के द्वारा पिरोनेवाला रङ्गप्रसाधन में दक्ष व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४ प्रयोगातिशय—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तथा ॥

यदि एक प्रयोग में दूसरा प्रयोग प्रयुक्त हो और उससे पात्र का प्रवेश हो तो उसे प्रयोगातिशय की संज्ञा दी जाती है ।

५ नैपथ्य—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

नट के परिवार के गृह को नेपथ्य कहा जाता है ।

६ विष्कम्भक—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो आदावङ्कस्य दर्शितः ।
मध्यमेन मध्यमाभ्यां पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

नाटक में हो गयी या होने वाली घटनाओं का यह सूचक होता है । यह नाटक के कथांश को संक्षिप्त करने के लिये प्रयुक्त होता है । यदि इसमें मध्यम कोटि के पात्र हों तो यह शुद्ध विष्कम्भक होता है और यदि इसमें मध्यम और नीच कोटि के पात्र प्रयुक्त हो तो संकीर्ण कहा जाता है ।

७. प्रवेशक—

प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः ।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥

इसमें नीच पात्र होते हैं और भाषा प्राकृत होती है । यह दो अङ्कों के बीच में प्रयुक्त होता है और अन्य विशेषतायें विष्कम्भक की ही होती है ।

८. स्वगत—

अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम् ।

जो बातें दर्शकों को सुनने की वस्तु नहीं होतीं उसे स्वगत कहते हैं ।

९. प्रकाश—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ।

जो सभी के सुनने के लिये होता है उसे प्रकाश कहते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१०. विदूषक—

कुसुमवसन्ताभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥

अपने कर्म, वेष, भाषादि के द्वारा जो हास्य उत्पन्न करने वाला, कलह प्रेमी तथा अपने कर्म (हास्य) का ज्ञाता हो उसे विदूषक कहते हैं। उसके नाम कुसुम, वसन्त आदि होते हैं।

११. नायक—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोगों का रञ्जक, शुचि, वक्ता, कुलीन, स्थिर, युवक, बुद्धि-उत्साह-स्मृति प्रज्ञा-कला-मान से युक्त, शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्र दृष्टि वाला एवं धार्मिक होता है।

१२. नायिका—

अथ नायिका त्रिभेदा स्यात् स्वान्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥

नायिका स्वकीया, परकीया, साधारण के भेद से तीन प्रकार की होती है। यथासंभव वह नायक के गुणों से युक्त होती है।

१३. अङ्क—

अङ्क इति रूढशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवग्लानबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवमन्तव्यः ॥

१४. प्रकरण—

भवेत् प्रकरणं वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥

प्रकरण का कथानक लौकिक एवं कविकल्पनाप्रसूत होता है। इसका प्रधान रस शृङ्गार होता है और नायक विप्र, अमात्य या वणिक् होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्टम्-३

अविमारके छन्दांसि लक्षणानि च

१. **अनुष्टुप्**—पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरुं विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥

तथा—श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

अनुष्टुप् में ८-८ अक्षरों के चार चरण होते हैं जिसमें प्रत्येक चरण का पाँचवा अक्षर लघु तथा छठाँ गुरु होता है। दूसरे तथा चौथे का सातवाँ अक्षर लघु तथा प्रथम एवं तृतीय का गुरु होता है।

२. **उपजाति**—यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के सम्मिश्रण से बनती है। इन दोनों छन्दों के चरण में ११-११ अक्षर होते हैं। दोनों के लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) **इन्द्रवज्रा**—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

जिस छन्द में दो तगण एक जगण एवं दो गुरु वर्ण हों वह इन्द्रवज्रा है।

(२) **उपेन्द्रवज्रा**—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

उपेन्द्रवज्रा में एक जगण, एक तगण, एक जगण, दो गुरु होते हैं।

(३) **पुष्पिताग्रा**—

अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

इसमें विषम चरणों में २ नगण, १ रगण, १ यगण तथा १२ वर्ण हो एवं समपाद में १ नगण, एक जगण, १ रगण, १ गुरु तथा १३ वर्ण हों वह पुष्पिताग्रा वृत्त होता है।

(४) **मालिनी**—ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

इसमें प्रत्येक चरण में १५-१५ वर्ण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में २ नगण, १ मगण, २ यगण होते हैं। इसमें ८,७ पर यति होती है।

(५) **वंशस्थ**—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ ।

इसके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण होते हैं तथा १ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण होते हैं।

(६) **वसन्ततिलका**—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।

इसके प्रत्येक चरण में १४-१४ वर्ण तथा १ तगण, १ भगण, २ जगण एवं २ गुरु होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(७) शार्दूलविक्रीडित—

सूर्याश्वैर्मसजास्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

इस छन्द में प्रत्येक चरण में १९–१९ वर्ण होते हैं तथा १ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण तथा १ गुरु होते हैं। १२ और ७ पर यति होती है। उदा० २।११

(८) शालिनी—मात्तौ गौ चेच्छालिनी भोगिलोकैः ।

इसमें प्रत्येक चरण में ११–११ वर्ण तथा १ मगण, २ तगण तथा २ गुरु होते हैं एवं ४ तथा ७ वर्णों पर यति होती है। उदा० १।८

(९) शिखरिणी—रसैरीशैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

प्रत्येक चरण में १७–१७ वर्ण हैं तथा १ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं तथा ६ एवं १२ वर्णों पर यति होती है।

(१०) स्रग्धरा—

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

इसमें प्रत्येक चरण में २१–२१ वर्ण होते हैं तथा १ मगण, १ रगण, १ भगण, १ नगण, ३ यगण हो तथा तीन बार सातवें वर्ण पर यति होती है। उदा० १।१

(११) दण्डक—

यदिह नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो भवेद्दण्डकः ।

प्रत्येक चरणों वर्णों की संख्या समान परन्तु २६ से अधिक, प्रारम्भ में दो नगण होते हैं। उदा० ५।६

(१२) प्रहर्षिणी—त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम् ।

प्रत्येक चरण में १३–१३ वर्ण तथा १ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण एवं १ गुरु होते हैं। ३ और १० वर्णों पर यति होती है। उदा० १।८

(१३) पृथ्वी—जसौ जसजला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी ।

प्रत्येक चरण में १७–१७ वर्ण होते हैं तथा १ जगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। ८, ९ वर्णों पर यति होती है। उदा० २।६

(१४) उपेन्द्रवज्रा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

प्रत्येक चरण में ११–११ वर्ण एवं १ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु होते हैं। पादान्त में यति होती है। उदा० २।९

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्टम्—४

अविमारकान्तर्गतानि सुभाषितानि

१. कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् । १।२

२. विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्त्तव्या भवन्ति । १।२—३

३. जामातृसंपत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥ १।३

३. निष्परिहारा व्यापदः । १।५—६

४. अहो प्रच्छन्नरत्नता पृथिव्याः ॥ १।५—६

५. कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम् । १।५—६

६. सर्वत्र दाक्षिण्यं न कर्त्तव्यम् । १।९—१०

७. न भृत्यदूषणीया राजानः । १।९—१०

८. अहो कार्यमेवापेक्षते बुद्धिरमात्यानाम् । १।११—१२

९. अहो महद्भारो राज्यं नाम । १।११—१२

१०. मनस्तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते
प्रतिषिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न वीक्षते ।
चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा । २।४

११. कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दीभवत्यातुरः । २।७—८

१२. अथवा हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति । १।९—१०

१३. सर्वमलंकारो भवति सुरूपाणाम् । १।९—१०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४. एकः परगृहं गच्छेत् द्वितीयेन तु मन्त्रयेत् ।
बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः ॥ २।१०

१५. प्रियनिवेद्यानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति । ३।१

१६. भोः कष्टं तारुण्यं नाम । कुतः

रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं दोषान् न चिन्तयति साहसमभ्युपैति ।
स्वच्छन्दतो व्रजति नेच्छति नीतिमार्गं, बुद्धिं शुभां सुविदुषामवशीकरोति ॥३।१

१७. के रक्षन्ति रक्षितात्मानम् । ३।१०–११

१८. यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिद्ध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥ ३।१२

१९. अट्टालकप्रतोलीन्द्रपथेभ्यः सर्वविघ्नाः भवन्ति । ३।१३–१४

२०. तृष्णार्दितः क इह पुष्करिणीं जहाति । ३।१५

२१. स्वभावरमणीयानि मण्डितान्यतिरमणीयानि भवन्ति । ४।१

२२. न तथा रत्नमादाय सुजनः परितुष्यति ।
यथा तत् तद्गताकांक्षे पात्रे दत्वा प्रहृष्यति ॥ ४।१४

२३. को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम् । ४।२१–२२

२४. कः शक्नोत्युच्छिष्टमकुर्वन् भोक्तुम् । ४।१–२

२५. प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे
समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ॥ ४।५

२६. न हि घृतवचनेन पित्तं नश्यति । ४।५–६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोकानुक्रमणिका

	सर्ग	श्लो.
अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैर्	४	४
अद्यापि हस्तिकरशीकरशीतलाङ्गीम्	२	१
अनुपमबलवीर्यरूपवन्तम्	६	४
अबहुपुरुषपक्षपेत्यशौर्यं	३	११
असितजलदवृन्दैर्मिश्रसन्दिग्धशृङ्गो	४	९
अहं द्विनेत्रो न सहस्रनेत्रो	३	१८
आरक्षिणां तु विमुखं मितविक्रमाणां	३	१०
इमां तु वाष्पार्द्रकुतूहलाक्षीं	६	२०
इष्टं चेदेकचित्तानां	४	७
इष्टा मखा द्विजवराश्च मयि प्रसभाः	१	२
उच्चं हर्म्यं सन्निरुद्धाश्च जालास्	३	५
उत्क्षिप्तं सानुकम्पं सलिलनिधिजलाद्	१	१
उरः स्तनटटालसं जघनभारखिन्ना तनुः	२	९
उष्णं श्वसिति तन्वङ्गी	५	३
एकः परगृहं गच्छेद्	२	१०
एतन्नरेन्द्रभवनं निशि जातशङ्को	४	२२
एवमेव महाभागे	६	१२
कन्यापुरात् कथमपीह विनिर्गतं मे	४	१
कान्तासमीपमुपगम्य मनोभिलाषाद्	३	२५
कामाहतः कुमतिभिः सचिवैर्गृहीतः	१	११
किं प्रेक्षसे मम मुखं चिरकालदृष्टो	६	१
किमत्र चित्रं वितताः पयोदाः	४	६
क्षमया जय विप्रेन्द्रान्	६	१७
गम्यास्तु देशाः सुपरीक्षिता मे	६	१०
गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया	३	३
गो ब्राह्मणानां हितमस्तु नित्यम्	६	२१
गोष्ठीषु हास्यः समरेषु योधः	४	२१
चिन्ताकुलत्वं व्रजतीव बुद्धिर्	६	२
छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्	१	६
जलदगहनमुज्झतीववेगाद्	४	१२
जलदसमयघोषणाडम्बरानेकरूप	५	६
जवशिथिलविमुक्तपार्श्वकेशी	४	२०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

	सर्ग	श्लो
जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा	१	३
तस्या भयाकुलितदृष्टिविषं-मनोज्ञं	२	७
तानस्तु मन्दो विशद प्रयुक्तो	३	६
तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः	३	४
दग्धाः स्फुलिङ्गनिकरैर्निपतन्ति वृक्षाः	४	८
दत्ता या विधिना पूर्वं	६	१४
दिव्यं स्वभावं समुपागतोऽस्मि	४	१६
दृढपरिकरबन्धहृष्टचित्तः	३	९
दृष्टिर्न तृप्यति परिष्वजतीव-साङ्गं	३	१७
दृष्टिस्तदा प्रभृति नेच्छति रूपमन्यद्	२	२
दृष्ट्वा तदानीं गजसंभ्रमे मां	६	१५
दैवं रूपं ब्रह्मजं तस्य वाक्यं	१	७
धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवपतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या	१	१२
नगरपरिचितोऽहं रक्षिणोज्ञातसारात्	३	२
न तत्र कर्त्तव्यमिहास्ति लोके	१	९
न तथा रत्नमासाद्य	४	१४
न तेन बुद्धिर्मम दूषणीया	५	५
न त्वं प्रिये मम नवासि मनोऽभियोगात्	३	१९
न दृश्यते तत्र भवान् सपुत्रः	१	१०
न भाषसे वृत्तमुपैषि रोषं	६	५
निर्व्याजं परिचयवृद्धरागां	४	३
नेत्रे वाष्पपरिप्लुते करधृतौ व्यावल्गमानौ स्तनौ	३	२०
पिता कुरङ्ग्या भूपालो	६	१३
पुरे गृहे वापि पुरा सुखोषितैर्	४	२३
पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता	२	१२
प्रच्छन्न रूपस्त्वशनिः कथश्चित्	४	१५
प्रतिच्छन्दं धात्रा युवतिवपुषां किन्नु रचितं	२	३
प्रतिसिद्धं प्रयत्नेन	२	४
प्रपदशनिना यथा गिरीन्द्रो	६	९
प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलं	१	५
प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमितास्नातं पुनर्मानसे	४	१०
बहुत्वाद् दूरसंस्थोऽपि	१	४
बाष्पोपरुद्धजडगद्गदजिह्मकण्ठं	३	७
ब्रह्मर्षिणा प्ररुष्टेन	६	२२
भवन्त्वरजसो गावः	६	२२
मितगुणमिह कुन्तिभोजसैन्यः	२	११
यज्ञैः शुभैर्हरिसमो भव नित्ययुक्तैः	६	१९
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः	३	१२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

	सर्ग	श्लो.
यदि च विभवरूपज्ञान-सत्त्वादयः स्युर्	२	५
यस्माद् ब्रह्मर्षिमुख्योऽहं	६	६
तावत् प्रच्छन्नरूपेण	६	८
संचरन्ति गगने वनिता-सहायाः	४	१३
यो मे पुत्रगतः शोको	६	३
रागं विजृम्भयति संश्रयते प्रमादं	३	१
रोगादकालागुरुचन्दनार्द्रा	५	१
लिम्पन्ति रूक्षरवनाः सिकताग्निचूर्णैः	४	५
वातोद्धूताग्रकेशः सलिलधर-दरीमृष्टदृष्टाङ्गरागः	४	१९
विद्यावशानां तु भवद्विधा-नाम्	४	१७
विपुलमपि मितोपमं विभा-गाद्	३	१३
विरचितवरवेषदर्शनीयो	६	१८
वेदैः पितामहमह परि-तोषयामि	६	११

	सर्ग	श्लो.
व्यामृष्य सूर्यतिलको वित-तोड्मालो	२	१३
व्यायामस्थिरविपुलोच्छ्रिता-वतंसो	१	८
व्योमार्णवोर्मिसदृशा निन-दन्ति मेघाः	५	७
शापे प्रसादेषु च सक्तबुद्धिर्	६	१६
शैलेन्द्राः कलभोपमाः जल-धयः क्रीडातटाकोपमाः	४	११
श्रुत्वा तु राज्ञो गृहसंविधानं	२	८
सख्यै मम प्रति निवेदय मामिमां च	४	१८
सतत परिचितो मनोभि-योगाद्	५	४
संपीड्यते परिजनेन शनैर्व-देति	३	८
सव्ये करे समुपवेश्य मुखं सुदीनं	५	२
हंसाः स्वपन्ति मणिरत्न-शिलातलेषु	३	१६
ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादैर्	४	२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

डॉ० गङ्गासागर राय की कृतियाँ

मौलिक ग्रन्थ

१—महाकवि भवभूति (स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, म० म० मिराशी, पं० बलदेव उपाध्याय आदि विद्वानों द्वारा प्रशंसित तथा तदुत्तर (१९६५) एतद्विषयक समस्त अनुसंधान ग्रन्थों द्वारा उपयुक्त)

२—वैदिक आस्थान, ३—पौराणिक आस्थान, ४—Vedic Śākhās (Under print), ५—अलंकारपीयूष।

हिन्दी अनुवाद

१—काव्यमीमांसा (संप्रति तृतीय संस्करण)

२—बाल रामायण (डा० रामकरण शर्मा, पं० बलदेव उपाध्याय, पं० बदरीनाथ शुक्ल, डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी इत्यादि से प्रशंसित तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत।)

३—शांख्यायनब्राह्मण—(डा० दाण्डेकर, पं० पट्टाभिराम शास्त्री आदि द्वारा प्रशंसित)

४—वामनपुराण (अन्यों के साथ)

संस्कृत टीका एवं हिन्दी टीका सहित

१—चन्द्रालोक, २—नीतिशतक (अंग्रेजी अनुवाद भी), ३—अविमारक (भासकृत), ४—अभिषेक (भासकृत), ५—बालचरित (भासकृत), ६—हरविजय (प्रथम सर्ग), ७—वेणीसंहार ८—मुद्राराक्षस, ९—पंचतंत्र (अपरीक्षितकारक), १०—रघुवंश त्रयोदश–चतुर्दश सर्ग, ११—कर्पूरमंजरी, १२—बाल भारत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंग्रेजी अनुवाद

१—कूर्म पुराण (संयुक्त रूप से)

संपादन

१—बालरामायण

२—मानस खण्ड स्कन्द पुराण

Editor of journals

Editor : 1. Vidya mandir Patrika, Fort Ramnagar

Associate Editor 1. Purāṇam

2. Dhrupad Annual

Asstt Editor 1. Hindutva (Discountinued)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परीक्षोपयोगी ग्रन्थ

१ पारस्करगृह्यसूत्रं (कर्मकाण्ड)। कात्यायन सूत्रीय श्राद्ध, शौच, स्नान, भोजन तथा कल्पसूत्रं। सं० मुकुन्द पंत पुणतामकर ५-००

२ कारिकावली। (न्याय)। विश्वनाथ न्यायपञ्चानन कृत 'सिद्धान्त-मुक्तावली' तथा नारायण तीर्थ कृत 'न्यायचन्द्रिका' टी०। दुण्ढिराज शास्त्री कृत नोट्स २५-००

३ न्यायबिन्दुः (बौद्ध न्याय)। धर्मकीर्ति कृत धर्मोत्तराचार्य कृत संस्कृत टीका। चन्द्रशेखर शास्त्री कृत हिन्दी टीका ३०-००

४ लघुशब्देन्दुशेखरः (व्याकरण)। नागेशभट्ट कृत। नित्यानन्द पन्त पर्वतीय कृत 'दीपक' टीका। पञ्चसन्धिः प्र० ३५-००, द्वि० ४०-०० अव्ययीभावान्त १-२ भाग ७५-००

५ परिभाषेन्दुशेखरः (व्याकरण)। नागेशभट्ट कृत। भैरवमिश्र कृत 'भैरवी' टीका तथा लक्ष्मण त्रिपाठी कृत 'तत्त्वप्रकाशिका' टीका। सदाशिव शर्मा कृत नोट्स ५०-००

६ न्यायदर्शन (न्याय)। गौतम कृत। वात्स्यायन भाष्य। पद्मप्रसाद शास्त्री और हरिराम शुक्ल द्वारा संपादित। दुण्ढिराज शास्त्री कृत 'प्रकाशिका' हिन्दी टीका। सं० श्रीनारायण मिश्र। ६०-००

७ काव्यप्रकाशः (अलंकार)। मम्मटाचार्य कृत। हरिशंकर शर्मा कृत 'नागेश्वर' टीका। सं० दुण्ढिराज शास्त्री ४५-००

८ वृत्तरत्नाकरः (छन्द)। भट्ट केदार कृत। भट्ट नारायण कृत 'नारायणी' संस्कृत टीका तथा केदारनाथ शर्मा कृत 'मणिमयी' हिन्दी टीका। वैद्यनाथ शास्त्री वर्कले कृत भूमिका नोट्स १२-००

९ मेघदूत (काव्य)। कालिदास कृत। चार टीका। (१) मल्लिनाथ कृत 'सञ्जीविनी' (२) चारित्रवर्धनाचार्यकृत 'चारित्रवर्धिनी' (३) ब्रह्मशंकर शास्त्री कृत 'भावबोधिनी' तथा (४) केदारनाथ शर्मा कृत 'विद्योतिनी' हिन्दी टीका ८-००

प्राप्तिस्थान—चौखम्भा संस्कृत संस्थान

पोस्ट बाक्स नं० ११३९, वाराणसी-२२१००१

शाखा—चौखम्भा विश्वभारती, चौक (चित्रा सिनेमा के सामने) वाराणसी-२२१००१